॥ इस ग्रंथ छपवानेमें, प्रथम आश्रय दाता ॥

(खानदेश) आमलनेरा निवासी, धर्मात्मा सा वधूसा दगडुसाकी भार्या पानावाइ, की तरफसें रूपैया चारसोंका, उत्तम आश्रय मिलनेसें, ते बाईका पोषक सा. रतनचंद, दगडुसाके नामसें छपवानेका प्रबंध किया गयाथा ।

परंतु अनेक कारणके योगसें, दूसरे प्रेसमें पुनः छपवानेका प्रबंध करना पडा । और आगे ग्रंथका भी विस्तार हो जानेसें, दुपट खरचका बोजा उठाना पडा । इसी कारणसें दूसरे भी सद्‍गृहस्थोंका आश्रय लेनेकी विशेष आवश्यकता हुई । ते सद्‍गृहस्थोंकी, और गाइकोंकी भी, यादि पिछले भागमें हमने दिखाई है । और कितनेक संस्थाके नामकी भी यादि, प्रथमसे छपवाई दीइ है । जिससें लोकोंको लेनेकी भी सुगमता हो जावें ॥ इत्यलं ॥

॥ लि. ग्रंथ कर्त्ता ॥

॥ ॐ नमो जिनमूर्त्तये ॥

॥ प्रस्तावना ॥

॥ सज्जन पुरुषो ! यह ढूंढनी पार्वतीजीने, प्रथम—ज्ञानदीपिका, नामकी पुस्तक प्रगट करवाईथी, परंतु थोडेही दिनोंमें, मुनिराज श्रीवल्लभ विजयकी तरफसें—गप्प दीपिका समीरके, जपाटेमें सर्वथा प्रकारसें बूजगईथी, और वह कठोर पवनको, हटानेको समर्थ नहीं होतीहुई, इस ढूंढनीजीने, पुनः सत्यार्थ चंद्रोदय जैन, नामका पुस्तकको प्रगट करवाया, परंतु यह विचार न किया कि-एक तो रात्रिका समय, दूसरा दृष्टि विकारका भारी दोष, तोपिछे-एक चंद्रका उदय मात्र हैं सो, वस्तु तत्त्वका बोध-यथावत्, किस प्रकारसें करा सकेगा ?। चंद्रका उदय तो क्या, लेकिन सूर्य नारायणका उदय होनेपरभी, दृष्टि दोषके विकारवाले पुरुषोंको, कुछभी उपकार नहीं हो सकता है। इस वास्ते प्रथम—दृष्टि दोष दूर करनेकी ही, आवश्यकता है। जब दृष्टि दोष दूर होजायगा, तब उनके पिछेसें, क्षयोपशमानुसारसें—चंद्रके उदयमेंभी, और सूर्यके उदयमें-भी—वस्तु तत्त्वका, यथावत् भान होजायगा। हमारे ढूंढकभाइयांको जिनप्रतिमाके विषयमें दृष्टि दोष दूर होनके वास्ते, हमनेभी यह अंजनरूपग्रंथ, तैयार किया है। कदाच अंजन करती वखत, दृष्टि दोषका कारणसें किंचित्—कर्कशता, मालूम पडेगी, परंतु जो शिरको ठीकाने रखके, अंजन करते रहोंगे तो, दृष्टि दोपका विकार तो न रह सकेगा। और तो क्या लेकिन—कोइ भूत प्रेतादिकका भी दोष, हुवा होगा सोभी मार्य न रह सकेगा ! हमारा अंजनकी हमको ऐसी खात्री है। परंतु विपरीत भवितव्यतावालो-

को, कदाच हमारा अंजन, फ़ायदाकारक-न हुवा तो, कुछ अंजनका दोष, न गीना जायगा ? ॥

जबसें यह गुरु बिनाका पंथ प्रगट हुवा है, तबसे आजतक, इनके कितनेक पल्लव ग्राही ढूंढकोंने, अपना मनःकल्पित मतको ध-कानेके लिये, अन्य मतके, और जैनमतकेभी सर्व शास्त्रोंसें सम्मत, और जिनकी साक्षी यह धरती माताभी हजारों कोशों तकमें, हजा-रो वर्षोसें, गवाही दे रही है, वैसी श्रीवीतराग देवकी अलोकिक मू-र्त्तिका, और जैन मतके अनेक धुरंधर आचार्य महाराजाओंकाभी, अनादर करके, हमतो गणधर भाषित सूत्रही मानेंगे, वैसा कहकर, मात्र [३२] बत्रीश ही सूत्रोंको आगे धरके, अपना ढूंढक पंथको धकाये जातेथे, और अपनी सिद्धाइ प्रगट करनेको, सर्व महापुरुषोंकी निंद्याके साथ, अगडंबगडं लिख भी मारतेथे, जैसें प्रथम ढूंढक जेठमलजीने—समकित सार, लिख माराथा, और पिछे किसीने छप-वाके प्रसिद्ध करवायाथा, परंतु जब गुरुवर्य श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वरजी (प्रसिद्ध नाम आत्मारामजी) की तरफसें, उनका उत्तर रूप-स-म्यक्त्व शल्योद्धार, प्रगट हुवा, तब उनका उत्तर देनेकी शुद्धि न रहनेसें, थोडेदिन चुपके होके बैठ गयेथे । फिर इस ढूंढनीजीने—ज्ञानदीपिकाका, धतंग खडा किया, उनका भी उ-त्तर हो जानेसें चुचके हो गयेथे, ऐसें वारंवार जूठे जूठ लिखनेको उद्यत होते है ।

परंतु मूर्त्ति पूजकोंकी तरफसें, सत्य स्वरूप प्रगट होनेसे, ढूं-ढकोंको, कोइ भी प्रकारसें उत्तर देनेकी जाग्या न रहनेसे, पुनः इस ढूंढनी पार्वतीजीने, मनः कल्पित जूठे जूठ चार निक्षेपका लक्षण लिखके, जो गणधर गूंथित, श्री अनुयोगद्वार नामका महागंभीर,

सर्व सूत्रोंका मूल सूत्र है, उनको भी धक्का पुहचानेका इरादा उठाया है । और—स्थापना निक्षेपको, उठानेके लिये, कितनेक मूर्ख ढूंढकोंने, जो जो कुतर्कों किइथी, उनका ही पुन र्जीवन करके, और वर्त्तमानमें प्रचलित कुतर्कोंसें, अपनी थोथी पोथी भरदेके,जैन मतके शत्रुभूत, आर्यसामाजिष्टके, दो चार पंडितोंकी प्रशंशा पत्रिका, किसीभी प्रकारसें डलवायके, अजान वर्गको भ्रमित करनेका उपाय किया है ?

ते पंडितोंकी सम्मति, नीचे मुजब—

(१) वसता लवपुर मध्ये, छात्रान् शास्त्रं प्रवेशयता ।
संमतिरत्र सुविहिता, दुर्गादत्तेन सुविलोक्य ॥ १ ॥

पं० दुर्गादत्त शास्त्री० अध्यापक० आ० का० लाहौर ॥

---

(२) मिथ्या तिमिर नाशक मेतत्—उपक्रमोप संहार पूर्वकं, सर्वं मयाऽवलोकितम् । इति प्रमाणीकरोति । लाहौर डी० ए० वी० कालेज प्रोफेसर, पंडित राधाप्रसाद शर्मा शास्त्री ॥

---

(३) दयानंदने एम लिखाथा, सत्यार्थ प्रकाशे ठीक । मूर्त्तिपूजाके आरंभक हैं जैनी, या जगमें नीक ॥ पर अवलोकन कर यह पुस्तक, संशय सकल भये अब छीन, तातें धन्यवाद तुहि देवी, तूं पार्वती यथार्थ चीन । ३ । साधारण अबलामें ऐसी, होइ न कब हूं उत्तम बुद्ध । तातें यह अवतार पछीनो, कह शिवनाथ हृदय कर शुद्ध ॥ बार २ हम ईश्वरसे अब,यह मांगे हैं बर करजोर । चिरंजीवि रह पर्वत तनया,रचे ग्रंथ सिद्धांत निचोर ॥४॥ इत्यादि ॥

॥ दोहा. ॥

पंडित योगीनाथ शिव, लिखी सम्मति आप ।
लवपुर मांहि निवास जिह, शंकरके प्रताप ॥ १ ॥

---

(४) पार्वती रचितो ग्रंथो, जैनमत प्रदर्शकः ।
प्रीतयेऽस्तुसतां नित्यं, सत्यार्थ चंद्र सूचकः ॥ १ ॥

१४।५।१९०५ } गोस्वामि रामरंग शास्त्री, मुख्य संस्कृता ध्यापक, राजकीय पाठशाला, लाहौर ॥

---

(५) सत्यार्थ चंद्रोदय जैन–इस पुस्तकमें, यह दिखलाया है कि, मूर्त्तिपूजा जैन सिद्धांतके विरुद्ध हैं । युक्तियें सबकी समजमें आने वाली हैं । और उत्तम हैं, दृष्टांतोंसें जगह २ समजाया गया है । और फिर जैनधर्मके सूत्रोंसे भी–इस सिद्धांतको पुष्ट किया है । जैनधर्म वालोंके लिये यह ग्रंथ अवश्य उपकारी है ॥

लाहौर—राजाराम पंडित० संपादक आर्य ग्रंथावली ॥

---

(६) अंग्रेजीमें—पी० तुलसीराम. बी० ए० लाहौर ॥

(७) गुरुमुखी अक्षरोंमें—

* इनसातों पंडितोंको, न जाने किस कारणसें फसाये होंगे ।

---

* कितनेक पंडितोंने तो वडी २ उपमाओ देके, ढूंढनीजीकी, वडी ही जूठी प्रशंसा कीई है । सो सत्यार्थसें, अर्थके साथ विचार लेना ॥

क्योंकि जैन धर्मका जंडाको लेके फिरने वाली. ढूंढनी पार्वतीजीको ही, जैन धर्मके तत्त्वोंकी समज नहीं हैं, तो पिछे जैन धर्मके तत्त्वों-की दिशा मात्रसें भी अज्ञ, ते पंडितोंका हम क्या दूषण निकालें? ॥ इसमें तो कोइ एकाद प्रकारकी चालाकी मात्र ही दीखती है। ते सिवाय नतो पंडितोंने किंचित् मात्रका भी विचार किया है। और नतो ढूंढनी पार्वतीजी भी जैन धर्मका तत्त्वको समजी है। मात्र भव्य प्राणियांको जैन धर्मसें सर्वथा प्रकारसें भ्रष्ट करनेको प्रवृत्तमान हुई है ॥

केवल इतना ही मात्र नहीं, परंतु अपनी स्त्री जातिकी तुछता कोभी प्रगट करके, जाति स्वभाव भी जगें जगेंपर दिखाया है, और परमप्रिय वीतराग देवकी शांत मूर्त्तिको पथ्थर, पहाड, आदि निंद्य वचन लिखके तीक्ष्ण वाण वर्षाये है ? । और इनके पूजने वाले श्रावकोंको, और उनके उपदेशक, गणधर महाराजादिक सर्व आचार्योंको, अनंत संसारी ही ठहरानेका प्रयत्न किया है ? । और अपने आप पर्वत तनयाका स्वरूपका धारण करती हुई, और गणधर गूंथित सिद्धांतको भी तुछपणे मानती हुई, और जूठे जूठ लिखती हुइ भी, जगें जगें पर तीक्ष्ण वचनके ही वाण छोडती हुई चली गई है ? ॥

परंतु हमने यह जमानाका विचार करके, और स्त्री जातिकी तुछताकी उपेक्षा करके, सर्वथा प्रकारसें प्रिय शब्दोंसेंही लिखनेका विचार किया है, परंतु इस ढूंढनीजीका तीक्ष्ण वचनके आगे, हमारी. बुद्धि ऐसी अटक जातिंथीकि, छेवटमें किसी किसी जगेंपर ढूंढ-नीजीका ही अनुकरण मात्र करादेतीथी, तो भी हमने हमारी तर-फसे, नर्म स्वरूपसें ही लिखनेका प्रयत्न किया है. ।

परंतु जिसने, ढूंढनीजीका तदन जूठका पुंज, और केवल कपोल कल्पित, और अति तीक्ष्ण, वचनका लेख, नहीं वांचा होगा, उनको हमारा लेख किंचित् तीक्ष्ण स्वरूपसें मालूम होनेका संभव रहता है, इस वास्ते प्रथम ढूंढनीजीने—सत्यार्थ चंद्रोदयमें, जे जूठ, और निंद्य, और कटुक, शब्दो लिखे है, उसमेंसें किंचित् नमुना दाखल लिख दिखाता हुं, जिससें पाठक गणका ध्यान रहै ॥ और विचार करणेमें मसगुल बने रहें ॥

॥ देखो ढूंढनी पार्वतीजीकी चतुराइपणेका लेख ॥

(१) प्रस्तावनाका पृष्ठ. १ लेमें—ढुंढक सिवाय, सर्व पूर्वाचार्योंको, सावद्याचार्य ठहरायके, हिंसा धर्मके ही कथन करनेवाले ठरहाये है ॥ १ ॥

विचार करोकि, जैन मार्गमें जो पूर्वधर आचार्यो हो गये है, सो क्या हिंसामें धर्म कह गये है? अहो क्या ढूंढनीके लेखमें सत्यता है? ॥ और मंदिर, मूर्त्तिका, लेख है सो तो, गणधर गूंथित सूत्रोंमें ही है?। तो क्या यह ढूंढनी गणधर महाराजाओंको, हिंसा धर्मी ठहराती है? ॥

(२) आगे पृष्ठ. २१ में—चार निक्षेपका स्वरूपको समजे विना, ढूंढनीजी तो वन वैठी पंडितानी, और सर्व पूर्वाचार्योंको कहती है कि-हठवादीयोंकी मंडलीमें, तत्त्वका विचार कहां। इत्यादि ॥ २ ॥

पूर्वाचार्योंकी महा गंभीर बुद्धिको पुहचना तुमहम सर्वको महा कठीन है, परंतु हमारा किंचित् मात्रका लेखसें ही, विचार करना कि ढूंढनीजीको, निक्षेपके विषयका, कितना ज्ञान है, सो पाठक गणको मालूम हो जायगा ॥

(३) पृष्ठ. ३६ में–वीतराग देवकी, अलोकिक शांत मूर्त्ति को, जैनके मूल सिद्धांतोंमें, वर्णन करके वंदना, नमस्कार, करानें-वाले, गणधर महाराजा, सो तो सर्व भव्यात्माको मत [मदिरा] पीलानेवाले ।।

और वंदना, नमस्कार, करनेवालेको मूर्ख ठहराये । और अ-पना थोथा पोथामें जगें जगेंपर जूठे जूठ लिखनेवाली, और अ-भीतक ढूंढनेवाली ढूंढनीजी, सो तो वन बैठी पंडितानी ? ।। ३ ।।

[४] पृष्ठ. ४३ में–वीतरागकी शांतमूर्त्तिको, वंदनादिक, करनेवाले, वाल अज्ञानी ।। ४ ।।

ढूंढनीजीने, वीतरागकी मूर्त्तिके वैरीको तो, वनादिये ज्ञानी, क्या ? अपूर्व चातुरी प्रगट किई है ? ।।

[५] पृष्ठ. ५२ में–सिद्धांतके अक्षरोंकी स्थापनासें,ज्ञान नहीं होता है, ऐसा जूठा आक्षेप करके भी, कहती है कि–तुम्हारी मति तो 'मिथ्यात्वने' विगाड रख्खी है, इत्यादि ।। ५ ।।

।। इसका निर्णय, हमारा लेखसें, मालूम हो जायगा ।।

[६] पृष्ठ. ५७ में–वालककी लाठीकीतरां,अज्ञानीने, पाषा-णादिकका–विंव, वनाके, भगवान् कल्प रख्खा है ।। इत्यादि ।।६।।

।। इस लेखमें, गणधरादिक सर्व जैनधर्मीयोंको, अज्ञानी ठहरायके, अवीतकभी ढूंढकरनेवाली ढूंढनी ही ज्ञानिनी वन वैठी है ? ।।

[७] पृष्ठ. ६३ में–मूर्त्तिपूजक, कभी ज्ञानी न होंगे इत्यादि ढूंढनीजीने लिखा है ।। ७ ।।

[८] पृष्ठ. ६४ में–मूर्त्तिपूजना, गुडीयांका खेल ।।इत्यादि ८

॥ ढूंढकों, जो कुछ क्रिया करके दिखलाते है, सोभी तो गुडीयांका ही खेल हो जागया क्योंकि ढूंढक लोको भावको ही मुख्य पणे वतलाते है, तो पिछे दूसरी क्रियाओ करके, वतलानेकी भी क्या जरुरी है ? ।

[९] पृष्ठ. ६७ में–पथ्थरकी मूर्त्ति धरके, स्तुति भी लगानी नहीं चाहीये ॥ इत्यादि ॥ ९ ॥

वीतरागी भव्य मूर्त्ति, ध्यानका मुख्य आलंवन है, परंतु ढूंढनीजीको, कितना द्वेष प्रज्वलित हुवा है ? ॥

[१०] पृष्ठ. ६८ में–मूर्त्तिपूजक तो,सर्व सावद्याचार्यके, धोखेमें आये हुये है । इत्यादि ॥ १० ॥

॥ गुरु विनाका तत्व विमुख लोकाशा वणीयेका, मनः कल्पित मार्गको पकडके चलनेवाले, सो तो, धोखेमें आये हुये नहीं ? वाहरे ढूंढनीजी वाह ? ॥

[११] पृष्ठ. ६९ में–जिन मूर्त्तिका सूत्र पाठोंको, जूठा ठहरानेके लिये, पूर्वके महान् महान् सर्व आचार्योंको, कथाकार कहकर, गपौडे लिखनेवाले ठहराय दिये है ॥ इत्यादि ॥ ११ ॥

॥ इस ढूंढनीने आचार्योंका नाम देके, सूत्रकार गणधर महाराजाओंको ही, गपौडे लिखनेवाले ठहराये है ?

और स्वार्थी दो चार पंडितोंकी पाससें, स्तुति करवायके ढूंढनीजी अपने आप साक्षात् ईश्वरकी पार्वतीका, स्वरूपको धारण करके, और जैन सिद्धांतोंसें तद्दन विपरीतपणे लेखको लिखके, ढूंढकोका, उद्धार करनेका, मनमें कल्पना कर वैठी है ? क्या अपूर्व न्याय दिखाया है ? ॥

(१२) पृष्ठ. ७१ में—ढूंढनीजी शाश्वती जिन प्रतिमाओं-

का होना मूल सूत्रोंसेंही लिख दिखाती है, और लिखती हैकि–पाषाणो पासक–चेइय, शब्दसें. मंदिर, मूर्त्तिको, ठहरायके, अर्थ-कों अनर्थ करते है. ॥

ऐसा लिखके–फिर पृष्ठ. ७७ में–उवाई सूत्रका पाठसें–चेइय, शब्दसें, मंदिर मूर्त्तिका अर्थ भी करनेको, तैयार हुई है ? ॥

और पृष्ठ. १४३ में–स्वप्नके पाठसें–चेइयं ठयावेइ दव्व हारिणो मुनी भविस्सइ, लिखके मंदिर, मूर्त्तिका, अर्थको भी दिखलाती है ॥

और पृष्ठ. ८६ में–ढूंढनीजी लिखती हैकि–मूर्त्तिका नाम—चेइय, कहिं नहीं लिखा है ॥

ऐसा लिखके–पृष्ठ. १०० में–लिखती है कि–चेइय, शब्दका अर्थ,–प्रातिमा पूर्वाचार्योंने, पक्षपातसें लिखा है ॥

ऐसा कह कर पृष्ठ. ११४ में–सम्यक्त्व शल्योद्धारका, चैत्य. शब्दसें प्रतिमाका अर्थको, निंदती है ॥

और पृष्ठ. ११८ में–चेइय, शब्दसें,–प्रतिमाका, अर्थ करने वालेको, हठवादी ठहराती है ॥ १२ ॥

कैसी ढूंढनीजीके लेखमें चातुरी आई है ? ॥

(१३) पृष्ठ. १२९ में–ढूंढनीजी लिखती हैकि, सावद्याचार्योंने, माल खानेको, निशीथ भाष्यादिकमें, मनमाने गपौडे, लिख धरे है । इत्यादि ॥ १३ ॥

ढूंढनीजीने, एक सामान्य मात्र–चार निक्षेपका, स्वरूपको

समजे विना,—त्रण निक्षेप, निरर्थक, और उपयोग विनाके, लि: ख मारा। तो पिछे गुरुज्ञान विनाकी ढूंढनीजीको, निशीथ भाष्यका पत्ता नही लगनेसें, गपोडे कहैं, उसमें क्या आश्चर्य ?॥

(१४) पृष्ट. ११३ में—ढूंढनीजी लिखती हैकि—मंदिर, मूर्त्ति, मानने वाले आचार्योंने, सत्य दया धर्मका, नाश कर दिया है। इत्यादि ॥ १४॥

पाठकवर्ग! अलोकिक शांत मुद्रामय वीतराग भगवान्की भव्य मूर्त्तिका दर्शन होनेसें, ढूंढनीजीका क्या सत्यानाश हो जाता है ? जो जूठा रुदन करती है ? ॥

(१५) पाठकवर्ग, चउद पूर्वके पाठक, श्रुत केवली, गिने जाते है। ऐसें जो भद्रबाहु स्वामीजी है, उनकी रची हुई—निर्युक्तियां, सोतो अनघडित गपोडे, ढूंढनीजी कहती है ? ॥१५॥

समजनेका यह हैकि, निर्युक्तियां क्या वस्तु है, सोतो ढूंढनीजीको दर्शन मात्रभी हुये नहीं होंगे, परंतु अपनी जूठी पंडितानी पणाके छाकमें, चकचूर बनी हुई, चउदां पूर्वके पाठीकोंभी, कुछ लेखामें ही, गीनती नही है ?। अहो हमारे ढूंढकोंमें, मूढताकी प्रबलताने क्या जोर कर रख्या है ?।

(१६) पृष्ट. १३२ में—पीतांबरी दंभ धारीने, जडमें, परमेश्वर बुद्धि, कर रख्खी है। इत्यादि ॥ १६ ॥

पाठकवर्ग!—इस ढूंढनीजीने—पृष्ट. १९४ में—ऐसा लिखाथा कि—महावीर स्वामीजीके पहिलें भी—मूर्त्ति, होगी तो उसमें क्या आश्चर्य है॥

और पृष्ठ. १९८ में—लिखती हैकि, यह संवेग पीतांबर, (लुंहांपंथ) अनुमान अढाई सौ वर्षसें निकला है॥

तो पिछे पीतांवरीयोंने, मूर्त्तिमें परमेश्वरकी कल्पना किई है, यह कैसें सिद्ध करके दिखलाती है। क्योंकि मंदिर, मूर्त्तियोंतो, हजारो वर्षके वने हुये है। और चारोवर्ण (जाति) के लोक, अपना अपना उपादेयकी–मूर्त्तियोंको, मान दे रहे है, तो क्या ढूंढनीजीको, एक पीतवस्त्र वालेही दिखलाई दिये ?

(१७) पृष्ठ. १३९ में—सूत्रका–अर्थ है, सोभी ढूंढनी। और—निर्युक्तियां है, सोभी ढूंढनीही है। और सूत्रोंकी–भाष्य, है सोभी ढूंढनीजी। अपने आप वनी जाती हुई, कहती है कि–तुम्हारे मदोन्मत्तोंकी तरह, मिथ्याडिंभके, सिद्ध करनेके लिये, उलटे कल्पित अर्थ रूप, गोले गरडानेके लिये, निर्युक्ति नामसें, वडेवडे पोथे, वनारक्खे है, क्या उन्हे धरके हम वांचे ?। इत्यादि ॥ १७ ॥

पाठकगण ! चतुर्दश पूर्व धर, किजो श्रुत केवली भद्र वाहु स्वामीजी है उनकी रची हुई, नियंत्रित अर्थ वाली, निर्युक्तियां, सो तो कल्पित अर्थके गोले, ॥ और अगडं बगडं लिखके, मूढोंमें पंडितानी वनने वाली, आजकलकी जन्मी हुई, जो ढूंढनीजी है, उनके वचन, सो तो यथार्थ–निर्युक्तियां और यथार्थ–भाष्य अहो क्या अपूर्व चातुरी, मूढोंके आगे प्रगट करके दिखलाती है ? ॥

(१८) पृष्ठ. १४४ में—लिखती है कि—मूर्त्तिपूजाके, उपदेशको, कुमार्गमें गेरनेवाले है ॥ १८ ॥

सूत्रार्थके अंतमें, यह अर्थ, जो ढूंढनीजीने लिखा है सो, केवल मनः कल्पित, जूठ पणे लिखा है ॥

(१८) पृष्ठ. १५९ में—लिखती है कि–मूर्त्ति–पूजा, मिथ्यात्व, और, अनंत संसारका हेतु ॥ १९ ॥

गुरु परंपराका ज्ञानसें राहित, हमारे ढूंढको, सूत्रका परमार्थको समजे विना, जो मनेमें आता है सोही लिख मारते है ।। देखोकि, प्रथम पृ. ७३ में—इस ढूंढनीने, पूर्णभद्र, यक्षादिकोंकी, पथ्थरकी, मूर्त्तियोंकी पूजासें, धन, दोलत, पुत्रादिक प्राप्त होते है, ऐसा लिखके, सब ढूंढकोंको, लालचमें डालेथे ॥

और पृष्ठ. १२६ में—"कयबलिकम्मा" के पाठार्थमें—नित्य (दररोज) कर्त्तव्यके लिये—वीर भगवानके भक्त श्रावकोंको, पितर, दादेयां, बावे, भूत, यक्षादिककी मूर्त्तिके पूजनेवाले बताये है ।। तो अब विचार करनेका यह है कि—वीतराग देवकी मूर्त्तिको पूजे तो मिथ्यात्व, और अनंत संसारका हेतु, और पूजाका उपदेशक, कुमार्गमें गेरने वालें, ढूंढनीजीने लिख मारा । और भूतादिक, मिथ्यात्वी देवोंकी मूर्त्ति पूजा, दररोज श्रावकोंकी पास करवानेका, ढूंढनीजी तो उपदेशको देने वाली, और इनके भोंदू ढूंढको, भूतादिक मिथ्यात्वी देवकी मूर्त्तिको, दररोज पूजने वाले, कौनसें खडडेमें, और कितने काल तक रहेंगे, उनका प्रमाणभी तो, ढूंढनीजीने लिखके ही दिखाना चाहीताथा ? । पाठक गण जो तदन मूढताको प्राप्त होके जूठे जूठ लिखनेवाले है उनको हम क्या कहेगे ? ।।

केवल जूठ ही लिखनेसें, संतोषताको प्राप्त नहीं हुई है, परंतु आज तक शुधी जितने पूर्व धरादिक, महान् महान् आचार्यो हो गये है, उनका सर्वथा प्रकारसें वारंवार तिरस्कार करनेको, जगें जगें पर राक्षसी कलम चलाई है ।।

क्योंकि—इस ढूंढनीजीने—जैन धर्मके नियमका, एक पुस्तक, भिन्नपणेभी छपवायके—उसका पृष्ठ. १३ सें—इनका सत्यार्थ चंद्रोदयकी जाहीरात, भी छपवाई है । उसका पृष्ठ. १४ सें—लिखती हैकि—इस पुस्तकमें प्राचीन जैनधर्म ढूंढिये मतका—सूत्रोंद्वारा मंडनही नहीं

किया, वरंच सूत्रप्रमाण, कथा, उदाहरण, तथा युक्ति, आदिसें हस्तामलक करानेमें-कुछ भी बाकी नहीं छोडी ।.वरंच द्रव्यनिक्षेप, भाव निक्षेप, मूर्त्तिपूजन निषेध, चेइय शब्द वर्णन, शास्त्रोक्त वर्णनके अतिरिक्त प्रश्नोत्तरकी रीति ।

और पीतांबर धारियोंके-नवीन मार्गका मूलसूत्रों, माननीय जैन ऋषियोंके-मंतव्यों, प्रबल युक्तियोंमें खंडन किया है । और युक्तियेंभी ऐसी प्रबल दीं हैंकि--जिनको जैन धर्मारूढ-नवीन मतावलंबियोंके सिवाय, अन्य संप्रदायिकभी, खंडन नहीं कर सकते । वरंच बडे २ विद्वानोंनेभी श्लाघा (प्रशंसा) की है । इस पुस्तकमें विशेष करके श्री आत्माराम आनंदविजय संवेगीकृत, जैनमार्ग प्रदर्शक—नवीन कपोल कल्पित ग्रंथोंकी, पूर्ण अंदोलना की है ॥ इत्यादि ॥

पाठकवर्ग ? इस ढूंढनीजीका-जूठा गर्विष्टपणेका लेखमें,जैन धर्मके नियमानुसार एकभी बात हैया नहीं ? सो हमारा लेखकी साथ एकैक बातका पुक्तपणे विचार करते चले जाना ॥

हमारे ढूंढकभाइयों १ प्राचीन है या-अर्वाचीन ? यह भी विचार करते चले जाना । ढूंढनीजीका लेख-२ सूत्रों द्वारा है कि-केवल कपोल कल्पित ?

यह भी दूसरा विचार करना । और ३ युक्तिवाला है कि-केवल कुयुक्तिवाला ? सोभी विचार करना । और ४ द्रव्य निक्षेप, ५ भाव निक्षेप, ६ मूर्त्तिपूजन निषेध, ७ चेइय शब्दका वर्णन शास्त्रोक्त है कि-केवल ढूंढकोंका कपोल कल्पित है ?

इस बातोंका भी पुक्तपणे विचार करते चलेजाना । फिर भी ढूंढनीजी लिखती है कि-पीतांबरधारियोंके-नवीन मार्गका, ८

मूल सूत्रों, और माननीय जैन ऋषियोंके–९ मंतव्योंका, प्रबल युक्तिसें खंडन किया है।

इस लेखमें भी विचार करनेका यह है कि–हमारे ढूंढक भाइयों–वीतराग धर्मके अवलंबन करनेवाले है कि, जैन धर्मको एक कलंक रूपके है? क्यौंकि–जैनके तत्त्वरूप–सूत्रोंका, और प्राचीन माननीय जैन धर्मके, महान् महान् ऋषियोंका–मंतव्योंका भी, खंडन करनेको उद्यत हुये है? तो अब हमारे ढूंढकोंको–किस मनमें गीनेंगे?।

फिर भी लिखती है कि–प्रबल युक्तियोंसें खंडन किया है। इस वातमें हम इतना ही कहते है कि गुरुविनाकी ढूंढनीजीमें प्रथम जैन तत्त्वोंको समजनेके ही ताकात नहीं है, तो पीछें जैन धर्मके–सूत्रोंको और जैन धर्म के महान् महान् ऋषियोंके–मंतव्योंको,खंडन ही क्या करनेवाली है?।

फिर लिखती है कि–युक्ति भी ऐसी प्रबल दी है कि–जैन धर्मारूढ तो खंडन नहीं कर सकते है, परंतु अन्य संप्रदायिक भी खंडन नहीं कर सकतें। हे ढूंढनीजी! थोडासा तो ख्यालकर कि–समकित सारमें–जेठमलजी ढूंढकने किइ हुइ–जूठी कुनकों, कितने दिन चलीथी?।

और गप्प दीपिकाम–तेरी ही किइ हुइ–जूठी कुनकों भी, कितने दिन तक चलीथी? तो अब तेरा सत्यार्थकी–जूठी कुनकों भी कितने दिन चलेगी?

किस वातपर जूठा गुमान कर रही है? सत्यके आगे जूठ कहांतक टीक रहेगा?! ढूंढनीजी लिखती है कि–बडे बडे विद्वानोंने भी श्लाघा (प्रसंसा) की है।

हे ढूंढनीजी ? इसमें भी ख्याल करना कि-जब तूंने जैनधर्मके तत्त्वोंसें-विपरीत लेखको लिखा, तब ही जैनधर्मसें विरोध रखनेवाले-ते पंडितोंने, तेरी प्रसंसा कीई ? इस बातसें तूंने क्या झंडा लगाया ?। पाठकगण ! इस जाहीरातमें-ढूंढनीजीने-प्रथम यह लिखा है कि-सूत्रप्रमाण, कथा, उदाहरण, युक्ति आदिसें, हस्तामलक करानेमें-कुछ भी बाकी नहीं छोडी।

इसमें इतनाही विचार आता है कि-आजतक जो जो जैन धर्मके-धुरंधर महापुरुषों हो गये सो तो-सूत्रादिक प्रमाणोंसें हस्तामलक करानेमें सब कुछ बाकी ही छोड गये है। केवल--साक्षात्पणे पर्वत तनयाका स्वरूपको धारण करके-इस ढूंढनीजीने ही-कुछ भी बाकी नहीं छोडा है ?। हमको तो यही आश्चर्य होता है कि, इस ढूंढनीजीको-जूठा गर्वने, कितनी बे भान बनादी है ?।

क्योंकि ढूंढनीजीने-जैनधर्मके तत्त्वकी व्यवस्थाका नियमानुसार-एक भी बात, नहीं लिखी है। तो भी गर्व कितना किया है ? सो हमारा लेखकी साथ विचार करनेसें-पाठक वर्गको भी-मालूम हो जायगा।

और हम भी उस विषयके तरफ वखतो वखत पाठक वर्गका किंचित् मात्र ध्यान खेचेंगे। और ढंढनीजीकी कुयुक्तियांको, तोडनेके सिवाय, नतो अशुद्धियांकी तरफ लक्ष दिया है। और नतो पाठाडंबर करके-वांचनेवालेको कंटाला उत्पन्न करनेका विचार किया है। केवल श्री अनुयोग द्वार सूत्रके वचनानुसार-चार निक्षेपका, यत् किंचित् स्वरूपको ही-समजानेका विचार किया है। सो विचार करनेवाले-भव्य पुरुषोंको, हमारा यही कहना है कि-आजकालके नवीन पंथीयोंके विपरीत वचनपर आग्रह नहीं करके,

केवल गणधरादि महापुरुषोंके ही–वचनोंका आश्रय अंगीकार करना? यद्यपि ढूंढक पंथमें–बहुतेक साधु, और श्रावक, बडे २ बुद्धिमान् भी हुये होंगे, और वर्त्तमान कालमें भी होंगे। परंतु गुरु परंपराका ज्ञानके अभावसें, आजतक नतो कोइ निक्षेपोंकी दिशा मात्रको समजा है। और नतो कोइ नयोंकी दिशा मात्रका भी विचार कर सक्या है। केवल दया दया मात्रका जूठा पोकार करते हुये, और जैन धर्मके सर्व मुख्य ३ तत्त्वोंको विपरीतपणे ग्रहण करते हुये, वीतराग देवकी परम भव्य मूर्त्तियांको, और जैन धर्मके धुरंधर सर्व महा पुरुषोंको, निंदते हुये । गुरुद्रोहीपणेका महा प्रायश्चित्तकोही उठाते रहे है। उनोंकी दयाकी खातर, और भव्य जीवोंके उपकारकी खातर, हमने दो ग्रंथ बनानेका परिश्रम उठाया है सो–सत्यार्थ चंद्रोदय–और सत्यार्थ सागर–और धर्मना दरवाजा॥ आदि ढूंढक ग्रंथोंमें लिखे हुये–चार निक्षेप, और–सात नयादिक, विचारके साथ, हमारा लेखको मिलाके देख लेना। और भवोभवमें आत्माका घातक, दुराग्रहको छोड करके, योग्य बातपर लक्ष लेना॥ इति अलमधिक प्रपंचेन॥

सूचना—पाठकगण! हमारी मूलभाषा गूजराती है परंतु पंजाबी लोकोंकी असह्य प्रेरणासें, और हिंदी भाषाके लेखका उत्तर होनेसें, हमको भी हिंदी भाषामें ही लिखना पडा है, सो किसी स्थानमें यत् किंचित् भाषा दोष हुवा हो तो–क्षमा करके, मात्र तत्वका ही लक्षको करना। और छापावालेकी गफलत हुइ हो तो उनको भी समालके वाचना॥

लि॰ मुनि अमरविजय, पुना।
सं॰ १९६६ कार्त्तिक मास ११

अनुक्रमणिका.

विषय— पृष्ठ.

॥ इति ढूंढक हृदय नेत्रांजनस्य प्रथम विभागस्य अनुक्र-
मणिका समाप्ता ॥

प्रथम भाग तात्पर्य प्रकाशक, दुहा बावनीकी, अनुक्रमणिका, नीचे मुजब ॥

॥ इति तात्पर्य प्रकाशक दुहा बावनीकी अनुक्रमणिका संपूर्ण ॥

॥ मूढोंका विचारताकी निष्फलता कालेख ॥

॥ढूंढक हृदयनेत्रांजन द्वितीय विभागस्य अनुक्रमणिका॥

विषय— पृष्ठ.

॥ इति ढूंढक हृदय नेत्रांजनस्य द्वितीय विभागस्याऽनुक्रमाणिका समाप्ता ॥

॥ प्रतिमामंडन स्तवनावली संग्रहानु क्रमणिका ॥

॥ इति श्रीमद्विजयानंदसूरिशिष्य, मुनिअमर विजय कृता, स्तवन संग्रहावलीकी, अनुक्रमणिका, समाप्ता॥

॥ दोनों कोन्‌फरन्‌सको–सूचना ॥

॥ पाठक गण! यह–नेत्रांजन पुस्तक, तीर्थंकरोंका मूलतत्वोंको, सत्यपणे प्रगट करनेके लियें, प्रेसमें छप रहाथा जब, बंध करानेके वास्ते, संपकी हिमायती करती हुई ढूंढक कोन्‌फरन्‌स, मूर्त्तिपूजक कोन्‌फरन्‌सको–अतिप्रेरणा कर रहीथी। ओर दोनों कोन्‌फरन्‌सके अनेक पत्रो, हमारीं उपर आते रहेथे! और हम योग्य उत्तर लिखते रहेथे। ओर–जैन समाचार, ढूंढक पत्रभी, संपकी हिमायती करता हुवा, वारंवार पोकार उठाता रहाथा। सो बहुतेक लोकोंको मालूम होनेसें, सब लेख हम दरज नहीं करते है। परंतु सत्य संपकी, हिमायत करने वाली–दोनों कोन्‌फरन्‌सको, हमारी यह सूचना हैकि–ढूंढकोंके पुस्तकका, और हमारी तरफसें बहार पडे हुये दोनों पुस्तकका, मुकाबलाके साथ, दो दो मध्यस्थ पंडितोंको विठाके, निःपक्षपातसें–निर्णय करा लेवें। और–तीर्थंकर, गणधरादिक, सर्व आचार्योंकी–जूठी निंदा करने वालोंको, योग्य शासन करें। अगर जो ऐसा न करेंगे तो, कोन्‌फरन्‌सो हैसो सत्य संपकी हिमायती करने वाली है ऐसा, कोईभी न मानेंगे। किंतु–तीर्थंकर, गणधरादिक, सर्व महा पुरुषोंकी निंदा करने वालोंकी ही–हिमायत करनेवाली है। ऐसा खटका, सबके दिलमें, बना ही रहगा ॥ इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ ढूंढक हृदय नेत्रांजनं ॥

अथवा

॥ सत्यार्थ चंद्रोदयाऽस्तकं ॥

॥ मंगलाचरण ॥

ऐंद्र श्रेणिनता प्रतापभवनं भव्यांगिनेत्राऽमृतं, सिद्धांतोपनिषद्विचार चतुरैः प्रीत्या प्रमाणीकृता ॥ मूर्त्तिः स्फूर्तिमती सदा विजयते जैनेश्वरी विस्फुर न्मोहोन्माद घनप्रमाद मदिरा मत्तै रना लोकिता ॥ १ ॥

॥ अर्थः—इंद्रोकी श्रेणिसेंभी नमन हुयेली, और प्रतापका घर, और भव्य पुरुषोंके नेत्रोंको अमृतरूप, और सिद्धांतके रहस्य विचारी पुरुषोंने वडी प्रीतिके साथ प्रमाण किई हुई, ऐसी श्री जिनेश्वर देवकी " मूर्त्ति " सदा (सर्वकाल) आ दुनीयामां जयवंती रहो। और यह मूर्त्ति कैसी है कि, विस्फुरायमान जो मोह, तिससें हुवा उन्माद, और अत्यंत प्रमाद, यही भइ ' मदिरा ' उनके वशसें बने है मदोन्मत्त, उनोंसें नही देखी गई यह जिनमूर्त्ति है ॥ ॥ इति काव्यार्थः ॥

॥ किं कर्पूरमयी सुचंदनमयी पीयूषतेजोमयी,
किं चूर्णीकृतचंद्रमंडलमयी किं भद्रलक्ष्मीमयी ॥
किंवा नंदमयी कृपारसमयी, किं साधु मुद्रामयी,

स्यंतर्मे हृदि नाथ मूर्त्ति रमला नो भावि किं किंमयी ॥२॥

॥ अर्थः—हे भगवन् तुमेरी " मूर्त्ति " क्या कर्पूरमय है? अमृतका तेजरूप है ? क्या चूर्ण किया हुवा चंद्रका मंडलरूप है ? अथवा भद्रलक्ष्मीरूप है ? अथवा केवल आनंदरूप है ? वा कृपाके रसमय है ? वा साधुकी मुद्रामय है ? एसी निर्मल मूर्त्ति मेरे हृदयमे क्या क्या रूपको धारण नही करती है ? अर्थात् सर्व प्रकारके जो जो उज्वल रूप पदार्थ है, उनकाही भावको, मेरे हृदयमें प्रकाशितपणे हो रही है ॥ २ ॥ ॥ इति मंगला-चरणं ॥

॥ अब इस ग्रंथ करनेका प्रयोजन ॥

सत्यार्थ चंद्राऽर्थक नामधेयं, शस्त्रं जनानां न तु शास्त्रभावं
॥ इत्येव मत्वा मुनिनाऽमरेण, कृता समालोचन
सामवार्त्ता १

॥ अर्थः—सत्यार्थ चंद्रोदय नामका " पुस्तक " शास्त्र रूप नही है, किंतु लोकोंको, केवल शस्त्ररूप ही है; वैशा समजकर "मुनि-अमरविजयने " यह समालोचन करणे रूप, सम वार्त्ताकी रचना, किई है ॥ १ ॥

॥ प्रथम " चार निक्षेपका " लक्षण कहते है ॥

॥ " नाम निक्षेप " लक्षण ॥ आर्याछंद ॥

यद्वस्तुनोऽभिधानं, स्थित मन्यार्थे तदर्थ निरपेक्षं ॥
पर्यायानऽनभिधेयं च नाम याद्दच्छिकं च तथा ॥ १ ॥

॥ अर्थः–" नाम " है सो ' तीन ' प्रकारसें रखा जाता है जो भाव वस्तुओंका (अर्थात् पदार्थोंका) नाम चला आता है सो, प्रथम प्रकारका नाम है ॥१॥ ते "नाम" अन्य वस्तुओं में स्थित होके, उनके पर्यायवाची दूसरे नामको नही जनावें सो, दूसरा प्रकारका ' नाम ' है ॥ २ ॥ अपणी इछापूर्वक हरकोइ " नाम " रखलेना यह तिसरा प्रकारका " नाम " समजना ॥ ३ ॥ *

॥ तात्पर्य–विमानके अधिपतिओंमें " इंद्र " नामका, ही " निक्षेप " होता रहेगा, और पुरंदर, शचीपति, मघवा, आदि, पर्यायवाची नामकी प्रवृत्तिभी किई जावेगी ॥ जैसें कि,–ऋषभदेव, नाभि सुत, आदिनाथ, आदि प्रथम तीर्थंकरमें, नामकी प्रवृत्ति होती है । यह प्रथम प्रकारके नामका तात्पर्य ॥ १ ॥ यही पूर्वोक्त इंद्रादिक, ऋषभदेवादिक, नाम है सो, जब दूसरी वस्तुओंमें दाखल किये जावें तब, उनके पर्यायवाचक पुरंदरादिक, और नाभि सुतादिक, जो विशेष नाम है, उनकी प्रवृत्ति दूसरी वस्तुओंमें नहीं कि जावेगी । जेसैं कि–गूज्जरके पुत्रका नाम " इंद्र " दिया है, परंतु इस गूज्जरके पुत्रमें–शचीपति, पुरंदर, आदि जो इंद्रके विशेष नाम है, उनकी प्रवृत्ति नही किई जावेगी. ॥ ऐसें ही दूसरा ऋषभदेवके नामवाले पुरुषमें–आदिनाथ, नाभिसुत आदि पर्याय वाची, दूसरे नाम नही दिये जावेंगे। यह दूसरा प्रकारके नामका तात्पर्य ॥ २ ॥ अव तिसरा प्रकारका रखा हुवा, नाम है सो, व्या-

---

* संकेतित नामका उच्चारण, जिस 'वस्तुके' अभिप्रायसे किया, वह नाम श्रवण द्वारा होके, मनको जिस 'वस्तुका' बोध करा देवे, सोइ नाम, तिस वस्तुके नामनिक्षेपका, विषय समजना. इसमें तीनो प्रकारके नामका समावेश होता है ॥

करणादिकसें, सिद्ध हुये विनाके शब्दोका, समजना। जैसें कि–डित्थ, कवित्थ, गोलमोल, आदि, अपणी इछा पूर्वक रखा गया सो समजना ॥ ३ ॥

॥ जो यह " तीन " प्रकारसें नाम रखे जाते है, उसको ही जैन सिद्धांतकारोंने, नामनिक्षेपके स्वरूपसें, वर्णन किये है ॥ परंतु दूसरा कोइ भिन्न स्वरूपवाला, " नाम निक्षेपका " प्रकार नही है ॥

॥ इति प्रथम " नामनिक्षेपका " लक्षणादिक स्वरूप ॥

॥ अब दूसरा " स्थापना निक्षेपका " लक्षणादिक, कहते है ॥

यत्तु तदऽर्थवियुक्तं, तदऽभिप्रायेण यच्च तत्करणि ॥
लेप्पादि कर्म स्थापनेति, क्रियतेऽल्पकालं च ॥२॥

॥ अर्थः–जे वस्तुमें जो गुण है, उनके गुणोंसे तो रहित, और उसीके अभिप्रायसें, उनके ही सदृश, जो करणि, (अर्थात् सद् रूपा जो आकृति) जैसे–तीर्थंकरादिककी मूर्त्ति, ॥ १ ॥ " चकारसें " २ अन्यथा प्रकारसेंभी (अर्थात् असद् रूपा " यह दोनो भेदवाली स्थापना, लेप्यादिक दश प्रकारमे करनेकी, सूत्रकार दिखावेंगे, उस विधिसें किई जो " स्थापना " उसका नाम " स्थापना निक्षेप " है, सो " स्थापना" अल्प कालकी, और चकारसें, यह तात्पर्य है कि, यावत् कालतककी भी किई जाती है ॥ २ ॥ ×

× जिस नामवाली वस्तुका, सदृशरूपकी आकृतिसें, अथवा असदृशरूपकी आकृतिसें, नेत्रादिक द्वारा होके, मनमें बोध होजाना, सोई उस वस्तुका, स्थापना निक्षेपका, विषय समजना ॥

तात्पर्य–जैसेंकि–इंद्र पदसें च्यवन होके, मनुष्यपणे प्राप्त हुये-को " इंद्र " कहना, यह भूतकालकी अपेक्षासें ॥ और मनुष्य पदसें च्यवन होके, इंद्रपणे उत्पन्न होने वाले मनुष्यकोंभी " इंद्र " कहना, यह भावी कालकी अपेक्षासें । जैसेंकि–पुत्रको पट्टाभिषेक करके, राज कार्यसें निवृत्त हुये राजाकोभी, " राजा " कहना. । अथवा राज्य प्राप्त होने वाला कुमरको, " राजा " कहना. । इहां १ चेतन वस्तु, कारण रूप द्रव्य है ॥ अब जो काष्टादिक वस्तुसें, उत्पन्न हुयेली, डव्वी आदिक वस्तुमें, काष्टका आरोप करणा ॥ अथवा काष्टादिकसे, उत्पन्न होने वाली, डव्वी आदि वस्तु काष्टमेंही है वैसा मान लेना, सो इहां दोनो जगे पर, २ अचेतन, काष्ट ही कारणरूप द्रव्य है ॥ ऐसें ही जो चेतन अचेतनरूप वस्तुसें, उत्पन्न हुयेली, अथवा उत्पन्न होने वाली, वस्तु होवें, उनका कारण, ३ चेतन अचेतनरूप, समजना ॥

यह जो १ चेतनरूप वस्तु । अथवा २ अचेतनरूप वस्तु । अथवा ३ चेतना चेतनरूप वस्तु है । उनका भूतकालमें, अथवा भविष्यकालमें, जो कारणरूप पदार्थ है, सोई " द्रव्य निक्षेप "का विषय है ॥ क्योंकि कारण विना, कार्यकी उत्पत्ति, होती ही नही है । परम उपयोगी जो, " कारणवस्तु " है, वही कार्यभावको " प्राप्त होता है, उनको " द्रव्य निक्षेप " का विषय माना है सो निरर्थक स्वरूप कभीभी न होगा. ।

॥ इति तृतीय " द्रव्य निक्षेपका " लक्षणादि स्वरूप ॥

॥ अथ चतुर्थ " भाव निक्षेपका " लक्षणादि लिखते है ॥

॥ भावो विवक्षित क्रियाऽनुभूतियुक्तो वै समाख्यातः ॥

सर्वज्ञैरिङ्गितैर्दिष्टं दृश्यादि क्रियाऽनुभवत् ॥ १ ॥

॥ अर्थः—व्याकरणकी व्युत्पत्ति द्वारासें, अथवा शास्त्रका संकेतसें, अथवा लोकोंके अभिप्रायसें, जे जे शब्दोंमें जे जे क्रियाओ मान्य किई हुई हो, ते ते क्रियाओंका, ते ते वस्तुओंमें, (अर्थात् पदार्थोंमें) वर्तन होता हो, तब उस वस्तुको, " भाव रूप " सर्वज्ञ पुरुषोंने कहा है । जैसेंकि—परम ऐश्वर्य परिणामका भोगको, वर्त्तन करता हुवा इंद्र है, सोई " भाव इंद्रका " विषय है । क्योंकि—जिस वर्त्तमान कालमें, साक्षात् रूप इंद्रमें, परम ऐश्वर्यकी क्रियाका, अनुभव हो रहा है । यही भावस्वरूपके वस्तुओंको, जैन सिद्धांतकारोंने, " भाव निक्षेप " का विषयस्वरूपसेंही माने है ॥

॥ इति श्लोकार्थः

॥ तात्पर्य—जिस जिस* भाव निक्षेपके विषयभूत वस्तुमें जे जे नाम दिये गये हैं, अथवा दीये जाते है, सो सो "नामनिक्षेप" ही है। सो सो नाम निक्षेप है सो, संकेतके ज्ञाता पुरुषोंको, वह नामका श्रवण मात्र है सोई उसी भावनिक्षेपरूप वस्तुकाही, बोधकी जागृति कराता है, प्रत्यक्ष वस्तु होवे उसका प्रत्यक्षपणे, और परोक्ष वस्तु होवे उसका परोक्षपणे ॥ १ ॥ परंतु जो पुरुष संकेतको नहीं जानता है और परोक्ष वस्तुको देखीभी नहीं है वह, पुरुष उस भाव वस्तुका बोधको नहीं प्राप्त हो सकता है. तब उस पुरुषके वास्ते, वही नाम निक्षेपका परोक्ष पदार्थकी, " आकृति " दिखाकेही, विक्षणपणे बोध कर सकते है, वह किई हुई आकृति है सो, भावरूप पदार्थके

---

* दुनीयामें जितने वस्तु, द्रव्य, अद्रव्य रूपसें कही जाती है, वह सभी भी भावनिक्षेपके विषयभूतकी ही है ॥

सदृश होनेसे, भाववस्तुका बोध करानेमें, नाम सेभी विशेषही कारणरूप होती है, परंतु निरर्थक रूपकी नही है ॥२॥

॥ अब भाव पदार्थकी जो पूर्व अवस्था है, अथवा अपर अवस्था है, सोभी उस भाव पदार्थका " द्रव्य स्वरूप " परम कारणरूप होनेसें, उसी भाव पदार्थकाही बोध कराने वाला है, इस वास्ते सर्व प्रकारसे ही उपयोग स्वरूपका है, परंतु निरर्थक रूप नही है ३ ॥ अब चतुर्थ निक्षेपका विषयभूत जो 'भावपदार्थ' है, सो तो उपयोग स्वरूपकाही है, ॥ इति चार निक्षेपका सामान्य प्रकारसें तात्पर्य ॥

॥ विशेष समजूती–जिस जिस " नामका " आदर होता है, सो सो, केवल नाम मात्रका नही होता है, परंतु उस नामके संबंधवाला, " भाव पदार्थका " ही आदर होता है. । जैसें–ऋषभादिक नामका, आदर करनेसें, हम तीर्थकरोंकाही आदर करते है ॥ यद्यपि यह ऋषभादिक नाम, दूसरी वस्तुओंका होगा, तोभी हमको बाधक न होगा, क्योंकि–जिस जिस वस्तुके अभिप्रायसें, नामका उच्चारण करेंगे, उस उस वस्तुकाही बोध करानेमें, नाम उपयोगवाला रहेगा, इस्सें अधिक नाम निक्षेपका प्रयोजन नही है ॥ १ ॥

अब यही " " ऋषभादिक " नाम है सो, अनेक वस्तुओंके साथ संबंधवाले हो चुके है, अथवा होते है, उस उस " भाववस्तुका " दुर्लक्ष करके भी, इसीही ऋषभादिक के नामसें, हम हमारा जो इष्ट रूप तीर्थकरो है, उस वस्तुकाही लक्ष कर लेते हैं; और हमारा परम कल्याण हुवा, एसें नामके उच्चारण मात्रसें ही मानते है, तब जो खास वीतराग दशाका बोधको करानेवाली, और तीर्थंकरोंके ध्यानस्थ स्वरूपकी, और ऋषभादिक नाम निक्षेपकीतरां, दूसरी वस्तुओंसें, संबंधको नही रखनेवाली, जिनेश्वर भगवानकी

मूर्त्तियांका, आदर करनेसें, हमारा कल्याण क्यों न होगा ? अपितु निश्चय करकेही, हमारा कल्याण होगा. । जो हम एक प्रकारसें विचार करें तो, नामसेंभी, मूर्त्तियां है सो, विशेषपणेही "वस्तुका" बोध करानेवालीयां होती है. कारण यह है कि–ऋषभादिक नाम है सो, दूसरी वस्तुओंके साथ, मिश्रितपणेभी होते रहते है, परंतु वीतरागी मूर्त्तियां तो, किसीभी दूसरी वस्तुओंके साथ, संबंध नही रखतीयां है, यही मूर्त्तियांमें विशेषपणा है ॥ २ ॥ अब जो ऋषभादिक नाम, और उनकी मूर्त्तियां, हमारा कल्याणको करने वाली हो चूकी है, उस तीर्थंकरोंकी–बाल्यावस्था, अथवा मृतक देहरूप अपर अवस्था है सो, देवताओंका चित्तको भी, भक्तिभाव करनेको द्रवित करती है, सो तीर्थंकर 'भावका' कारणरूप शरीरकी, भक्तिभाव करनेको, हमारा चित्त द्रवीभूत क्यों न होगा ? अपितु अवश्यही होगा, परंतु हमारा भाग्यकी न्यून्यता होनेसें, ऐसा संबंधही मिलनेका कठीन है ॥ ३ ॥ अब जे जे वस्तुओ साक्षात्पणे है, और उनकी प्रवृत्ति; अपणे अपणे कार्यमें हो रही है, सोई " भाव निक्षेपका " स्वरूपकी है. ॥ जिसको जो वस्तु उपादेयरूप है, सो तो अपणा उपादेयके स्वरूपसें मानताही है. । इस वास्ते साक्षात् तीर्थंकरो है सो तो, हमारा उपादेय रूपही रहेंगे । इसमेंतो कुछ विवादका स्वरूप ही नही है ॥ ४ ॥ इतिचार निक्षेपकी समजूती ॥

॥ अब दूसरी प्रकारसेंभी किंचित् समजूती करके दिखावते है अब जिस वस्तुके " नाम निक्षेपकी " अवज्ञा करेंगे, उससेभी उस 'भाव' पदार्थकी ही अवज्ञा होती है, जैसें–अपने शत्रुके नामकी अवज्ञा लोक करते है. ॥ १ ॥ फिर उस शत्रुकी मूर्त्तिकोभी विकृत वदनसेंही देखते है ॥ २ ॥ और उनकी पूर्व अपरकी अवस्था-

को श्रवण करकेभी आनंदित होते ही नही है, सोभी उस 'भाव' पदार्थकीही अवज्ञा है ॥ ३ ॥ ऐसें सर्व पदार्थोंके विषयमें विचारणेका है ॥ इति द्वितीय प्रकार.

इसमें फिरभी विशेष यह है कि—जो 'भाव' पदार्थ, जिस पुरुषको, अनिष्ट रूप है; उस पुरुषकों उसका नाम निक्षेप ॥ १ ॥ उसकी स्थापना ॥ २ ॥ उनकी पूर्व अपर अवस्थाका स्वरूप भी ॥ ३ ॥ दिलगीरी ही करानेवाले होते है इत्यादिक समजूति, दूसरे भागमें, विशेषपणे करके हम दिखावेंगे.

एक ढूंढककी तर्क—जैन सूत्रोंमें,—चार निक्षेप कहे है, इससें सिद्ध होता है कि, तीर्थंकर भगवानने चार ही बातकी छुट, दीई हुई है, इसमेंसें कभी एक बात, हम न माने तो, क्या संसार सागर नही तरसकते है ? तुम चार निक्षेपको मानने वाले ही तरोंगे इति अभिप्रायः ॥

उत्तर—तर्कवालेकों, हम इतनाही पुछते है कि—नवतत्त्वमेंसें एक तत्त्वका लोप, कोई पुरुष दुराग्रहसें करें, और उनका लोप विषयकाही उपदेश देवें, वह संसार सागर तरें के नही ? और ऐसेंही षट् द्रव्यमेंसें, एक जीव द्रव्यका लोप, दुराग्रहसें करनेवाला, और छ जीवकी कायमेंसें—एक त्रस जीवकी कायका लोप, दुराग्रहसें करनेवाला, । संसार सागर तरेंके नही ? ॥ ऐसेंहि तीर्थंकर भाषित जे जे मूल स्वरूपके तत्त्वो है, उसमेंसें मात्र एकैक ही तत्त्वका लोप, दुराग्रहसें करनेवाला, संसार सागर तरेंके नही ? । तुम कहोंगेकि—ऐसें तत्त्वका लोप, करने वाला नही तर सकाता है । तवतो तुमेरे प्रश्नमें, तुमनेभी योग्य विचार कर लेना ॥ परंतु हमतो इस बातमें, ऐसा अनुमान करते है कि—गणधर गूंथित तत्त्वो-

मेसें—एक ही तत्त्वका लोप करनेवाला है, उनको, हजारो तो जैन ग्रंथोंका, और हजारो ही महान् पुरुषोंका, अनादर करके, अज्ञानांधपणेसें, महा प्रायश्चित्तका, गठडा ही, शिर पर उठाना पडता है, कारण यह है कि—वह लोप किया हुवा तत्त्व हेसो ग्रंथोंमें व्यापक, और युक्ति प्रयुक्ति आदिसें सिद्धरूपही होता है, मात्र मूलरूप जैन सिद्धांतोमें, वडी गंभीरताके स्वरूपसें, सूचितपणे होनेसें, वह एक तत्त्वका लोप करने वाला, नाम धारी उद्धत शिष्यको, प्रगटपणे मालूम नही होनेसें ही, यह प्रकार खडा होता है, इसीही वास्ते उनके पिछें चलने वालोंकों, अनेक जूठ साच वातोंको खडी करनी पडती है, तब ऐसें जैन तत्त्वमें विपर्यास करने वालेके निस्तारका निर्णय कैसें करसकेंगे ? सिद्धांतके अभिप्रायसें देखें तबतो तत्त्वोंके विपर्यास करने वालोंके अनंत संसारका भ्रमणही सिद्ध होता है । इत्यलं विस्तरेण. ॥

॥ इहांतक लक्षणकार महाराजने, जो यह चारनिक्षेपके लक्षण बांधे है सो, श्री अनुयोगद्वार सूत्रकी, एक मूल गाथाका ही अर्थ प्रगट करनेके वास्ते बांधे है. । और उस लक्षण कारके अभिप्रायसें ही, हमने भी अर्थ करके दिखाया है, परंतु कुछ अधिकपणेसें नही लिखा है ॥ सोई सूत्रकी गाथा, इहांपर लिखके भी बतावते है.

॥ तद्यथा ॥

॥ जथ्थय जं जाणेज्जा, निख्खेवं निख्खिवे निर वसेसं ।
जथ्थ विय न जाणेज्जा, चउक्कगं निख्खिवे तथ्थ ॥ १ ॥

॥ अर्थः—जिहां जिस वस्तुमें, जितने निक्षेपें करणेका जाने, वहां उस वस्तुमें उतने ही निक्षेपें करें । जिस वस्तुमें अधिक निक्षेपें

करणेका नही जान सकें, उस वस्तुमें "चार निक्षेपें" तो अवश्य ही करें. ॥ १ ॥

इसी ही गाथाको, ढूंढनी पार्वतीजीने, सत्यार्थ–पृष्ट–२० में लिखके, अर्थ भी किया है सो यह है कि–जिस जिस पदार्थके, विषयमें, जो जो निक्षेपे जाने, सो सो निर्विशेष निक्षेपे। जिस विषयमें ज्यादा न जाने, तिस विषयमें चार निक्षेपें करे। अर्थात् वस्तुके स्वरूपके समजनेको, चार निक्षेप तो करे। नाम करके समजो। स्थापना (नकसा) नकल करके समजो। और ऐसे ही पूर्वोक्त द्रव्य, भाव, निक्षेप करके समजो। परंतु इस गाथामें ऐसा कहां लिखा है कि–चारो निक्षेपे, वस्तुत्वमें ही मिलाने, वा चारों निक्षेपे वंदनीय है। ऐसा तो कही नही। परंतु पक्षसें, हठसें, यथार्थपर निगाह नहीं जमती, मनमाने अर्थ पर दृष्टि पडती है। यथा हठ वादियांकी मंडलीमें, तत्त्वका विचार कहां, मनमानी कहैं चाहे जुठ चाहे सच है ॥

॥ पाठक वर्ग इस गाथामें "अर्थ" इतना ही मात्र है कि–दूनीयामें जो वस्तु मात्र है, उनकी समज विशेष प्रकारसें भी कर सकते है, अगर विशेष प्रकारसें नही कर सकें तो, चार प्रकारसें तो, अवश्य ही करनी चाहीयें। इस विषयको सिद्धांतकारोने–चार निक्षेपकी, संज्ञासें वर्णन किया है। परंतु ढूंढनीजीने, सिद्धांतकारोंका अभिप्रायको समजे विना, अधिक पणेसें छिनकाट किया है, सो तो हमारा किया हुवा चार निक्षेपका लक्षणार्थसें ही, आप लोकोंने समज लिया होगा, और आगे पर भी जिहां जिहां विचार करते चलेंगे, वहां वहां समजाते जावेंगे। इस वास्ते इहां विशेषपणे कुछ नही लिखते है.

परंतु इस चारनिक्षेपके विषयमें, पाठक वर्गको, प्रथम इतना ख्याल अवश्यही करके हृदयमें धारण कर लेना चाहिये कि, जिससें आगे आगे समजनेको वहुत ही सुगमता हो जावें, सो ख्यालमें कर लेनेकी बात यह है कि–

॥ जे जे " भाव स्वरूपकी " वस्तुओं, उपादेय स्वरूपकी (अर्थात् प्रीति करनेके, अथवा परम प्रीति करनेके, स्वरूपकी) होती है, उनके चारो ही निक्षेप, उपादेय स्वरूपके ही रहेंगे। इसमें किंचित् मात्रका भी फरक न समजेंगे. ॥ १ ॥

और जे जे " भाव स्वरूपकी " वस्तुओं, ज्ञेय स्वरूपकी (अर्थात् ज्ञानही प्राप्त करनेके स्वरूपकी) होंगी, उस वस्तुके, चारो ही निक्षेप, ज्ञान ही प्राप्त करानेमें कारणरूप रहेंगे. । इसमें भी किंचित् मात्रका फरक न समजेंगे. ॥ २ ॥

और जे जे " भाव स्वरूपकी " वस्तुओं, हेय स्वरूपकी (अर्थात् दिलगीरी उत्पन्न करानेके स्वरूपकी) होंगी, उनके चारों निक्षेप भी, दीलगीरी ही उत्पन्न करानेमें, कारणरूप रहेंगे. । इसमें भी किंचित् मात्रका फरक न समजेंगे. ॥ ३ ॥

परंतु इसमें भी विशेष ख्याल करनेका यह है कि–जिस समुदायने, अथवा एकाद पुरुपने, जिस भाव वस्तुको उपादेय के स्वरूपसें, मानी है, उनको ही वह " भाव स्वरूप वस्तुके " चारों निक्षेप, उपादेय स्वरूपके रहेंगे. । परंतु अन्यजनोंको, उपादेय स्वरूपके न रहेंगे. । जैसें कि–" तीर्थंकररूप भाववस्तुका " चारों निक्षेपको, जैन लोक मान देते है, वैसें, अन्यमतवाले नही देते है ॥

और " कृष्न आदि भावस्तुके " चारो निक्षपको मान, जैसें उसके उसके भक्त लोक देवेंगे, वैसें, दूसरे लोक, मान नही देवेंगे. । यह जग जाहिरपणे की ही बात है. ॥

॥ अब इस " चार निच्चेपके " सामान्य बोधक, दुहे कहेते है ॥

दुहा.

वस्तुके जो नाम है, सोई नाम निच्चेप ॥
वस्तु स्वरूप भिन्न देखके, मतकरो चित्त विच्चेप ॥ १ ॥

अर्थः—जिस जिस वस्तुका जो " नाम " दिया गया है, अथवा दिया जाता है, सोई " नाम निच्चेपका " विषय है, परंतु एक नामकी. अनेक वस्तु देखके, चित्तमें विक्षोभ नही करना, । यद्यपि एक नामकी, अनेक वस्तुओ होती है; तो भी संकेतके जाण पुरुषो है सो, नाम मात्रका श्रवण करनेसें भी यथो चित्त योग्य वस्तुका ही, बोधको भास होते है ॥ १ ॥ इति नाम निक्षेप ॥

॥ किइ आकृति जिस वस्तुकि, वामे ताकाही बोध ।
सो स्थापन निच्चेपका करो सिद्धांतसें सोध ॥ २ ॥

॥ अर्थः—जिस वस्तुका, नाम मात्रका श्रवणसें, हम बोध करलेनेको चाहते है, उस वस्तुकी आकृतिसें, उनका बोध करनेको क्यों न चाहेंगे ? कारण यह है कि उस आकृतिमें तो, उसी वस्तुका ही; विशेष प्रकारसें, बोध होता है । सोई स्थापना निक्षेपका विषय है, इस बातका सोध जैन सिद्धांतसें करके देखो, यथा योग्य मालूम हो जायगा ॥ २ ॥ इति स्थापना निक्षेप ॥

॥ कारणसें कारज सदा, सो नही त्याज्य स्वरूप ।
द्रव्य निक्षेप तामें कहें, सर्व तीर्थंकर भूप ॥ ३ ॥

॥ अर्थः—वस्तु मात्रकी, पूर्व अवस्था, अथवा अपर अस्था है, सो ई कारणरूप " द्रव्य " है, उस द्रव्य स्वरूपको, सिद्धांतकारोंने, " द्रव्य निक्षेपका " विषयरूप माना है, सो कुछ त्यागनेके योग्य, नही होता है, ऐसा सर्व तीर्थंकरोंने कहा है ॥ और हम प्रत्यक्षपणे भी देखते है कि—भविष्यकालमें, पुत्रसें सुख पानेकी इछावाली माता, बालककी विष्टादिसें भी, घृणा (अर्थात् बालकका तिरस्कार) नही करती है । और अपणा पुत्रके मरण बाद भी, वडा विलाप ही करती है । अगर जो यह दोनों अवस्था, त्याज्यरूपकी होती, तव पुत्रका प्रथम अवस्थामें काहेको विष्टादि उठाती ? और मरण वाद दिलगरी भी काहेको करती ?

परंतु कारणरूप द्रव्य है, सो भी उपयोग स्वरूपका है ॥ इस वास्ते तीर्थंकरोंकी भी, पूर्व अपर अवस्था है सो भी हमारे परम पूजनिक स्वरूपकी ही है, परंतु त्याज स्वरूपकी नही है । और तो क्या परंतु जो जो पुरुष, जिस जिस भाव वस्तुको चाहनेवाले है, सो सो पुरुष उस उस वस्तुका कारणरूप " द्रव्यकाभी " योग्यता प्रमाणे, आदर, सत्कार, करते हुये ही, हम देखते है । जैसेंकि—दीक्षा लेनेवालेका, और मृतक साधुकी देहका, जो तुम ढूंढकभी, आदर करतेहों । सोभी, साधु भावका कारणरूप " द्रव्य वस्तुका " ही करते हो । तो पिछे तीर्थंकर भगवानकी, पूर्व अपर अवस्था, आदरनीय क्यों न होगी ? हमतो यही कहते है कि—मात्र भगवानके वैरी होंगे, वही तीर्थंकरोंकी

मूर्त्तिका । २ । और तीर्थंकरोंकी पूर्व अपर अवस्थाका । ३ । अनादर करनेको प्रवृत्त मान होगा, परंतु जो भव्यात्मा होगा सोतो, तीनकालमेंभी, अनादर करनेको, प्रवृत्त मान न होगा । किंतु शक्ति प्रमाणे, भक्ति ही करनेमें, तत्पर हो जावेगा ॥ ३ ॥ इत्यल मधिकेन ॥ इति तृतीय " निक्षेपका " स्वरूप.

॥ नाम आकृति और द्रव्यका, भावमें प्रत्यक्ष योग ।
तिनको भाव निक्षेपसें, कहत है गणधर लोग ॥४॥

॥ अर्थः " भाव वस्तुका " दूसरी जगेंपर श्रवण किया हुवा नाम । १ । और उनकी देखी आकृति (अर्थात्) मूर्त्ति) । २ । और पूर्व अपर कालमें, देख्या हुवा द्रव्य स्वरूप । ३ । यह तीनोकोभी, प्रत्यक्षपणे जिस " भाव वस्तुमें " हम जाण लेवें, सोई " भाव निक्षेपका " विषयभूत पदार्थ है । ऐसा गणधर लोकोने ही, सिद्धांत रूपसें वर्णन किया है ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ " भाव निक्षेपका " स्वरूप ॥

॥ इति चारों निक्षेपके विषयमें शिघ्र बोधक दूहे ॥

सूचना—दुहामें चार निक्षेपके लक्षण, हमारा तरफसें, शिघ्र बोधके वास्ते लिखे है । अगर किसी वस्तुके निक्षेपमें, सिद्धांत कारके अभिप्रायसें, फरक मालूम हो जावे तो, सिद्धांतकारके ही वचनसें निर्वाह कर लेना, परंतु हमारा वचनपर आग्रह नही करना, कारण यह है कि—महापुरुषोंकी गंभीरताको, हम नही पुहच सकते है ॥

॥ इहांतक जो चार निक्षेपका विषय कहा है सो, सर्व वस्तुका सामान्यपणेसे, चार निक्षेपका बोध करानेवाली, श्री अनुयोग द्वार सूत्रकी, मूल गाथाका ही अभिप्रायसें कहा है. ॥

॥ परंतु अरूपी (अर्थात् रूपरहित) ज्ञान गुणादिक, जो जो वस्तुओ है, उनका निक्षेप विशेष प्रकारसें, कोई आधार वस्तुके योगसेंही, समजनेके योग्य होते है ॥ इस वास्ते करुणा समुद्र गणधर भगवान, ते ते अरूपी वस्तुओंके 'निक्षेपोंका' विशेष बोध करानेके वास्ते, प्रथम वीतराग भाषित तत्त्व समुद्रका एक अंशरूप, और हमारी नित्य क्रियाका प्रकाशक, जो 'आवश्यक' सूत्र है, उनकाही मुख्यत्वपणा करके, और विशेष प्रकारसें निक्षेपोका बोध करानेके वास्ते, फिरभी विशेष सूत्रकी रचना करते है, उनका पाठ नीचे मुजब.

॥ प्रथम उस आवश्यकका नाम निक्षेप सूत्रं ॥

॥ से किंतं आवस्सयं, आवस्सयं चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा। नामा वस्सयं १। ठवणा वस्सयं २। दव्वा वस्सयं ३। भावा वस्सयं. ४। से किंतं नामा वस्सयं २ जस्सणं जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाणं वा, अजीवाणं वा, तदुभयस्स वा, तदुभयाणं वा, आवस्स एति नामं कज्जइ सेतं नामा वस्सयं. ॥ १ ॥

अर्थः—अवश्य करणे योग्य, अथवा आत्माने गुणोंके वश्य करें, अथवा गुणोसें वासित करें, सो क्रियाका वाचक, आवश्यक वस्तुका, चार निक्षेप करते है. ॥ नाम आवश्यक. १। स्थापना आवश्यक. २। द्रव्य आवश्यक. ३ । भाव आवश्यक. ४। नाम आवश्यक क्या है कि—जिस जिवका, मनुष्य आदिका। अजीवका, पुस्तक आदिका। अथवा बहुत जीवोंका अजीवोंका। दोनो मिले

हुये आदिका, आवश्यक वैसा नाम किया सो " नाम आव-
श्यक " है. ॥ १ ॥

नाम निक्षेप सूत्रका तात्पर्यः—इहां जो " आवश्यक " श-
ब्दका, निक्षेप करनेमें, सूत्रकारकी प्रवृत्ति है सो, तीर्थंकर भगवा-
नके, अरूपी ज्ञान गुणका जो एक अंश, छ आवश्यक रूप "वस्तु
है " उनकी मुख्यतासेही है। और प्रसंगसे जिहां जिहां इस ना-
मका संभव होता है सोभी दिखाया है। परंतु हम तीर्थंकरोंके
भक्त तो, अनुपादेय वस्तुओंका दुर्लक्ष करके, जिहां इष्टरूप अवश्य
क्रियाका, संभव है। उनकाही वोध, नाम मात्रसेभी कर लेते है।
इस वास्ते उनका आधारभूत आवश्यक पुस्तक 'वस्तुका' अभिप्राय-
सें; तिरस्कार हम नाम मात्रसेंभी, सहन न कर सकेंगे। जैसें—
" कुरान " नाम मात्रका तिरस्कार मुसलमानो, और " वेद "
नाम मात्रका तिरस्कार, ब्राह्मणो सहन नही कर सकते है॥ कोई
पुछेंगे कि—उपादेय वस्तुके अभिप्रायसें, सूत्रकी रचना हुई है, ऐसा
तुमने कैसें जाना। उत्तर—आतमाको गुणोसें वासित करें इत्यादिक
अर्थसें ॥ और सत्यार्थ—पृष्ठ. २ में—पार्वतीजीनेभी लिखा है कि—
अवश्य करनेके योग्य, सो आवश्यक इस लेखसेंभी, और आगेके
सूत्रोंसेभी, सिद्धरूपही पडा है। मात्र विचार करनेवाला होना
चाहीये ? ॥

॥ इति नाम निक्षेप सूत्रका तात्पर्यार्थ ॥
॥ इति आवश्यक नाम निक्षेप सूत्रार्थः ॥

अथ आवश्यक स्थापना निक्षेप सूत्र.

सेकिंतं ठवणावस्सयं २ जण्णं १ कठकम्मेवा।

२ चित्तकम्मेवा । ३ पोथकम्मेवा । ४ लिप्पकम्मेवा । ५ गंथिमेवा । ६ वेढिमेवा । ७ पूरिमेवा । ८ संघाइमेवा । ९ अरकेवा । १० वराडएवा । एगोवा, अणेगोवा, सब्भावठवणा वा, असब्भावठवणा वा, आवस्सएत्ति ठवणाठ विज्जइ सेतं "ठवणावस्सयं" २ ॥ नामठवणाणं को पइविसेसो णामं आवकहिअं, ठवणा इतरिआ वा, आवकहिया वा ॥

अर्थः—स्थापना आवश्यक क्या है कि—१ काष्टमें । २ चित्रमें । ३ पत्र आदिके छेदमें, अथवा लेख मात्रमें ।४ लेप कर्ममें । ५ गूंथनिमें । ६ वेष्टनाक्रियामें । ७ धातुके रस पूरणेमें । ८ अनेक मणिकाके संघातमें । ९ चंद्राकार पाषाणमें । १० कौडीमें ॥ यह दश प्रकारमेंसें किसीभी प्रकारमें, क्रिया और क्रियावाले पुरुषका अभेद मानके, एक अथवा अनेक,आवश्यक क्रियायुक्त साधुकी आकृतिरूपे, किसीमें अनाकृतिरूपेभी, जो स्थापित करना । अथवा आवश्यक सूत्रका पाठ लिखना । उसका नाम "स्थापना निक्षेप" है. २ ॥ नाम, स्थापनामें, इतना विशेष है कि, नामयावत् कालतक रहता है । स्थापना इतरकाल, वा पूर्णकालतकभी रहती है.

इति २ स्थापना निक्षेप सूत्रार्थ.

अब स्थापना निक्षेप सूत्रका तात्पर्य—भगवानके अरूपी ज्ञान गुणका, एक अंशरूप अक्षरोंकी स्थापनासें, क्या हमारी उपादेय रूप, छ आवश्यक क्रियाका, बोध, आवश्यक शब्दसें नही होता है? तुम कहोंगे कि होता है, तो पिछे स्थापनानिक्षेप निरर्थक कैसा?

जब ते अरूपी ज्ञान गुणका, एक अंशका अक्षरोंकी स्थापना निक्षेपको, निरर्थक मानोंगे, तब जैनके सर्व सिद्धांतभी, निरर्थक, और उपयोग विना के ही, हो जायगे ? ॥ और आवश्यककी दूसरा प्रकारकी स्थापनामें—ढूंढनीका सत्यार्थ पृष्ट ४ का लेखमें जो " आवश्यक करने वालेका रूप, अर्थात् हाथ जोडे हुये, ध्यान लगाया हुआ ऐसा रूप " के अर्थसे लिखा है, उससेभी, जैन साधुकी मूर्त्तिही सिद्ध होती है, सो भी निरर्थक कैसें होंगी ? तुम कहोंगे कि—नमस्कार नहीं करते है, तो पिछे ढूंढक साधुकी मूर्त्तियां किस वास्ते पडाव ते हो ? और साधुका नाम मात्रसें भी नमस्कार क्यों करते हो ? जैसें मूर्त्तिमें, साधु साक्षात्पणेसें नही है, तैसें नामका अक्षरोंमेभी क्षासात्पणे साधु बैठानही है ? ॥ हम तो यही कहते हे कि—जो हमारी प्रिय वस्तु है, उनके चारो निक्षेपही, प्रिय रूप है । उसमेंभी वीतराग देवतो, हमारा परम प्रिय रूपही है, उनका चार निक्षेप, हमको परम प्रिय रूप क्यौं न होगा ? सो वारंवार ख्याल करते चले जाना.

इति स्थापना निक्षेप सूत्रका तात्पर्यार्थ.

॥ अथ ३ द्रव्य निक्षेप सूत्रं. ॥

॥ सेकिंतं दव्वावस्सयं २ दुविहं पण्णत्तं तंजहा;
१ आगमओअ । २ नो आगमओअ । सेकिंतं—

१ आगमओ दव्वावस्सयं २ जस्सणं आवस्सएत्ति पदं सिख्विअं ठितं, जितं, मितं, परिजितं, नामसमं, घोससमं, जावधम्म कहाए, नोअणुपेहाए, कम्हा अणुवओगो दव्वमिति कट्टु. ॥

॥ (मूल.) नैगमस्सणं—एगो अणुवउत्तो आगमओ, एगं दव्वावस्सयं। दोण्णि अणुवउत्ता, दोण्णि दव्वावस्सयाई। तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ, तिण्णि दव्वावस्सयाइं। एवंजावइआ, तावइयाइं दव्वावस्सआइं १ ॥ एवमेव ववहारस्सवि २ ॥ संगहस्सणं—एगो वा, अणेगो वा, अणुवउत्तो वा, अणुवउत्ता वा, आगमओ दव्वावस्सयं, दव्वावस्सआणि वा ३ ॥ उज्जुसुयस्स—एगो अणुवउत्तो, आगमतो, एगं दव्वावस्सयं, पुहुत्तं नेछइ ४ ॥ तिएहं सद्दनयाणं—जाणए अणुवउत्ते अवथ्थु ७ ॥

॥ सेकिंतं, २ नो आगमओ, दव्वावस्सयं २ तिविहं पन्नत्तं, तं, जाणग सरीर १। भविअसरीर २। जाणग भविअ वतिरित्तं ३। वतिरित्तं तिविहं पन्नत्तं १ लोइअं। २ कुप्पावअणिअं। ३ लोउत्तरिअं। इत्यादि. ॥

अर्थः—द्रव्यावश्यक, १ आगम, २ नो आगमसें, दो प्रकारका है। १ आगमसें द्रव्यआवश्यक यह है कि—जिस साधुनें आवश्यक सूत्र सिखा है, स्थिर किया है, जितलीया है, प्रमाण युक्त पढा है, परिपक्वभी किया है, अपणा नाम प्रमाणेही याद किया है, गुरुने दिखाया वैसेही उच्चारणभी कर रहा है, और उनका अर्थभी पुछ गाछ करके यथावत् समज लीया है, और छेवटमें धर्म कथा भी

कर रहा है, परंतु क्रियाकाले आगमका कारणरूप " जीवद्रव्य " उपयोग विनाका होनेसें, द्रव्य आवश्यकसें है.

इसमें विशेप यह है कि–नैगमनय–एक उपयोग विनाका होवें तो, एक द्रव्यावश्यक मानता है। दो होवे तो दो। तीन होवें तो तीन। ऐसें जितने उपयोग विनाका होवें, उतनाही "द्रव्यावश्यक" मानता है १। ऐसेही व्यवहार नय मानता है. २। संग्रह नय–एक वा अनेक, उपयोगवाला, वा उपयोगवालेंको, द्रव्यावश्यकवाला, द्रव्यावश्यकवालें, करके मानता है ३। ऋजुसूत्रनय–एकही अनुपयोंगवाला, एकही द्रव्यावश्यक मानता है, न्यारा नही मानता है ४। शब्दादिक तीन नय है सो–आवश्यक सूत्रार्थमें उपयोगवालेकोही आवश्क रूप वस्तुसे मानता है. ७॥ २ नो आगमसें–द्रव्य आवश्यक तीन प्रकारसें है–१ आवश्यक सूत्रपठित साधुका प्रेत सो जाणग शरीर। २ नवदीक्षितादिक,के जो आवश्यक सूत्र पढेंगे सो,भविअ शरीर।३ यह दोंनोसें व्यतिरिक्त जाणग,भाविअ सरीरसें,व्यतिरिक्त,अर्थात् उपादेयरूप प्रचलित आवश्यकका विषयसें भिन्न स्वरूप, नाम प्रमाणे स्वरूपको दिखानेवाली क्रिया, उनका यह तीन भेद समजना–मुख धावन, दंत धावन, आदि जो जो क्रियाओ लोको अवश्य करते है सो लौकिक है १॥ और चरकादिक साधुओंका, जो यक्षादिक पूंजन विगेरे अवश्य कर्त्तव्य है, सो कु प्रावचानिक स्वरूपके है २॥ अब जो जिनाज्ञाका लोप करके, स्वछंदपणे वर्त्तन करनेवाले, नामधारी जैन साधु होके, लोक दिखावा पुरती क्रिया, करनेवाले है, उनका यह आवश्य कर्त्तव्य है सो, लोकोत्तरिक स्वरूपका कहा है ३॥ मात्र इहां जैनागमका उच्चारण है, परंतु उपादेय रूप 'भाव' वस्तुसे, व्यतिरिक्तपणे काही है.

इति ३ द्रव्य आवश्यकका सूत्रार्थ.

॥ अब द्रव्यनिक्षेपका तात्पर्य–यह जो " निक्षेपके " वर्णनमें सूत्रकारकी प्रवृत्ति है सो, तीर्थंकरोंके अरूपी ज्ञानगुणका, एकैक अंशकी, मुख्यतासे ही है। इस वास्ते जिनाज्ञाका पालन करनेवाले पुरुषोंकी, जो द्रव्यनिक्षेपका स्वरूपवाली, आवश्यककी 'द्रव्य क्रिया' है, सो भी, हमको आदरणीय स्वरूपकीही है ॥ और उस पुरुषोंकी पूर्व अवस्था, अर्थात् दीक्षा ग्रहण करनेकी इछारूप अवस्था। अपर अवस्था, उनकी मृतक शरीर रूप अवस्था, यह दोनो प्रकारसें द्रव्य-निक्षेपका विषयरूपकी अवस्था है सो भी, हमको आदरणीयरूप ही है। इसी वास्ते हम दीक्षा महोत्सव, और उनका मरण महोत्सव, करते है। मात्र जो जिनाज्ञासें विपरीत होके, लोक रंजन क्रियाओ करते है, उस पुरुषोंका कर्त्तव्यको, उपादेयके स्वरूपसें व्यातिरिक्तपणे, (अर्थात् अनुपादेयपणे) लोकोत्तरिक नामका भेदसें निषेधी दीई है ॥ परंतु द्रव्यनिक्षेपका अनादर, नहीं किया है ॥ और जो नयोंका अवतरण करके दिखाया है, सोतो जिस २ नयकी जो जो मान्यता है। सोई दिखाई है। सो भी सर्व उपादेयक स्वरूपकी ही है। परंतु निरर्थक रूपकी नही है ? । क्यौं कि–जैनीयोंको तो, साते नयोंका स्वरूप मान्य रूप ही हैं। और जो स्वछंद चारीयांका कर्त्तव्य, व्यतिरिक्तके भेदमें, 'लोकोत्तरिक' स्वरूपसें दिखता है सो, नयोंका विषयमें दाखल नहीं हो सकता है। परंतु नया भासके रूपसें ही रहेगा। इसी वास्ते भिन्न स्वरूपसें वर्णन किया है ॥ और विशेष यह है कि–श्रावकोकी, सम्यक्त्वकी करणी आदिलेके, बारांव्रत तककी, जो जो प्रत्यक्षका विषयरूपकी करणी है, सो सो सर्व करणी। और साधुकी पंच महाव्रतादिक,

[1]आहार, [2]विहार, [3]व्याहार, [4]व्यवहारादिक विगेरे, जो जो क्रियाओं प्रत्यक्षपणेसें दिखनेमें आती है । सो सो सर्व क्रियाओं, १ नैगम नय। २ व्यवहार नय । ३ संग्रहनय । और ४ ऋजुसूत्र नय। यह जो चार नयों है, इनकी मुख्यतासेंही, जैन सिद्धांतोंमें वर्णन किई हुई है ? । और इस विषयकी क्रियाओंका, आदर करनेसेंही, हम, लोकोंमें, सिद्ध रूप हो के फिरते है ?। और यही द्रव्य निक्षेपका विषयभूतकी क्रियाओं, परिणामकी धाराको वर्द्धि करनेको, परम कारणभूतही है, इस वास्ते यह द्रव्य निक्षेपकी क्रियाओभी, निरर्थक रूपकी न रहेगी ?। अगर जो निरर्थक रूपकी मानेंगे तों, जैन सिद्धांतोंमें वर्णन किई हुई, सर्व क्रियाओंका निरर्थकपणा होनेसें, हम जैन मतकाही लोप करनेवाले सिद्ध हो जायगे ?। इस वातको पाठक वर्गोने वारंवार विचार करतेंही चलेजाना ? ॥ इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति द्रव्य निक्षेप सूत्रका तात्पर्य ॥

॥ अथ ४ चतुर्थ भाव निक्षेप सूत्र. ॥

॥ सेकिंतं भावा वस्सयं २ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा । १ आगमओअ। २ नोआगमओअ । सेकिंतं १ आगमओ भावा वस्सयं, जाणए उव उत्ते, सेतं भावावस्सयं । सेकिंतं २ नोआगमओ भावावस्सयं २ तिविहं पण्णत्तं, तंजहा १ लोइअं। २ कुप्पावणिअं। ३ लोगुत्तरिअं इत्यादि. ॥

---

१ शुद्ध भोजन व्यवहार । २ शुद्ध यात्रा व्यवहार । ३ शुद्ध भाषा व्यवहार । ४ शुद्ध क्रिया व्यवहार.

॥ अर्थः—भाव आवश्यकभी--१ आगम, २ नो आगम, दो प्रकारसें है ॥ १ आगमसे भाव आवश्यक यह है कि—जो आवश्यकका जाण साधु पुरुषादि, सूत्रार्थमें उपयोग सहित वर्त रहा है, सो-जानना ॥ २ नो आगमसें तीन प्रकारका है-१ लौकिक जे—भारत रामायणादिकका श्रवण मनन आदि ते । २ कुप्रावचानिक जे—चरक आदि साधुओंका होम हवन आदि ते । ३ लोकोत्तरिक जे—शुद्ध साधु आदिका दो टंककी प्रतिक्रमण क्रिया ते । यह तीन प्रकारसे, नोआगम "भाव आवश्यककी" क्रिया, दिखाई है. ॥

इति ४ भावआवश्यकरूप निक्षेप सूत्रार्थ.

अब भावनिक्षेपका तात्पर्य—तीर्थंकरोंके अरूपी ज्ञान गुणका, एक अंशका आधारभुत, अजीवरूपी पुस्तकका नाम, आवश्यक सो, नामनिक्षेप १ । उसमें अक्षरोंकी रचना, अथवा पठित साधुकी मूर्त्ति, यह दोनो प्रकारसें, उसका स्थापना निक्षेप २ । अब वही सूत्रका पाठ, और अर्थ, गुरुमुखसें पढकर, उपयोग बिनाका साधु उपदेश करनेको लग रहा है, सो द्रव्य, द्रव्यनिक्षेप ३ । जब वही साधु उपयोगके घरमे आके, सूत्रार्थमें लीन हुवा, तब भाव हुवा, सो भाव निक्षेप ४ । यह चारो निक्षेप हमारी अवश्य क्रियारूप वस्तुके दिखाये है । इसमेंसे तीर्थंकरोंके भक्तोंको-निरर्थक रूप कौनसा निक्षेप है ? उनका विचार करना.

अब द्रव्य निक्षेपके विषयमें, मृतक साधुका शरीर सो, १।जाणग शरीर है । और दीक्षा लेनेकी इच्छावालेका शरीर है सो, २।भविअ शरीर है । उनका आदर, योग्यता मुजब, क्या नही करते है ? करते ही है । सोभी द्रव्य निक्षेपका विषय, निरर्थक रूपका नही है ॥

॥ अब जो द्रव्यनिक्षेपके विषयमें--व्यतिरिक्तकें--त्रण भेद है सो तो, हमारा अनुपादेय पणेसें, सिद्धांतकारने स्वतः ही वर्णन किये है ॥

॥ अब आवश्यकके भाव निक्षेपके विषयमें, नोआगमके, त्रण भेदमेंसें--१ लोकिक, २ कुप्रावचनिक । यह दोनो तो, नाम मात्रसें ही भिन्न स्वरूपके है । अब जो--नों आगमसें ३ लोकत्तरिक आवश्यकको, कहा है, उसका तात्पर्य यह है कि--प्रतिक्रमणमें--उठना, वैठना, विगरे करना पडता है, उनको द्रव्यार्थिक चार नयों ही, मान, देतीयां है, परंतु शब्दादिक त्रण नयो है सो, उस क्रियाओंको, जड स्वरूप कहकर, मान, नहीं देतीयां है । इसी वास्ते लोकोत्तरिक भाव आवश्यक, सर्वथा प्रकारसे, उपादेयरूप हुये कोभी, नो आगमके, तिसरे भेदमें, दाखलकरना पडा है । इसमें तो केवल नयोकी ही विचित्रता है । परंतु हमतो, मुख्यतासें, द्रव्यार्थिक चारो नयोंको, मान देके, द्रव्य क्रियाका ही, आदर करनेवाले है । इसी वास्ते व्रत पच्चखाण आदि करावते है, क्योंकि भावका विषय है सो तो, अतिशय ज्ञानीके ही गम्य है, परंतु हम नही समज सकते है ॥ इत्यलं पलवितेन ॥

॥ इतिचतुर्थ भाव निक्षेपका तात्पर्य ॥

ढूंढनीजीके मनकल्पित चार निक्षेपका अर्थ--चंद्रोदय पृष्ट. १ में

॥ श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें आदिहीमें " वस्तुके " स्वरूपके समजनेके लिए, वस्तुके सामान्य प्रकारसें, चार निक्षेप, निक्षेपने (करने) कहे हैं । यथा--नामनिक्षेप-१ । स्थापनानिक्षेप २ । द्रव्यनिक्षेप ३ । भावनिक्षेप ४ ।

॥ अस्यार्थः—*नामनिक्षेप सो—वस्तुका आकार, और गुण-रहित, नाम, सो नामनिक्षेप १। स्थापनानिक्षेप सो—वस्तुका आकार, और नामसहित, गुणरहित, सो स्थापनानिक्षेप २। द्रव्यनिक्षेपसो—वस्तुका वर्त्तमान गुणरहित, अतीत अथवा अनागत गुणसहित, और आकार, नाम भी सहित, सो द्रव्यनिक्षेप ३। भावनिक्षेप सो—वस्तुका नाम, आकार, और वर्त्तमान गुणसहित, सो भावनिक्षेप ४।

इति पार्वती ढूंढनीजीके मनकल्पित चार निक्षेपका अर्थ ॥ पाठक वर्गको पुनः पुनः याद करानेके लिये इहांपर लिखके दिखाये है. ॥

अब सत्यार्थचंद्रोदय पृष्ठ २ से सूत्र.

॥ सेकितं आवस्सयं, आवस्सयं चउविहं पण्णत्तं, तंजहा—नामावस्सयं १ । ठवणावस्सयं २ । दव्वावस्सयं ३ । भावावस्सयं ४ ।

॥ सेकितं नामावस्सयं, नामावस्सयं जस्सणं—जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाणं वा, अजीवाणं वा, तदुभयस्स वा, तदुभयाणं वा, आवस्सएत्ति—नामं, कज्जइ सेतं नामावस्सयं, १

---

*वस्तुमें—नामादि चार निक्षेप, भिन्न भिन्न स्वरूपमें, समजने है, (देखो निक्षेपके लक्षणोंमें) तो भी नामके स्वरूपमें—आकार, और आकारके स्वरूपमें—नाम, इत्यादि, विपर्यासपणे लिखती है॥

अस्यार्थः—प्रश्न—आवश्यक किसको कहिये—उत्तर—अवश्य करने योग्य यथा[१] आवश्यक नाम सूत्र, जिसको चार विधिसे समजना चाहिये, तद्यथा—नाम आवश्यक १। स्थापनाआवश्यक २। द्रव्यआवश्यक ३। भावआवश्यक ४।

प्रश्न—नामआवश्यक क्या—उत्तर—जिस जीवका, अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, आदिकका। तथा अजीवका, अर्थात् किसी मकान; काष्ठ, पाषाणादिक। जिन जीवोंका। जिन अजीवोंका। उन्हें दोनोंका। नाम आवश्यक, रख दिया सो, नाम आवश्यक १।

इति ढुंढनीजीका लिखा हुवा, प्रथम निक्षेप सूत्र.
और अर्थ.

———

सेकिंतं ठवणा वस्सयं, २ जणणं, १ कठकम्मे वा, २ चित्तकम्मेवा, ३ पोथकम्मेवा, ४ लेपकम्मेवा, ५ गंठिकम्मेवा, ६ वेढिकम्मेवा, ७ पुरिमेवा, ८ संघाइमेवा, ९ अक्खेवा, १० वराडए वा, ११ एगो वा, अणेगोवा, सब्भाव ठवणा ए वा, १२ असब्भाव ठवणाए वा, आवस्सएत्ति ठवणा कज्जइ सेतं ठवणावस्सयं २।

अस्यार्थः—प्रश्न स्थापना आवश्यक क्या—उत्तर—१ काष्टपैलिखा, २ चित्रोंमें लिखा, २,३ पोथीपै लिखा ४ अंगुलीसे लिखा, ५ गूंथ-

---

१ हमारी अवश्य क्रिया "वस्तुका" बोध करानेवाला, अजीव रूप पुस्तकमें, नाम निक्षेप, समजना ॥

२ इस स्थापना निक्षेप सूत्रमें—पोथी पैं लिखा, आदिसें, तीर्थंकरोंका ज्ञान गुण वस्तुके,—अक्षरोंकी स्थापना ॥

लिया, ६ लपेटलिया, ७ पुरलिया, ८ ढेरीकरली, ९ कारखैंचली, १० कोडी रखली, ११ [1]आवश्यक करनेवालेकारूप, अर्थात् हाथ जोडे हुये, ध्यान लगाया हुवा, ऐसारूप उक्तभांति लिखा है। अथवा १२ अन्यथा प्रकार स्थापन करलिया कि, यह मेरा आवश्यक है, सो स्थापना आवश्यक २ ॥

॥ मूल—नाम ठवणाणं को पइ विसेसो, णांमं आव कहियं, ठवणा इतरिया वा होज्जा, आव कहिया वा होज्जा ॥

॥ अर्थ—प्रश्न--नाम, और स्थापनामें--क्या, भेद है.

उत्तर—नाम जावजीव तक रहता है, और स्थापना—थोडे काल तक रहती है, वा जावजीव तकभी रहती है।

॥ इति ढुंढनीजीका—दूसरा निक्षेप, सूत्र, अर्थ. ॥

॥ सेकिंतं दव्वावस्सयं २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—आगमओ य, नो आगमओ य २। सेकिंतं आगमओ दव्वावस्सयं २ जस्सणं आवस्सएत्ति पयं सिरिकयं, जाव नो अणुपेहाए, कम्हा अणुवउगो दव्वमिति कट्टु ॥

अस्यार्थः—प्रश्न—द्रव्य आवश्यक क्या--उत्तर--द्रव्य आवश्यकके २ भेद, यथा षष्ठ अध्ययन, आवश्यक सूत्र १। आवश्यक के पडनेवाला आदि २। प्रश्न—आगम द्रव्य आवश्यक क्या! उत्तर—आव-

---

१ हाथ जोडे हुये, ध्यान लगाया हुवा, आदिसें, आवश्यक क्रिया-करने वाला, साधुकी स्थापना, अर्थात् मूर्त्ति, सिद्धरूप है ॥

श्यक सूत्रके पदादिकका-यथाविधि सीखना, पढना, परंतु विना उपयोग, क्योंकि विना उपयोग द्रव्यही है । इति

इस द्रव्य आवश्यकके उपर ७ नय उतारीं हैं, जिसमें तीन सत्य नय कहीं है.

॥ यथासूत्र-तिण्ह सद्दनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु ॥

अर्थ-तीन सत्यनय । अर्थात् सात नय, यथाश्लोक

नैगमः संग्रहश्चैव व्यवहार ऋजु सूत्रकौ

शब्दः समभिरूढश्च [1]एवंभूति नयोऽमी । १ ।

अर्थ-१ नैगमनय, २ संग्रहनय, ३ व्यवहारनय, ४ ऋजु सूत्रनय, ५ शब्दनय, ६ समभिरूढनय, ७ एवं भूतनय.॥ इन सात नयोंमेंसे पहिली, ४ नय, द्रव्य अर्थको प्रमाण करती हैं। और पिछली ३ सत्यनय, यथार्थ अर्थको (वस्तुत्वको) प्रमाण करती हैं, अर्थात् वस्तुके गुणविना वस्तुको अवस्तु प्रकट करती हैं ॥

॥ नो आगम, द्रव्य-आवश्यकके भेदोंमें-जाणग शरीर, भविय शरीर, कहे हैं ॥ ३ ॥

॥ इति ढूंढनीजीका-तिसरा निक्षेप, सूत्र, अर्थ ॥

---

[2] ॥ भाव आवश्यकमें-उपयोग सहित, आवश्यकका करना कहा है ४ ॥ इन उक्त निक्षेपोंका सूत्रमें-सविस्तार कथन है. ॥

---

१. एवंभूतो नयाऽमी ॥ इहां एसा पाठ चाहीये, एसा बहुत जगे पर फरक है हम लिख दिखावेंगे नही. ॥

२ तिसरा निक्षेपके, और चोथा निक्षपके, सूत्रादिकमें, गोटाला कर दिया है सो, हमारा लेखसें विचार लेना ॥

॥ इति ढूंढनीजीका लिखा हुवा—मूल सूत्र, और अर्थ, पाठक वर्गका ध्यान खैचनेके लिये लिखा है ॥

॥ अब जो ढूंढनी पार्वतीजीने—मतिकल्पनासें, चार निक्षेपका अर्थ लिखके, सूत्रपाठ दिखाया है, उनका परस्पर विरुद्ध, और हमने लिखें हुये सूत्र, और अर्थ, और निक्षेपोंका लक्षण, तरफ पाठक वर्गका ध्यान खैचते है. ॥

ढूंढनीजीका लेख—अनुयोगद्वारका आदिहीमें "वस्तुके" स्वरूपके समजनेके लिए, वस्तुके सामान्य प्रकारसे, चार निक्षेपे निक्षेपने (करने) कहे है ॥ वैसा लिखके—नाम निक्षेप सो "वस्तुका" आकार, और गुण रहित, नाम १ ॥

और सूत्र पाठसें—नाम आवश्यक १ । स्थापना आवश्यक २ । द्रव्य आवश्यक ३ । भाव आवश्यक ४ । लिखती है. ॥

समीक्षा—पाठक वर्ग !—वस्तु कहनेसें, गुण क्रियावाली, कोई भी एक चिज माननी पडेगी, और उनमेंही चार निक्षेपे निक्षेपने (करने) होंगे, जब वस्तु, वस्तु रूपही न होंगे तब निक्षेपने किसमें करेंगे ? जब एक चिज रूपसें निश्चय हो गया, तब आकार रहित, गुण रहित, कैसें कह सकेंगे ? सूत्रकारने तो—एक आवश्यक वस्तुका ही, चार निक्षेप करनेका कहकर, नाम निक्षेप—मात्र—जीव अजीवादिकमें—करनेका दिखाया है, जैसें—साधुपदका निक्षेप, नवदीक्षितमें करते है, तैसें यह आवश्यक पदकाभी—नाम निक्षेप, पुस्तकादि किसीभी वस्तुमे करणेका है. ॥

ढूंढनीजी—देखो सत्यार्थ पृष्ट ७ ओ ९ से—किसी गूज्जरने अपने पुत्रका नाम "इंद्र" रखा सो 'नामनिक्षेप' करा है.

फिर पृष्ठ १२ ओ ६ से-कन्याका नाम " मिशरी " रख दिया सो " नाम निक्षेप " है इत्यादि.

समीक्षा-पाठक वर्ग? नाम निक्षेप-तीन प्रकारसे होता है, देखो नाम निक्षेपका लक्षणमें, तीन प्रकारमेंसें यह दूसरा जो, इंद्र अर्थसे शुन्य, और इंद्रके दूसरे पर्याय नामका अनऽभिधेय, सो नाम निक्षेप, गुज्जरके पुत्रमें किया गया है। इस वास्ते यह वस्तुही दूसरी माननी पडेगी ॥ वैसें-कन्याका भी "मिशरी" नाम समजना। क्यौंकि-किसी राज पुरुषमें-"राजन्" पदका। अथवा दीक्षित पुरुषमें-साधुपदका, जैसें-गुण क्रियावाची शब्दका अभिप्रायसें, नामका निक्षेप करते है, तैसें-गुज्जरके पुत्रमें, और कन्यामें-नाम निक्षेप, नही किया गया है। इस वास्ते गुज्जरका पुत्र इंद्र, और मिशरी नामकी कन्या, यह दोनोभी पदार्थ, अपणे अपणे स्वरूपसे, भिन्न भिन्न वस्तुरूपे होनेसें, कार्य होगा जब दूसरेही चार निक्षेपे करने पडेंगे। चाहे एक नामसे अनेक वस्तु हो, परंतु जिस जिस अभिप्रायसे, निक्षेपे करेंगे, सोही माने जायगे.

जैसें-"हरि" यह वर्ण तो दोई है, और संकेत अनेक वस्तुरूपमें है-कृष्ण, सूर्य, सिंह, वानर, अश्व, आदिमें, परंतु वस्तुरूपे भिन्न भिन्न होनेसे, कृष्णके अभिप्रायसे किये हुयें निक्षेपमें-सूर्य, सिंह, वानर, आदि कभी न गूसड सकेंगे। ऐसें जो जो वर्ण समुदाय, अनेक वस्तुका वाचक है, उनका--चार चार निक्षेप, भिन्न भिन्नसे होगा। जैसें-राजन् कहनेसे--चंद्रमा भी होता है, परंतु पुरुषमें जे राजन्पदका निक्षेप किया है सो तो भूमिपालके अभिप्रायसें किया गया, चंद्रमाका वाचक कभी न हो सकेगा। इश वास्ते यह ढुंढनी ढुंढ ढुंढकेभी थकी तोभी--निक्षेप शब्दका अर्थ ही समजी नही है। क्यौंकि-सूत्र पाठसे तो-नाम, आकार, भिन्न भिन्न-

पणे कहती है। और नाममें आकार, और आकारमें नामकोभी, गूसड़ती जाती हैं । इनकी पंडितानीपणा तो देखो ? ॥

॥ इति ' प्रथम निक्षेप ' समीक्षा. ॥

अथ ' द्वितीय निक्षेप ' समीक्षा ॥

ढूंढनीजी–स्थापना निक्षेप सो–वस्तुका आकार, और नाम सहित, गुण रहित, । सूत्रपाठसें–काष्टपे लिखा, पोथीपे लिखा, इत्यादि, सदऽसद्रूपसे दश प्रकारकी, शास्त्रकारने मानी हैं, उनका बारां प्रकार करके लिखती है.

समीक्षा–पाठक वर्ग ? वस्तु हैं सो तो–गुण और आकार विना, कभी न होगी । और इहां–स्थापना निक्षेपमें तो, जो एक भिन्नरूपें वस्तु है उनकों, दूसरी वस्तुमें स्थापित करना है । इसी ही वास्ते सूत्रकारनेभी, " स्थापना " दश प्रकारसें कही है । और आवश्यक सूत्रका, दूसरा निक्षेपभी, दश प्रकारमें ही किया है । और ढूंढनीभी–काष्टपै लिखा, पोथीपै लिखा, और आवश्यक करनेवालेका रूप–हाथ जोडे हुये, ध्यान लगाया हुवा, लिखती है। तो क्या–पोथीपै लिखा हुवा आवश्यक सूत्र, पुण्यात्माको अनादरणीय है ? और आवश्यक क्रियाका ध्यानवाली, साधुकी मूर्त्ति, क्या--अप भ्राजना करने योग्य होती है ?। जो यह सूत्रसें सिद्ध, और सर्वथा प्रकारसें मान्य--स्थापना निक्षेपको, सत्यार्थ पृष्ट ९ में–निरर्थक लिखती है । वाहरे पंडितानी ? यह सूत्रसें सिद्ध–स्थापना निक्षेपको, निरर्थकपणे करनेको प्रयत्न करती है ? जैसें आवश्यक सूत्र, और क्रिया युक्त साधुकी मूर्ति, अमान्य नही । तैसे ही–वीतराग देवकी मूर्ति, अनादरणीय कभी न होगी । हे

ढूंढनी ! तूं नाम आवश्यक तो–भिन्न निक्षेपसें कह कर आई, और अब स्थापना निक्षेपमें भी–नाम निक्षेपको गूसडती है, ? तो क्या कुछभी विचार नही करती है ? क्योंकि तूंही अपणी पोथीमें–नामका, और स्थापनाका, यावत् काल, और इतर कालसें–भेदभी कहती है । तो पीछे नाम, स्थापना, यह दोनो, एकही स्थानमें, कैसे लिखती है ? ॥

इति ' द्वितीय निक्षेप ' समीक्षा ॥

॥ अथ तृतीय ' द्रव्य निक्षेप ' समीक्षा ॥

ढूंढनी–वस्तुका–वर्तमान गुण रहित, अतीत अनागत गुण सहित, आकार नामभी सहित–सो द्रव्य निक्षेप. ॥ सूत्रपाठार्थमें,–आवश्यकके २ भेद–षष्ट अध्ययन, आवश्यक सूत्र ॥ १ । आवश्यकके पढनेवाला आदि २ ।

समीक्षा–आगमसें ' द्रव्य निक्षेप ' यह है कि–जो साधु–उपयोग विना. आवश्यक सूत्रको पढ रहा है–सो, आगमसे–द्रव्य निक्षेप, माना है । और यह एकही भेदको–नैगमादि सातनयसे विचारा है । सो देखो हमारा लिखा हुवा, द्रव्य निक्षेपके सूत्र पाठमें । और ढूंढनी हें सो सूत्रमें हुये विना, दो भेद करती है, उसमेंभी –पोथीपै लिखा हुवा, षष्ट अध्ययन, आवश्यक सूत्ररूप, स्थापनाको, द्रव्य निक्षेपमें दिखाती है, और वस्तु जो होती है सो तो–गुण विना, वस्तुही न कही जायगी । तो पीछें वर्तमानमें गुण विना कैसें कहती है ? कहा है कि—

द्रव्यं पर्याय वियुक्तं, पर्याया द्रव्य वर्जिताः । किं कदा केन रूपेण, दृष्टा मानेन केन वा । १ ।

अर्थः–द्रव्य है सो–अपणे गुणोसें रहित, और गुणों है सो–द्र

व्य विंना, क्या ? किसी कालमें, अथवा किसी रूपसे, किसी पुरुषने, देखा ? । अगर देखा तो किस प्रत्यक्षादि प्रमाणसे देखा ? दिखादो ? १ । इस वास्ते वर्त्तमानमें गुणरहितपणे वस्तुको, कहना, सोई जूठ है । और कारणमें-कार्यका आरोप करणा, उसका नाम द्रव्यानिक्षेप है । सो-नाम, और स्थापनासें, भिन्न रूपसे, वस्तुका तिसरा-द्रव्य निक्षेप है। उसमें नामनिक्षेप, और स्थापनानिक्षेप, क्यौं लिख दीखाती है ? क्यौंकि-सूत्रपाठसेंही भिन्नरूपे सिद्ध हो चूका है । इस वास्ते ढूंढनीजीका यह अगडंबगडं लिखनाही निरर्थक है. ॥

ढूंढनी-इस द्रव्य आवश्यकके ऊपर ७ नय उतारी है, जिसमें तीन सत्यनय कही है.

यथासूत्रं-तिण्हं सद्दनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थु.

अर्थः-तीन सत्यनय अर्थात् सातनय.

समीक्षा-हे पंडिते ! तीन सत्यनय-इसीका फलितार्थमें क्या ? सत्यशब्दका अर्थ, सात करके, सातनय, ठहराती है ? प्रथम तो यही पुछते है कि-सत्यनय, वैशा अर्थ, सूत्रमेंसें किस पदका निकाला ? क्यौंकि सूत्रसें तो-शब्द, समभिरूढ, और एवंभूत, यह तीन नय-अनुपयुक्तको, वस्तु नहि मानते है । इतनाही मात्र अर्थ है, तो पिछे-सत्य और सात, वैशा कहांसें लाके टेकती है ? तुम नयोंका ज्ञान, गुरु विना-कैसे समजोंगें ? ॥

॥ पार्वतीजी फिर लिखती है कि-पहिली. ४ नय, द्रव्य अर्थको प्रमाण करती हे। पिछली ३ सत्य नय, यथार्थ अर्थको प्रमाण करती है । वस्तुके गुण विना वस्तुको-अवस्तु प्रकट करती है. ॥

समीक्षा-हे सुमतिनी । जब पिछली तीन नयको-सत्य, ठहराती है, तो क्या ? पहिली ४ नय जूठी है ? यह अर्थ किस गुरुके

पास पढी ? तूं कहेंगी कि--जूठी तो नही है। तो हम पुछते है कि सत्यका विपरीत क्या ? तूंही दिखाव ? क्योंकि--जैनोंको तो साते नयों प्रमाणभूत है। परंतु तेरा कल्प्या हुवा द्रव्यनिक्षेपको--निरर्थक ठहरानेके लिये, यह प्रपंच करना पडा होगा ? परंतु हम तेराही लेखका निरर्थकपणा, फिरभी दिखादेंगे.

इस वास्ते इहां पर, विशेष विवेचन छोडके, लक्षणादिकमें कहा हुवाभी, द्रव्य आवश्यकका स्वरूप, सुगमता के लियें, प्रगट करके दिखावते है. ॥

जो वस्तु--पूर्व, किंवा अपर कालमें, कार्यस्वरूपका कारणरूपे निश्चय हो चुकी है, उसका नाम "द्रव्य" है. उस कार्यस्वरूपका, कारणस्वरूपमें, आरोप करणा, उसका नाम "द्रव्यनिक्षेप" कहा है। जैसें--मृतक साधु, अथवा साधु होनेवाला है, उसमें साधुपणा वर्तमान-कालमें नही होनेपरभी, साधुपणेका आरोप करके, साधु--कहते है सो--द्रव्य निक्षेपसें ही कहा जाता है. उनका नाम "द्रव्य निक्षेप" है। क्योंकि शास्त्रकारनेभी जीवादिक वस्तुमें--' आवश्यक ' वैसी संज्ञा रखनी, उसका नाम--नाम निक्षेप, माना है १ ॥ और काष्ठादिक दश प्रकारमेंसे--किसीभी प्रकारमें, [1]आवश्यक वस्तुको, स्थापित करणा, उसका नाम--स्थापना निक्षेप, माना है. २ ॥ तैसे ही--आगमके भेदसे--वर्तमानमें जीवका उपयोगरूप, भाव विना, आवश्यकका पढनेवाला साधुको--कारण मानकेही ' द्रव्य निक्षेपमें ' कहा है। और नो आगमके भेदसे--१जाणग सरीर--कहनेसें, मृतक साधुको। और ' २ भविअ सरीर ' कहनेसें--साधु होनेवालेको, द्रव्य निक्षेपमें, कहा है। सोभी कारणोंमे ही कार्यका आरोप किया है ॥

१ अवश्य क्रिया बोधक वस्तुको.

आवश्यक क्रियाका कारणरूप साधुमें, भाव आवश्यकका, आरोप करकेही, द्रव्य आवश्यक कहा है. ॥ परंतु ढूंढनीजीका कल्प्या हुवा-गुण रहित, नाम, आकार, सहित--द्रव्य निक्षेप, कैसें बन सकेगा? इसीही वास्ते--द्रव्य निक्षेप के पाठमें, अर्थभी करणा छोड दिया है। केवल जूठा नयोंका डोल दिखाके--आंडंबर किया है, इत्यलं विस्तरेण. ॥

इति तृतीय निक्षेप समीक्षा.

॥ अथ चतुर्थ निक्षेप समीक्षा. ॥

ढूंढनी--वस्तुका--नाम, आकार, और वर्त्तमान गुण सहित, सो--भावनिक्षेप ॥ सूत्रार्थसें--भाव आवश्यकमें--उपयोग सहित, आवश्यकका करणा, कहा है ॥ ४ ॥

समीक्षा--पाठक वर्ग ! उपयोग सहित, आवश्यकका करणा, सो--भाव आवश्यक, । उस आवश्यककी क्रिया मात्रमें--नाम, आकार, कैसें गूसड गया ? अगर नाम, और आकार, आवश्यक वस्तुका गूसडनाथा तो, सूत्रसे--नामावश्यक, स्थापना आवश्यकका निक्षेप, भिन्नपणे, कहकर कैसें आई ? विचार करोकि--गणधर महाराजाओंसें विपरीतपणे जाती है कि नहीं ?

॥ इति चतुर्थ निक्षेप समीक्षा ॥ ४ ॥

पाठक वर्ग ! हम चारों निक्षेपोंकी समीक्षा, करकेभी आये है, तोभी सुगमताके लिये, किंचित् विशेष विचार दिखावते है

इसी ढूंढनीजीने--अपणे लक्षणमें, आकार और गुण रहित,

नाम, सो-नाम निक्षेप, लिखाथा । और मूल सूत्रकारने-जीवादि-कमें-नाम निक्षेप, करना कहा । और शास्त्रकारके लक्षणसें-तीन प्रकारका ' नाम निक्षेप ' है । सो अब विचार यह है कि-गूज्जरका पुत्रमें जो ' इंद्रपदका निक्षेप है, सो । और मिशरी नामकी कन्या-में-मिशरी पदका निक्षेप है सो । क्या ? कुछ आकारवाले,. और मनुष्यपणेका जीवके गुणवाले, नही है ? जो आकार रहित, और गुण रहितवाला, नाम निक्षेपमें डालती है ? इस वास्ते ढूढनीजीका मन कल्पित ' नाम निक्षेप ' ही निरर्थक है ॥ परंतु सूत्रकारका अभिप्रायसें-जीवादिकमें । और लक्षणकारके अभिप्रायसे-पर्यायका अनभिधेयरूप, जो दूसरा प्रकारका नाम निक्षेप है, सो । गूज्जरके पुत्रमें तो-इंद्रपदका, और मिशरी नामकी कन्यामें-मिशरीपदका निक्षेप, सदाही सार्थकरूप ही है ॥ इसी वास्ते हम कहते कि-"निक्षेपोंका अर्थ क्या है, सो यह ढूंढनी समजीही नही है. ॥

॥ इति ' प्रथम निक्षेप ' विशेष समीक्षा ॥

॥ अथ ' द्वितीय निक्षेप ' विशेष समीक्षा. ॥

ढूंढनीजी-अपणे लक्षणमें-वस्तुका आकार, और नाम सहित, और गुण रहित सो--स्थापना निक्षेप, लिखती है । और मूल सूत्रकारने-काष्टपै-पोथीपै, लिखा । आदि दश प्रकारकी वस्तुमें-आकृति, अनाकृतिरूपे-स्थापना निक्षेप, करना दिखाया है । और लक्षणकारने-वस्तुमें जे गुण है उस गुणोंसें तो रहित, और उसीके अभिप्रायसें, उनके सदृश--आकृति, अथवा अनाकृतिरूपे, इछित वस्तुको स्थापित करना सो--स्थापना निक्षेप । तो अब इसमें-नामका समावेश कैसें होगा. ? अगर जो नामका समावेश करनेका

प्रयत्न करेंगें तो, सूत्रकारसेभी विरुद्ध होगा, क्योंकि सूत्रकारने नाम निक्षेपको, अलग दिखाके, भिन्नरूप दश प्रकारकी वस्तुमें स्थापना निक्षेप, करना दिखाया है ॥ इस वास्ते सूत्रकार, और लक्षणकारके अभिप्रायसें तो, मात्र मूल वस्तुको—आकृति, अनाकृतिसें, उस पदार्थको समजनेका है ॥ इस वास्ते सूत्रसे, और लक्षणकारसेभी, विपरीत, इस ढूंढनीजीकाही लेख, निरर्थक है। परंतु स्थापना निक्षेप, निरर्थक, कभी न ठहरेगा. ॥

इति द्वितीय ' स्थापना निक्षेप ' विशेष समीक्षा. ॥

॥ अथ तृतीय ' द्रव्य निक्षेपकी ' विशेष समीक्षा.

ढूंढनीजी--अपणे लक्षणमें—लिखती है कि--वस्तुका वर्त्तमान गुण रहित, अतीत अथवा अनागत गुण सहित, और आकार नामभी सहित, सो--द्रव्य निक्षेप. ॥ और सूत्रार्थमें—द्रव्य आवश्यकके २ भेद—यथा षट्ट अध्ययन आवश्यक सूत्र १। आवश्यकके पढनेवाला आदि २ ॥ इसमें विचार यह है कि—वर्त्तमानमें आवश्यक सूत्रका, गुण रहितपणा क्या हुवा ? क्या सूत्रका गुणथा सो, उडकर झाडपर बैठ गया ? जो गुण रहितपणा हो गया ? । और आवश्यकका पढनेवालेमेंभी--गुण रहितपणा क्या है ? तूं कहेंगी कि--उपयोग नही है, सो तो जीवका नही है, परंतु आवश्यकमेंसें क्या चला गया? तूं कहेंगी कि--क्रिया,और क्रियावालेको,एक मान के कहते है । तव तो--उपयोग विनाकी करनेरूप, क्रिया मात्रका नाम--द्रव्य आवश्यक ' हुवा। तो पीछे जो सूत्र पाठसें--नाम निक्षेप, और स्थापना निक्षेप,भिन्नपणे कहकर आइ,सो,इस द्रव्य निक्षेपमें,कैसें गूसडती है? इस वास्ते यह तेरा लेख--सूत्रकारसें विपरीत है सो तो, आलजाल

रूपही है । क्यौं कि-सूत्रकारने तो-आगमसे, सुशिक्षित आवश्यक-क्रियाका करनेवाला उपयोग विनाके साधुमें ' द्रव्य निक्षेप ' कहा है । और नो आगमसें मृतक साधुमें-पूर्वकालकी, आवश्यक क्रियाका आरोप, और साधु होनेवालेमें-भविष्यत्कालकी, आवश्यक क्रियाका आरोप करके वह आगमका कारणस्वरूपमें ' द्रव्य आवश्यक ' माना है, सोइ लक्षणकारनेभी दिखाया है ॥

इति ' द्रव्य निक्षेप ' विशेष समीक्षा समाप्ता ॥

॥ अब चतुर्थ ' भाव निक्षेप ' विशेष समीक्षा ॥

ढूंढनीजी-अपणे लक्षणमें-वस्तुका-नाम, आकार, और वर्त्तमान गुण सहित, सो-भाव निक्षेप, लिखती है ॥ और सूत्रार्थसें-उपयोग सहित, आवश्यकका, करणा कहा है, वैशा लिखती है । अब जो उपयोग सहित, आवश्यकका करना है सो. तो-उपयोग सहित आवश्यककी क्रिया हुइ, सो-भावनिक्षेप ॥ तो अब सूत्रसें-भिन्नपणे नाम, और स्थापना निक्षेप, कहकर आई सो, इस भाव निक्षेपका विषयमात्रमें कैसें गूसडेगा ? अब देखो हमारा तरफ के-सूत्रपाठमें । और लक्षणमें ॥ सूत्रपाठमें-आगमसें तो-उपयोग सहित, आवश्यक क्रियामें प्रवृत्ति कर रहा हुवा साधुमें-भाव निक्षेप । और नो आगमसे,-लोकिक, लोकोत्तर, और व्यतिरिक्त, के संबंधवाले पुरुषों जो अवश्य क्रियामें प्रवृत्ति कर रहे है, उस पुरुषोंमे ' भाव निक्षेप ' माना है । और शास्त्रकारके लक्षणसें देखो कि-जे जे नामवाली वस्तुमें जो जो क्रियाओं सिद्ध है, उसी क्रियामें वस्तुका वर्त्तन होना, सो-' भावनिक्षेपका ' लक्षण कहा है । सो, सूत्रकारका, और लक्षणकारका, एकही अभिप्राय मिलता है । इस

वास्ते ढूंढनीजीने जो जूठी कल्पना किई है, सो तो सूत्रकारसें, और लक्षणकारसेभी, तदन विपरीत होनेसे निरर्थकही है.

इति चतुर्थ ' भाव निक्षेप ' विशेष समीक्षा समाप्ता ॥

अब सिद्धांतकारोसें, निरपेक्ष होके, ढूंढनी, आठ, विकल्प, करती है.

ढूंढनी—सत्यार्थ पृष्ट ११ ओ. ९ सें—अथ पदार्थका नाम १ । और नाम निक्षेप २ । स्थापना ३ । और स्थापना निक्षेप ४ । द्रव्य ५ । और द्रव्य निक्षेप ६ । भाव ७ । और भाव निक्षेप ८ । स्वरूप दृष्टांत साहित लिखते है इत्यादि.

समीक्षा—हे ढुंढनी ? तीर्थंकरोका, और साथमें गणधरोंकाभी, अनादर करके यह ' आठ विकल्प ' कल्पित लिखनेके वख्त तेरी बुद्धि कैसे चली ? गणधर महाराजाओने, जो चार चार निक्षेप, वस्तुका किया है, उनके पूर्वापरका विचार तूं देखतीही नही है ? । हम इतनाही कहते है कि—जो किसीभी जैन सिद्धांतमेंसें तेरे किये हुये आठ विकल्पका पाठ दिखावेगी, तवही तेरी गति होगी ? नं-हितर गति न होगी। आजतक तो तेरे ढूंढको परोक्षपणे गणधरोंका, और प्रत्यक्षपणे महान् महान् आचार्योंका—अनादर करनेसें अविवेकका क्लेश पावतेरहे, अब प्रत्यक्षपणे गणधरोके वचनका—अनादर करनेसे, न जाने तुमेरी क्या दशा बनेगी ?। वाचकवर्गको भी ढूंढनीने कियेली, अनादरपणेकी खातरी हो—जायगी. ॥

॥ अब नाममें—कुतर्कका विचार ॥

ढूंढनी—सत्यार्थ पृष्ट ११—१२ में—जो ' द्रव्य ' मिश्रीनाम है

सो, सार्थक है। और–मिशरी नामकी, कन्या है सो, नाम निक्षेप है, सो–निरर्थक है ॥

समीक्षा–ढूंढनीजी–अपणे लक्षणमें लिखती है कि–आकार और गुण रहित, नाम सो, नाम निक्षेप, तो क्या–कन्या कुछ आकार रूप नही है? और क्या मनुष्यपणेका गुणवालीभी नही है? जो आकार और गुणविना के लक्षणमें, डालती है? पाठक वर्ग! नाम निक्षेप, तीनप्रकारसें, किया जाता है, देखो प्रथम निक्षेप के लक्षणमें–यथार्थ गुणवाली, मिष्ट रूप, द्रव्य मिशरीमें, प्रथम प्रकारसें 'नाम निक्षेप' है। और कन्या रूप वस्तुमें–दूसरा प्रकारका 'नाम निक्षेप' किया गया है, सो भी कन्यारूप वस्तुको जनानेवाला ही है; तो पिछे निरर्थक कैसें होगा? वस्तु रूपे कन्या होनेसे, कन्याका दूसरेही 'चार निक्षेप' करने पडेंगे। इस वास्ते हम कहते है कि ढूंढनीने, निक्षेपका अर्थ ही, कुछ समजा नही है॥ जैसें–हरि, यह दो वर्ण ही है, परंतु कृष्णके वख्तमें, कृष्णका, भाव, प्रगट करेंगे। और–सूर्य, सिंह, के अभिप्रायके वख्तमें, सूर्य सिंहादिकका 'भाव' प्रगट करेंगे। परंतु एकसें दूसरी वस्तुमें 'हरि' नामका निक्षेप, निरर्थक केसे होगा? जब नामवाली वस्तु, वस्तुरूपे न होवें, तबही निरर्थक होगा॥ और यह ढूंढनीभी–वस्तुके चार चार निक्षेप करना, वैसा कहकर, सूत्रसें–आवश्यक रूप, एक वस्तुका, दिखाके भी आई है, तब कन्यारूप वस्तुमें, निक्षेप निरर्थक है, वैसा कैसें कहती है?

सोतो वाचकवर्ग ही विचार करें.

इति नाममें–कुतर्कका विचार॥

ढूंढनी–सत्यार्थ पृष्ठ ८ ओ १० सें–काष्ट पाषाणादिकी मूर्त्ति, कार्य साधक नही ॥ और पृष्ठ ९ ओ ३ सें–दोनो निक्षेप अवस्तु है ॥ ओ १२ सें–इन दोनो निक्षेपोंको, सात नयोंमेंसे, ३ सत्य नय वालोंने, अवस्तु माना है। क्योंकि, अनुयोग द्वार सूत्रमें-द्रव्य, और भाव निक्षेपो परतो, सात २ नय–उतारी है, परंतु नाम, और स्थापना पै, नही उतारी है इत्यर्थः

समीक्षा–पाठकवर्ग, ? लक्षणसें जो तीन प्रकारका नाम निक्षेप किया गया, सो तो, अपणी अपणी वस्तुपणाका, भाव–प्रकट करनेवाला ही, हो चुका है ॥ और स्थापनाभी–जिस वस्तु के अभिप्रायसें, स्थापित किई जावे, उस वस्तुका भावको क्या नही जनाती है ? जो ढूंढनी निरर्थकपणा, और अवस्तुपणा, कहती है ?॥और अपणा किया हुवा लक्षणमें–आकार, और नाम, सहितपणा लिखती है, तो अब स्थापनामें अवस्तुपणा कैसें होगा ? जो वस्तुपणा न होगा तो आकारपणाभी न होगा ॥ और सूत्रकारने–पोथी पै लिखा आदि, अथवा आवश्यककी क्रियायुक्त साधुकी मूर्त्ति, कही है, सो क्या विचारवाले पुरुषको, आवश्यककी क्रियाका ' भाव ' प्रगट करनेवाली, स्थापना नही है ? जो ढूंढनी दोनो निक्षेपोंको, निरर्थक, कहती है ।? और लिखती है कि–सूत्रमें, द्रव्य, और भाव निक्षेपों पर तो, सात २ नय उतारी हैं, परंतु नाम, और स्थापना पैं, नहीं उतारी है इत्यर्थः, और उपर लिखती हैं कि–इन दोनों निक्षेपोंको, सातनयोंमेंसें, ३ सत्यनयवालोंने, अवस्तु माना है ॥ पाठकवर्ग ! इस ढूंढनीने कुछभी विचार है ? कि में क्या बकवाद करती हुं, जब दोनों प्रथमके निक्षेपोंपर, सातनय उतारीही नही है, तब सातनयोंमेंसे, ३ सत्यनयवालोंने, अवस्तु माना, वैसा कहांसे लिखती हैं? अरे ढूंढनी ! यह विचारही कुछ और है, तेरे बड़े

वडे ढूंढीये तो यूंही कहत कहते चले गये, कि, यह अनुयोगद्वार सू-त्र--न जानै क्या है, कुछ समजा नही जाता है। ऐसा हमने गुरु-जीके मुखसें ही सुनाथा तो पिछे तूं क्या समजनेवाली है ? जब यह अनुयोगका विषय समजेगा, तब तुमेरा ढूंढकपणाही काहेकुं रहेगा ? और यह मेरा सामान्य लेखमात्रसेंभी तुमको समजना क-ठीनही मालूम होता है ॥

ढूंढनी--सत्यार्थ पृष्ट १२ ओ १२ सें--मिशरीका कूज्जा सो स्थापना, ॥ पृष्ट १३ सें--मिट्टी, कागजका,--आकार बनालियां सो, स्थापना निक्षेप है, सो--निरर्थक है. ॥

समीक्षा--पाठवर्ग, ! जे मिशरीका कूज्जामें, मिष्ट क्रिया रही हुइ है, सो तो 'भावरूप' है। उसमें--नाम, और स्थापना, कैसें गूसडती है ? जब वैसाही होता तो, शास्त्रकार--दश प्रकारकी भि-न्नरूप वस्तुमें, स्थापना, किस वास्ते कहते ?

ढूंढनी--स्थापना अलग है, और--स्थापना निक्षेप, हम तो अ-लग २ मानते है.

समीक्षा--हे विचार शीले ! जो तूंने स्थापना, और स्थापना, निक्षेप, अलग २ लिखके, जूठी मनः कल्पना किई है, सो तो, जै-नीयोंके करोडो पुस्तक लिखा गयेथे उसमेंसें, लाखो परतो विद्य-मान है, उसमेंसें एकभी पुस्तकमेसे, न मिल सकेगी.। तेरी जूठी कल्पना तो तेरेही जैसे कोई होगे सो भले मानेगे। परंतु दूसरे जै-नी है सो न मानेगे।--इस वास्ते चारही निक्षेप के विना, जो तूंने कल्पना किई है, सो तो सर्व जैन सिद्धांतों काही विपर्यासपणा किया है ॥

॥ इति स्थापनामें--कुतर्कका विचार ॥

॥ अब द्रव्य निक्षेपमें--कुतर्कका विचार ॥

ढूंढनी--पृष्ट १३ ओ ६ सें,--द्रव्य, खांड, आदि, जिससें मिशरी बने, सार्थक है, ॥ ओ ८ सें,--द्रव्य निक्षेप, मिशरी डालनेके, मिट्टीके कूज्जे, इत्यादि. ॥

समीक्षा--पाठक वर्ग ! पूर्व कालमें, किंवा अपर कालमें, जो कार्य कारण रूप--एक वस्तु है, उस कारण रूप वस्तुमें--कार्यका आरोप करणा, उसका नाम--द्रव्य निक्षेप है । सो द्रव्य, और द्रव्य निक्षेप, अलग कैसें मानती है ?। खांड है सो क्या, वर्त्तमानमें मिशरी रूप है ? जो एकपणा कर देती है? मात्र आरोप करके मिशरी माननेकी है? देखो--लक्षण--ओर सूत्रपाठार्थ। ढूंढनीजीकी मति तो भ्रम चक्रमें गिरी हुई है। और ढूंढनीजी कहती है के, द्रव्य निक्षेप--मिशरी डालनेके कूज्जे । और आपणे लक्षणमें लिखती है कि--वस्तुका वर्त्तमान गुण रहित, अतीत अनागत गुण सहित, सो द्रव्य निक्षेप, । तो अब मट्टीके कूज्जेमें--अतीत, अनागतमें, मिशरीपणेका गुण, ढूंढनीजीने क्या देख्या ? जो द्रव्य निक्षेप करके दिखाती है ? और क्या मिट्टीके कूज्जेको, अतीत अनागत कालमें, मिशरी करके खाये जायगें? जो मिशरी वस्तुका 'द्रव्य निक्षेप' कूज्जेमें करती है? हे सु मतिनि ? विचार कर ?। तेरी जूठी कल्पना कहांतक चलेगी. ?

॥ इति द्रव्यमें--कुतर्कका विचार ॥

॥ अब भावनिक्षेपमें कुतर्कका विचार ॥

ढूंढनी--पृष्ट १३ ओ १५ से--भाव, मिशरीका मिठापण, ॥

पृष्ट १४ ओ ३ से-मिट्टीके कूज्जेमें, मिशरी हुई सो 'भाव निक्षेप' इत्यादि।

समीक्षा-पाठक वर्ग! मिशरी में-मिठापन है सो तो 'भाव निक्षेप' है। परंतु 'कूज्जा' जो मिट्टीका है, उसमें, मिठापणेका 'भाव क्या है! जो ढूंढनी मिशरी वस्तुका भाव निक्षेप मिट्टीके कूज्जेमें करती है? क्योंकि कूज्जा जो है सो तो, एक वस्तु ही अलग है, उनके तो 'चार निक्षेप' अलग ही करने पडेंगे। और कूज्जा जो मिट्टीका है सौ क्या खाया जायगा ? जो मिट्टीके कूज्जेमें, मिशरीका भाव निक्षेप, करती है? और अपणा क्रिया लक्षणसें, मिशरी वस्तुका 'भाव' मिट्टीके कूज्जेमें, कैसें मिलावेगी? क्योंकि-वर्त्तमानमें गुण सहित, भाव निक्षेप, कहती है, । तो मिट्टीके कूज्जेमें, वर्त्तमानमें मिशरीपणेका भाव क्या है? सो दिखा देवें॥

ढूंढनी-" इदं मधुकुंभं आसी" उहां तो-द्रव्य 'निक्षेप' मानाथा, तो इहां मिशरी युक्त कूज्जेमें 'भाव निक्षेप' क्यौं नही मानते हो? क्यौं कि 'निक्षेप नाम, डालना."

समीक्षा-हे सुमतिनी? उहां तो-जो मधु भरणरूप क्रिया है, उस क्रिया मात्रकोही, वस्तुरूप मानीथी, सो वर्त्तमानमें मधु भ-रणरूप क्रिया नही होनेसें, मात्र भरण क्रियारूप वस्तुका, आरोप मान के 'इदं मधुकुंभं आसी,' ऐसा दृष्टांत दियाथा। जैसें आवश्य-कके निक्षेपमें-ज्ञान वस्तुका, उपयोग विनाका साधुको 'द्रव्य निक्षेप' रूपसें मानाथा, तैसें इहांपर समजनेका है परंतु कुंभको-द्रव्य नि-क्षेपपणे, नही मानाथा। क्यौं कि-कुंभका, द्रव्य निक्षेप' करणा पडेगा जब तो, मिट्टीमेंही करणा पडेगा। इस वास्ते भाव निक्षेपमें मिशरी है, सोई है। कुछ मिट्टीके कूज्जेमे-मिशरीका भाव निक्षेप,

न होगा। कूज्जेमें तो जो--कोइ--भरण क्रिया आदि--विशेष गुण है सोई ' भावरूप ' है. ? ॥

इति ढूंढनाजीके मनः कल्पित, आठ विकल्पकी,

सामन्यपणे समीक्षा.

॥ ढूंढनीजीने तीर्थंकरोंमें चार--निक्षेपकी, जूठी कल्पना किंई है, उनका विचार दिखावते है ॥

ढूंढनी--पृष्ट १४ ओ ८ से--नाभिराजा कुलचंद नंदन इत्यादि, सद्गुण सहित, ऋषभदेव, सो नाम ऋषभदेव, कार्य साधक है. इत्यादि. ॥

पृष्ट १५ ओ. २ सें--किसी सामान्य पुरुषका नाम, स्थंभादिका नाम, ऋषभदेव, रख दिया सो,--नाम निक्षेप, निरर्थक है ॥

समीक्षा---पाठक वर्ग! ढूंढनी--अपणा किया हुवा लक्षणमें, आकार और गुण रहित, नाम सो ' नाम निक्षेप ' लिखती है। तो क्या पुरुषमें--कुछ आकार नही है? और क्या मनुष्यपणेका, गुणभी, कुछ नही होगा? ॥ और तैसेंही, स्थंभामें--आकार, और धारण करणेरूप गुण क्या नही हैं. ? । जो आकार और गुण विनाका ' नाम निक्षेपमें, दिखाती है। हे सुमतिनी! देख--हमारा लिखा हुवा लक्षणसूत्रमें, तीन प्रकारसे, नाम निक्षेप करना, दिखाया है। सो तो वर्णसमुदायमात्रपणेसे संकेत है, जिसने--जिस [1]वस्तु

---

१ पुरुषमें--स्थंभामें--और तीर्थंकरमें--ऋषभ--और देव यहदोनो शप्दोका, सर्वजगें एक सरीषा संयोग होनेसें ' नाम निक्षेप ' का फरक नही है, मात्र वस्तुओंका ही फरक सें ढूंढनी, भ्रम हुवा है॥

में, किया, सो उस वस्तुको, समजता है, ।। क्यौं कि--ऋषभदेव, कहनेसें कुछ, म्लेछोंको 'नाभिराजाका पुत्र' याद न आवेगा. । हां इतनाही मात्र विशेष है कि, दूसरे पुरुषमें--ऋषभदेव नाम हैं सो, नाभिराजाका पुत्रके गुण पर्यायका वाचक न होगा. । क्यौं कि वह वस्तुही दूसरी है, इस वास्तेसो ऋषभदेव नाम है सो तो, अपणाही पुरुषपणेका भाव प्रगट करेगा । इस वास्ते जो ढूंढनीने कल्पना किई है, सो जैनमतसें (अर्थात् तीर्थंकर गणधरोके मतसें) तदन विपरीत होनेसें महा प्रायश्चितकी प्राप्तिको देनेवाली है। देखो नाम निक्षेपका लक्षण सूत्रमें ।।

ढूंढनी--पृष्ट १५ ओ ९ सें--औदारिक शरीर, स्वर्ण वर्ण, पद्मासन सहित, वैराग्य मुद्रा पिछाने जाय सो, स्थापना ऋषभदेव, कार्य साधक है ।। ओ १५ सें--पाषाणादिकका बिंव, पद्मासनादिकसें, स्थापन कर लिया सो,--स्थापना निक्षेप, निरर्थक है ।।

समीक्षा--पाठक वर्ग? जब ऋषभदेव--पद्मासनादि सहित, साक्षात् होंगे, सो तो 'भाव' रूपही है, उसको--स्थापना, कैसें कहती है ? । फिर स्थापना, और स्थापना निक्षेप, अलग है वैसा हे सुमतिनी। तुं कहांसे ढूंढकर लाई? शास्त्रकारने तो--दश प्रकारकी ही स्थापना, भिन्नरूप वस्तुसें, मूलपदार्थकी करनी, दिखाई है।। इस वास्ते--स्थापना निक्षेप, निरर्थक, नही है किंतु ढूंढनीकी कल्पना ही निरर्थक है.

ढूंढनी--पृष्ट १६ ओ ६ सें--संयम आदि केवल ज्ञान पर्यंत, गुण सहित शरीर सो 'द्रव्य ऋषभदेव' कार्य साधक है ।। ओ १३ सें--निर्वाण हुए पीछे, यावत् काल शरीरको दाह नही किया, तावत् काल शरीर रहा सो 'द्रव्य निक्षेप' निरर्थक है ।।

समीक्षा-ढूंढनीने सूत्रार्थमें-षष्ट अध्ययन सूत्र १ । और पढनेवाला २ । यह दो विकल्प 'द्रव्य निक्षेपमें' कहाथा । इहां तीर्थंकर पद रूप भाव प्राप्त होनेवाला प्रथम अवस्थारूप जीवतेको छोडके, एकीला मृतकमेंही द्रव्य निक्षेप कहती है । इस वास्ते यह कल्पनाही जूठ है । पाठकवर्ग ! द्रव्य, और द्रव्य निक्षेप, शास्त्रकारने-कुछ अलग नही माने है; मात्र आगम, नोआगम के भेदसें, माने है । और-नोआगमके, तीन भेद किये है । १ जाणग सरीर, अर्थात् भाव प्राप्त मृतक शरीर । २ भविअ सरीर, अर्थात् भावको प्राप्त होनेवाला शरीर । ३ व्यतिरिक्तके अनेक भेद है । अब इहां पर ढूंढनीजीने ऋषभदेवका-भविअ शरीरको तो 'द्रव्य' बनाया । और जाणग शरीरको 'द्रव्यनिक्षेप' ठहराया । विचार करो कि-गणधर पुरुषोंसे विपरीतता कितनी है ! इसीही वास्ते ढूंढनीने, द्रव्यनिक्षेपमें सूत्र, और अर्थ, छोडकर, सात नयोंका जूठा भंडोल दिखाके, अजान वर्गको भुलानेका ही उपाय किया है । जिसको तीर्थंकरोका, और गणधर महाराजाओका भी, भय नही है, उनको कहेंगे भी क्या ? ॥

ढूंढनी—पृष्ट १७ ओ ६ सें-भगवान् ऐसें नाम कर्मवालाचेतन, चतुष्टयगुण, प्रकाशरूपआत्मा, सो 'भाव ऋषभदेव' कार्य साधक है ॥ ओ ९ से-शरीरास्थित, पूर्वोक्त चतुष्टयगुणसहित आत्मा, सो 'भावनिक्षेप. यह भी कार्य साधक है । यथा घृतसहित कुंभ घृतकुंभ इत्यर्थः ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग ! इस ढूंढनीने भी-अपने सूत्रार्थमें-आवश्यकक्रिया और क्रियाकारक साधुरूप एक ही वस्तुमें, भाव निक्षेप लिखा है । और इहां 'एक भावनिक्षेप' है, उनके दो रूप

कर के दिखाती है । परंतु भाव, ओर भाव निक्षेप, शास्त्राकारने, अलग नही माने है । तीर्थंकरोकी विभूतिसहित, उपदेशादि क्रियायुक्तपणा है सोई भावनिक्षेप माना है, देखो हमारा लक्षण और पाठार्थ । और घृत घटका दृष्टांत दिया है सो निरर्थक है, क्योकिं घृतमें घटपणेका भाव नही आजाता है जो घट है सो घृतका भाव रूप होजावे । क्यौंकि घटरूप वस्तु अलग होनेसें घटका भाव, घटमेही रहेगा, कार्यप्रसंगे घटका चार निक्षेप अलग ही करने पडेंगे.

ढूंढनी--पृष्ट १८ ओ ९ से--जेठमल ढूंढक साधुका पक्ष ले के लिखती है के--वस्तुका नाम है सो नाम निक्षेप नही ॥ फिर ढूंढनी ओ १० से--सूत्रमें तो लिखा है कि--जीव, अजीवका नाम आवश्यक निक्षेप करे सो ' नाम निक्षेप । अर्थात् नाम आवश्यक है, कि, आवश्यकहीमें ' आवश्यक निक्षेप ' कर धरे.

समीक्षा--पाठकवर्ग ? जो जो पदार्थ ' वस्तुरूपे ' एक चिजहै, उसकी 'संज्ञा' समजने के लिये, इछापूर्वक वर्ण समुदायका, निक्षेप करके समजना, उसका नाम, नामनिक्षेप है, इस वास्ते नाम, और नामनिक्षेप, अलग कभी न माने जायगे, सोइ विचार पिछे दिखाकेभी आये है, और जो ढूंढनी लिखती है कि--जीव अजीवादिकमें, आवश्यकनिक्षेप करें, सो नामनिक्षेप है कि, आवश्य कहीमें--आवश्यक निक्षेप करधरे । हम पुछते है कि--पुस्तकरूपे जो वस्तुहै सो क्या 'अजीवरूप वस्तु' नहीहै ? जो ढूंढनी छिनकतीहै । जब 'पुस्तक' अजीवरूप सें वस्तुहै तो, आवश्यक नामका निक्षेप, आवश्यकसूत्रमें करना युक्तही है । सो 'नामनिक्षेप' शब्दार्थयुक्त होनेसें, लक्षण कारकेमतसें प्रथमप्रकारका कहाजायगा । और दूसरी वस्तुओंमें वह नामका निक्षेप दूसरा प्रकारका कहा जावेगा । देखो नाम निक्षेपका लक्षण सूत्रमें, इसवास्ते नाम, और नामनिक्षेप, अलग कभी न बनेगा.

ढूंढनीने–पृष्ठ १९ से लेके–पृष्ट २१ तक, जो कुतर्क किई है सो तो, हमारा पूर्वका लेखसे, निरर्थक हो चुकीहै। तोभी ढूंढनीकी अज्ञता दूरकरनेको किंचित् लिख दिखाते है.

ढूंढनी–भगवान्में नामनिक्षेप किया 'महावीर' तो कोई मानभी लेवें। परंतु भगवान्में भगवान्का 'स्थापनानिक्षेप' कैसें होगा,। एसा कहकर, गाथार्थके अंतमें, लिखतीहै कि–गाथामें ऐसा कहां लिखा है कि–चारों निक्षेप वस्तुत्वमें मिलाने, वा चारों निक्षेपे वंदनीय है.

समीक्षा–हे सुमतिनि! तुमेरे ढूंढकोंको 'निक्षेपोंका अर्थ, समझ्या होतातो, ऐसी दूरदशा ही काहेको होती? अब देखो सूत्र, और लक्षणकारके, अभिप्रायसें कि–तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित 'जीवरूप वस्तु' है, ते तीर्थंकरका जीवसें अधिष्टित पुद्गलरूप भिन्नशरीरमें 'महावीर' संज्ञा दिई, सो 'नामनिक्षेप' तीर्थंकरमेंही दाखल हुवा. १। और दशप्रकारकी भिन्नरूप वस्तुमेंसें–जो पाषाणरूप एकभेदमें, उस तीर्थंकरका शरीरकी 'आकृति' किई गई सोभी 'स्थापना' उस तीर्थंकरमेंही दाखल हुई २। और जिस वर्त्तमानकालमें, तीर्थंकरकर्मका उपदेशरूप कार्यकी प्रवृत्ति करनेकी, योग्यता नही है. उनका अतीत, किंवा अनागत कालमें, आरोप करके 'तीर्थंकर' कहना सो 'द्रव्यनिक्षेपभी' उस तीर्थंकरमेंही होता है. ३। जब उपदेशरूप कार्यकी प्रवृति करनेकी योगयता प्रगटपणे विद्यमान रूपसेंहै तब सो 'जीवरूपवस्तु' भाव तीर्थंकरपणे, कहा जाता है, ४.। अब विचार करों कि, यह चारों निक्षेप, तीर्थंकरका जीवरूपवस्तुमें मिलें कि, कोई दूसरी वस्तुमें जाके मिलें? जब एक निक्षेप, वंदनीय होगा, तब तो 'चारों निक्षेपभी' वंदनीयरूपही होगा॥

और जिसका एक निक्षेप, वंदनीय न होगा, उनका चारों निक्षेप-भी 'वंदनीय' कभी न होगा, ॥ किस वास्ते खोटी कुतर्को करके, अपणा, और अपणा अश्रितोंका, विगाडा करलेतेहो, ? सद्गुरुका शरणालियाविना कभी कल्याणका मार्ग हाथ नही लगेगा. इति पर्याप्त मधिकेन ॥

॥ और पृष्ट २१ ओ १० सें लिखा है कि—आत्मारामजी तो, विचारा पढा हुआथा ही नही. ॥ यहभी ढूंढनीका लेख सत्य-ही है । क्योंकि, आत्मारामजी पढा हुवा ही नही था, यह वात सारीआलम जानतीही है. मात्र हठीले ढूंढकों के वास्ते तो तूंहीही साक्षात् पार्वतीका अवताररूपे हूई है, उनके वास्ते आत्मारामजी नहीथा, कहेवत है कि, अंधेमें काणा राजा, तैसा तूं आचरण क-रके जो महापुरुषोंको यद्वा तद्वा वकती है सो, तो तेरेकोही दुखदाई होगा.

ढूंढनी—पृष्ट २५ ओ १२ से—बूटेरायजी आदिक संस्कृत नहीं पढेथे, वे सव मिथ्यावादी है, और असंयमी है, उनका इत-वार नही करना चाहीये.

समीक्षा—पाठक वर्ग ! संस्कृत पढे विना, वचनशुद्धि, नही होती है । यह वात तो सिद्धही है । और जो गुरु मुखसें धारण करके, उतनाही मात्र कहता है. उनको वाधकपणा कम होता है. । और गुरुका अनुयायीपणेही, संयममें प्रवृति करता है, उनका सं-यममें, कोइ प्रकारका वाधक नही होता है. ॥ परंतु तुम ढूंढको तो, आजतक जो जो महा पुरुष होते आये उनका सवका, अना-दर करके, उलंठपणा करते हो इस वास्ते, तुमेरा सव निरर्थक है. ॥ संवेगी तैसें नही है. ॥

॥ इति आत्मारामजी ढूंढेरायजी ॥

॥ अब मूर्त्तिमेंचार निक्षेप ॥

ढूंढनी–पृष्ठ २८ ओ. १९ से–मूर्त्तिमें–भगवानके ' चारों नि-क्षेपे ' उतारके दिखाओ. इत्यादि ॥

समीक्षा–हे सुमतिनि ! अभीतक तेरेको निक्षेपका अर्थही स-मजा नही है, इसी वास्ते कुतर्को कर रही है । जो निक्षेपोंका–अर्थ, समजी होती तो, एसी एसी कुतर्कों करतीही किस वास्ते ? देख सूत्रपाठसे–निक्षेपोंका अर्थ कि,–वस्तुमें, प्रचलित वर्णसमुदायमात्र-सें, संज्ञापणाको, आरूढकरना, उसका नाम ' नामनिक्षेप ' है. १ ॥ और वस्तुको, दश प्रकारमेंसे किसीभी दूसरी प्रकारकी वस्तुमें–आकृति, अनाकृति रूपे, स्थापित करना उसका नाम ' स्थापना-निक्षेप' है. २ ॥ और जो वस्तु कार्यरूप है; उनका पूर्व अपरकाल-में जो कारणरूप स्वभाव है, उसमें कार्यरूप वस्तुका, आरोप कर-ना, उसका नाम ' द्रव्यनिक्षेप ' है. ३ ॥ और जो वस्तु, वस्तुरूपमें स्थित होके, अपणी क्रियामें प्रवृत्ति करती है सो भावनिक्षेप है. ४ ॥ जब शास्त्रकारने निक्षेपोंका अर्थ–ऊपर लिखे मुजब किया है; तब तूं हमारी पाससें ' मूर्तिमेंही, भगवान्‌का चारों निक्षेप, कैसें कराती है ? क्योंकि–मूर्तिमें तो, हमने, भगवान्‌का, केवल एक ' स्थापनानिक्षेप ' ही किया है । तूं कहेगी कि–ऋषभदेव, आ-दिका ' नामभी ' देते हो, तो ' नामनिक्षेपभी ' तो मूर्तिमें रखतेही हो, हे विचार शीले ! नाम देते है सो तो, उस वस्तुकीही, यह मू-र्ति, स्थापित किई है, उनका पिछान करनेके वास्ते है । और 'ना-मनिक्षेप ' तो नाभिराजाका ' पुत्ररूप वस्तुमें ' यावत् कालतकका

हो चुका है. । मूर्तिमें तो पाषाणरूप वस्तुही अलग हैं. । अगर जो मूर्तिरूप वस्तु है, उनका 'चार निक्षेप' कराना, चाहती होगी तो, तूंने अलग रूपसें करकेंभी दिखा देवेंगे. । इस वास्ते जो तूंने पृष्ट ३१ तक-कुतर्क किई है सो तो, वृथाही मगज मारा है. ॥ और पृष्ट ३१ ओ. १२ सेलेके ३२ तक-दो मित्रका, दृष्टांत खडा किया है, सोभी निक्षेपोंका अर्थ समजे विना, अज्ञानको परचानेके लिये अपणी चातुरी दिखाई है ॥

॥ इति मूर्त्तिमें 'चार निक्षेप' का विचारः ॥

॥ अब. चार निक्षेपके विषयमें, ढूंढनीजीको, जो ज्ञान हुवा है सो लिख दिखाते है.

॥ इंद्र १ । मिशरी २ । ऋषभदेव ३ । यह नाम रखनेके वर्ण समुदाय है । और देवताका मालिक १ । इक्षु रसकासार २ । और प्रथम तीर्थंकरका शरीर ३ । यह तीन वस्तुमें नामको रखके उनका चार चार निक्षेप करणेको, ढूंढनीजीने प्रवृत्ति किई है । परंतु, देवताके मालिकमें-इंद्र नामको रखके तीनही निक्षेप घटाके दिखाया, । और इक्षु रसकी सार वस्तुमें-मिशरी नाम रखके एक स्थापना निक्षेपही, घटाके दिखाया । और तीर्थंकरका शरीररूप वस्तुमें-ऋषभदेव नाम रखके अढाई निक्षेप घटाके दिखाया ॥ कोई पुछेंगेकि, यह कैसें हुवा, सो दिखाते है ॥

ढूंढनीजीने, सत्यार्थके प्रथम पृष्टमें, यहलिखाहै कि-"श्रीअनुयोगद्वार सूत्रमें-आदिहीमें, वस्तुके स्वरूपके समजनेके लिए, वस्तुके सामान्य प्रकारसे, चार निक्षेप निक्षेपने(करने) कहै है."॥यह सूत्रका अभिप्राय लेके, लिखा हुवा ढूंढनीजीका लेखसे सिद्ध हुवाके, एक वस्तुके ही, चारनिक्षेप, होने चाहीये ? सो ढूंढनीजीका लेखमें,

एक भी अर्गे सिद्ध नही हो सकता है ? जैसें कि "इंद्र" यह दो-वर्णसें, नामका निक्षेप करनेको लगी है, देवताके मालिकमें, और करके दिखाया केवल गूज्जरके पुत्रमें, इस वास्ते देवताका मालिक रूप वस्तुमें, प्रथम नाम निक्षेप, घटा सकी ही न ही है.॥ देखो, सत्यार्थ पृष्ट. ७ सें. ११ तक. ॥ .

॥ और इक्षु रसकी सार वस्तुमें, केवल एक स्थापना निक्षेप ही घटा सकी है. । क्योंकि-कन्यारूप वस्तुमें, "मिशरी" ऐसा नामका निक्षेप करके दिखाया । और-द्रव्य निक्षेप इक्षु रसके सार वस्तुकी पूर्वावस्थामें, किंवा, अपर अवस्थामें, करनेका था, सो नही किया, और केवल मिट्टीका कूज्जारूप दूसरी ही वस्तुमें करके दिखाया. । और 'भाव निक्षेप' साक्षात्पणे जो इक्षु रसकी सार वस्तुमें, करनेका था, सो नही करती हुई मिट्टीके कूज्जेमें ही करके दिखाया, इस वास्ते जैन सिद्धांतके मुजब इस वस्तुमें एक ही निक्षेप घटा सकी है. ॥

॥ अब देखो तीर्थंकरका शरीर रूप वस्तुमें, ढूंढनीने अढाई निक्षेप ही घटाया है. जैसें कि 'नाम निक्षेप' करनेको लगी तीर्थंकरकी शरीररूप वस्तुका, और करके दिखाया दूसरा मनुष्यमें.॥ और द्रव्य निक्षेप, तीर्थंकरकी बालकपणे रूप पूर्वाऽवस्थामें, और मृतक शरीर रूप अपर अवस्थामें, करणेका था, सो केवल अपर अवस्थामें ही, करके दिखाया, इस वास्ते तीर्थंकर ऋषभदेवके, चार निक्षेपकी सिद्धिमें, अढाई निक्षेपकी ही सिद्धि करके दिखलाया. । देखो इसका विचार, सत्यार्थ पृष्ट. १२ सें लेके पृष्ट. १७ तक. ॥

॥ और, पृष्ट. ७ से लेके, पृष्ट. १७ तक, ऐसें मनः कल्पित लेख लिखके, प्रथमके तीन निक्षेपेको, निरर्थकपणा भी कहती

जाती है, परंतु चारनिक्षेपेमेंसे एक भी निक्षेप, निरर्थक रूप नहीं है। मात्र विशेष यह है कि—जिस निक्षेपसें जो कार्यकी सिद्धि होनेवाली है, सोई सिद्धि होती है. ॥ "जैसें कि" १ हेय पदार्थके चारनिक्षेप है सो तो त्याग पणेकी सिद्धिके करानेवाले है. । और २ ज्ञेय पदार्थके चार निक्षेप है सो ज्ञान प्राप्तिकी सिद्धिके करानेवाले है. । और जो परम ३ उपादेय रूप पदार्थ है उनके, चार निक्षेप है सो, आत्माकी शुद्धिकी सिद्धिके करानेवाले है. ॥

॥ देखोइस विषयमें, 'ठाणांग'सूत्रका चोथा ठाणा. छापाकी पोथी के पृष्ट. २६८ में—यथा—१ नाम सच्चे, २ ठवण सच्चे, ३ दव्व सच्चे, ४ भाव सच्चे, ॥ इस पाठसें, चोरो ही निक्षेपको, सत्यरूपे ही ठहराये है. । परंतु, निरर्थकरूपे नही कहे है.॥

प्रश्न—यह चार प्रकारके सत्यमें, निक्षेप शब्द तो आयाही नही है, तुमने कहांसे लिखके दिखाया. ? ॥

॥ उत्तर—जिस जिस जगें सिद्धांतमें, १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, और ४ भाव, इन चारोंका वर्णन होगा उहां पर चार निक्षेपोंका ही वर्णन समजनेके है, परंतु भिन्नरूपसें तुमेरे किये हुये, आठ विकल्पतो, दिगंबर, श्वेतांबर, के लाखो पुस्तकमेंसे, एक भी पुस्तकमेंसे न निकलेगा, किस वास्ते तीर्थंकरोंसे और गणधर महापुरुषोंसे, विपरीतपणे जाते हो ? कोइ तो एक वातका उलटपणा करें, अगर, दो चार वातांका, उलटपणा करके दिखावें, परंतु इस ढूंढनीजीने तो, तीर्थंकर, गणधरोंका भी, भय छोडके, स्वछंदपणासें, सर्व जैन सिद्धांतोका, तत्व· पदार्थोंको ही, उलटपणा करके दिखाया है, न जाने इस ढूंढनीजीको कौनसा मिथ्यात्वका उदय हुवा होगा ? ॥

प्रथमं इस ढूंढनीजीने, द्रव्यार्थिक चार नयोंका विषय रूप पदार्थ कों निरर्थक ठहराके, द्रव्यार्थिक चार नयका विषयरूप, तीन नि-क्षेपोंको भी, निरर्थक लिखती रही, परंतु इतना विचार न किया कि, साधु, साध्वीका वेश, आहार, विहारादिक जो जो सिद्धांतमें, विचार दिखाया है सो सर्व, बहु लतासें द्रव्यार्थिक चार नयोंका ही विचारसें, लिखा हुवा है. ॥ और श्रावक, श्राविकाका सा-मायिक, पोषध, प्रतिक्रमण, अर्थात् सम्यक्त्व मूल बाराव्रतादिकके जो जो आचार विचारका वर्णन हैं, सो भी सर्व प्रायें द्रव्या र्थिक चारनयोंका विषय रूपसे ही कहे गये है. इस वास्ते, द्रव्या-र्थिक चारनयोंका विषयको निरर्थकपणा ठहरानेसे, सर्व जैन मा-र्गकी क्रिया विगरेका ही, निरर्थकपणा, ठहरता है, और जैनमार्गकी क्रियाका निरर्थकपणा ठहरनेसे, जैनमार्गका लोप करनेका महा प्रायश्चित्त होता है, इस वास्ते, ढूंढनीजीने, लेख लिखती वखते यु-क्तपणेका एक भी विचार नही किया है ? केवल थोथा पोथाकों ही लिख दिखाया है ॥

॥ अगर जो ढूंढनीजीके मनमें, यह विचार रह जाता होगा कि, मैंनें आठ विकल्प किये है, उसमें कोइ भी प्रकारका बाधक-पणा नही आता हैं, मात्र संवेगीलोकोंको ही, जूठा आक्षेप करके, हमारा लेखको निरर्थकपणा ठहरा देते है. इस संकाको दूर कर-नेके लिये, समजूति करके दिखाते है. ॥

॥ ढूंढनीजीका कहना यह है कि नाम १ । स्थापना २ । द्रव्य ३ । और भाव ४ । यह चार विकल्प है सो, जो जो मू-लकी वस्तु होती है, उसमें पाया जाता है. "जैसे कि" इंद्र नाम है सो इंद्रमें, । और मिशरी नाम है सो साक्षात् रूपकी मिशरी

वस्तुमें, । तीर्थंकरोके नामादिक है सो तीर्थंकरोंमें, जब यहीनामादिक, चार विकल्प, पिछेसें दूसरी वस्तुमें दाखल किये जावें, तब ही निक्षेप रूपसें कहे जावें, यह जो ढूंढनीजीके मनमें, भूत भराया है, सो केवल सद्गुरुके पाससें सिद्धांतका पठन नही करनेसें ही भराया है, अगर जो सद्गुरुके पाससें, सिद्धांतका पठन किया होत तो, यह शंका होनेका कारण कुछ भी न रहता, क्यों कि, १'इंद्र' २ मिशरी, ३ ऋषभ, ४ देव, आदि जितने शब्द हैं, सो तो अनादिसें सिद्ध रूपही है, और वस्तुकी उत्पत्ति हुये बाद, योग्यता प्रमाणे, अथवा किसी वस्तुमें रूढिसें, नामका निक्षेप किया जाता है. । जिस वस्तुमें, गुण पूर्वक नामका निक्षेप किया जाता है उसको योगिक भी कहते हैं. । और दो शब्दका मिश्रण करके नामका निक्षेप किया जाता है उनको मिश्र कहते हैं, इसमें विशेष समजूति है सो देखो लक्षणकारका नामनिक्षेपका लक्षणके श्लोकमें, इस वास्ते इंद्ररूप वस्तुमें, इंद्र नामका निक्षेप है सो, व्याकरणादिककी व्युत्पत्तिसें सिद्धरूप "योगिक" शब्द है. । और—मिशरी रूपकी वस्तुमें मिशरी नामका निक्षेप है सो भी "योगिक" ही है. । और तीर्थंकरमें, "ऋषभ" शब्द, और "देव" शब्द, यह दोनो शब्दोका मिश्रण करके नामका निक्षेप किया गया सो "मिंश्ररूप" समजनेका है. ॥ जब यही इंद्रादिक नामका निक्षेप, दूसरी वस्तुमें किया जाता है, तब इंद्रकी पर्यायके वाचक जो—पुरंदर, वज्र धरादिक हैं, उसकी प्रवृत्ति दूसरी वस्तुमें, किई नही जाती है. परंतु दोनो ही वस्तुमें, कहा तो जावेंगा नामका ही निक्षेप । क्यों कि—दोनो ही वस्तुमें, जो इंद्र पदसें—नामका निक्षेप किया है, सो वस्तुकी उत्पत्तिके बाद ही किया गया है, इस निक्षेपके विषयमें कुछ भी फरक नही है ? मात्र विशेष यही रहेगा कि, गूज़रके पु-

त्रमें, इंद्र पदका नामनिक्षेपसें, गूज्जरके पुत्रका ही बोधकी प्राप्ति होगी ? और पुरंदरादिक पर्याय वाची, दूसरा "नामोका" बोधकी प्राप्ति न रहेगी. परंतु गूज्जरके पुत्रमें, इंद्र पदसें नामका निक्षेप, निरर्थक कभी न ठहरेगा ? क्यों कि इंद्रपदके उच्चारण करनेके साथ, गूज्जरका पुत्र भी, हाजर होके, संकेतके जाननेवालेको, बोध ही कराता है. इसवास्ते जो जो वस्तुका, जो जो नामादि चार निक्षेप है, सो अपणी अपणी वस्तुका बोधका कारणरूप होनेसे, सार्थक रूपही है, परंतु निरर्थक रूप नही है, इसी वास्ते सिद्धांतकारने भी "१ नाम सच्चे। २ ठवणा सच्चे। ३ दव्व सच्चे। और ४ भाव सच्चे." कहकर दिखाया है. ॥

॥ और जिस वस्तुका एक निक्षेप भी असत्य अथवा निरर्थक रूपसें मानेंगे सो वस्तु वस्तु स्वरूपकी ही नही कही जावेगी। कारण यह है कि—वस्तु स्वरूपका जो पिछान होता है सो उनके चार निक्षेपके स्वरूपसें ही होता है इस वास्ते ढूंढनीजीका लिखना ही सर्व आलजाल रूपका है.

॥ इति चार निक्षेपके विषयमें—ढूंढनीजीका ज्ञान ॥

अब जो प्रथमके लेखमें—ढूंढनीजीने इंद्रमें त्रण निक्षेप। मिशरीमें एक निक्षेप। और ऋषभदेवमें अढाई निक्षेप। घटायाथा सो अब सिद्धांतका अनुसरण करके चार चार निक्षेप पुरण करके दिखलातें है ॥

॥ इंद्रमें जो इंद्रनाम है, सोई नाम निक्षेप है १। और पाषाणादिकसें इंद्रकी जो आकृति बनाई है, सो स्थापना निक्षेप है २। और इंद्रका भवकी जो पूर्वाऽपर अस्था है, सो द्रव्य निक्षेपका वि-

षय हैं ३। और साक्षात्पणे अपणी ठकुराईका भोग कर रहाहै सो भाव निक्षेपका विषय है ४ ॥

॥ अब गूज्जरके पुत्रमें भी, चार निक्षेप घटाके दिखाते है ॥

जो गूज्जरके पुत्रमें, "इंद्र" नाम रखा है सो भी नाम निक्षेप ही है १ और उस गूज्जरके पुत्रकी, पाषाणादिकसें, आकृति बनाई, सो स्थापना निक्षेपका विषय है २। और गूज्जरपणाके लायककी, पूर्वाऽपर अवस्था है सो, द्रव्य निक्षेपका विषय है ३। और साक्षात्पणे गूज्जरका कार्यको कर रहा है सो, 'भावनिक्षेप' का विषय है ४।

अब मिशरी वस्तुमें, ढूंढनीने, एक स्थापना निक्षेप ही घटाया था, उनके भी चारो निक्षेप बतलाते है. जो मिशरी वस्तुका नाम है सोई, नाम निक्षेप है १। और मिट्टीका, कागजका, आकार बनाना सो, मिशरी नामकी वस्तुका 'स्थापना निक्षेप'का विषय है २। और मिशरीकी, पूर्वाऽवस्था खांडरूप, अपर अवस्था मिशरीका पानीरूप है सो, 'द्रव्य निक्षेप' का विषय है ३। और साक्षात् मिशरी है सो, 'भाव निक्षेप' का विषय है ४ ॥

॥ अब 'मिशरी' नामकी, कन्याका, चार निक्षेप, करके दिखाते है-कन्याका नाम मिशरी है सो, नाम निक्षेप है १। और उस कन्याकी, पाषाणादिकसें, आकृति बना लिई सो 'स्थापना निक्षेप' का विषय है २। और कन्याभाव प्राप्त होनेकी, पूर्वाऽपर अवस्था है सो, द्रव्य निक्षेप' का विषय है ३। और जो कन्या भावको, प्राप्त हो गई है सो 'भाव निक्षेप' का विषय है ४ ॥ अब मिट्टीके कूज्जेका, चार निक्षेप, करके दिखावते है-जो 'कूज्जा' ऐसा नाम है सो, कूज्जेका, नाम निक्षेप' है १। कागद, कपडा

दिक, अथवा चित्रसें, कूज्जेकी आकृति (मूर्त्ति) करके समजाना सो, 'स्थापना निक्षेप' का विषय है २ । कूज्जेकी पूर्वाऽवस्था मि ट्टीकापिंड रूप, अपर अवस्था टुकडे रूप है सो, 'द्रव्य निक्षेप' का विषय है ३ । और जो साक्षात्पणे मिट्टीका कूज्जा वन्या हुवा है सो, कूज्जाके 'भाव निक्षेप' का विषय है ४ । इति मिट्टीके कूज्जेका, चार निक्षेपका स्वरूप. ॥

॥ अव ऋषभदेव के, चार निक्षेप दिखलाते हैं—जो नाभि राजा के पुत्रमें, 'ऋषभ देव' नाम है सोई, नाम निक्षेप है १ । और जो पाषाणादिककी आकृति है सो 'स्थापना निक्षेप' का विषय है २ । और जो पूर्वाऽपर वाल्यअंत शरीर रूप अवस्था है सो, द्रव्य निक्षेपका विषय है ३ । और साक्षात् तीर्थंकर पदको प्राप्त हुये है सो भाव निक्षेपका विषय है ४ ॥ अव पुरुषके, चार निक्षेप, दिखाते है—जो पुरुषका नाम, 'ऋषभ देव' है सो, नाम निक्षेप है १ । उस पुरुषकी, पाषाणादिककी आकृति है सो 'स्थापना निक्षेप' का विषय है २ और जो पुरुष भावकी, पूर्वाऽपर अवस्था है सो 'द्रव्यनिक्षेप' का विषय है ३ । और जो पुरुषार्थ करनेके की, योग्यताको प्राप्त हो गया है सो 'भावनिक्षेप' का विषय है ४ ॥ इसी प्रकारसें—चार चार निक्षेपका स्वरूप, सर्व प्रकारकी दृश्य वस्तुओंमें, योग्यता प्रमाणे विचार लेना ॥

॥ इसी—ढूंढनीजीने इंद्रमें त्रण, । मिशरीमें एक. । और ऋषभदेवमें, अढाई निक्षेप करके दिखायाथा. । उनके हमने चार चार निक्षेप, स्पष्ट पणे लिख दिखाया सो भ्रम तो पाठक वर्गका दूर हो गया होगा, परंतु मूर्त्ति नामकी वस्तुके, चार निक्षेपको दिखाये विना, शंकाही रहजायगी, सो, शंका दूर करनेके लिये, मूर्त्ति नामकी वस्तुके भी 'चार निक्षेप' करके दिखलाता हुं ॥

पाषाणरूप दूसरी 'वस्तुसें' तीर्थंकर स्वरूपकी 'आकृति' बनायके, उनका नाम रख दिया 'मूर्त्ति' सो पाषाणरूप वस्तुका नाम निक्षेप हुवा १ ॥ अब इसी मूर्त्तिकी आकृतिका, दूसरा उतारा करके, दूर देशमें, स्वरूपको समजना सो, मूर्त्ति नामकी वस्तुका–दूसरा 'स्थापना निक्षेप' २ ॥ ते मूर्त्ति रूपका घाट घडनेकी पूर्व अवस्था, अथवा खंडितरूप अपर अवस्था है सो, मूर्त्ति नामकी 'वस्तुका' 'द्रव्यनिक्षेप' ३ और साक्षात्रूप जो मूर्त्ति दिखनेमें आ रही है सो मूर्त्ति नामकी 'वस्तुका' भाव निक्षेप ४ ॥ इसमें विशेष समजनेका इतना हैकि–जिस महापुरुषकी आकृति बनाई है उनका 'स्थापना निक्षेप' काही विषय है । और तें साक्षात् स्वरूपकी मूर्त्ति है सो अपणा स्वरूपको प्रगट करनेके वास्ते 'भावनिक्षेप' का विषय स्वरूपकी ही है ॥ क्योंकि साक्षात् रूप जो जो वस्तुओ है सो तो प्रगटपणे ही अपणा अपणा स्वरूपको प्रकाशमान करती हीं है ॥ कारण यह है कि–वस्तु स्वरूपका जो साक्षात् पणा है सोई भाव निक्षेप के स्वरूपका है ॥ इस वास्ते प्रत्यक्ष रूप जो मूर्त्ति नामकी वस्तु है सोई मूर्त्ति नामकी वस्तुका भावनिक्षेप है

॥ इति मूर्त्ति नामकी वस्तुके चार निक्षेप ॥

सत्यार्थ–पृष्ठ. २८ सें–ढूंढनीजी–भगवान्की मूर्त्तिमेंहीं, भगवानके चारो निक्षेप हमारी पाससें मनन कराती हुई, लिखती है कि–मूर्त्तिका–महावीर नाम, सो नाम निक्षेप १ । महावीरजीकी तरह आकृति सो 'स्थापनानि निक्षेप' २ । अपणे आप कबूल करती हुइ लिखती है कि–मूर्त्तिका द्रव्य है सो भगवानका द्रव्य निक्षेप है, ऐसा हमारी पाससें–मनन कराती हुई उत्तर पक्षमे–हेमका कहती है कि–यहां तुम चूके। ऐसा उपहास्य करती

है । परंतु इस ढूंढनीको इतना विचार नही हुवा कि–मैं –मूर्त्ति के द्रव्यका, और भगवानके द्रव्यका, प्रश्न ही अ-लग अलग वस्तुका करती हुं तो, दोनोही भिन्नस्वरूपकी 'वस्तुका' चार निक्षेप एक स्वरूपका कैसें हो जायगा ? हे ढूंढनी जी ! नतो सिद्धांतकार चूके है, और न तो हमारे गुरुवर्य चूके है, केवल गुरुज्ञानको लिये विना तूं, और तेरा जेठमल, आदि ढूंढक साधुओं, इस चारनिक्षेपके विषयमें–जगें जगें पर चूकते ही चले आये है, क्यौंकि–मूर्त्ति यह नाम–पाषाणरूप वस्तुका है । और महावीर यह नाम–सिद्धार्थ राजाका पुत्र तीर्थंकर रूप वस्तुका है । इस वास्ते दोनो ही भिन्न भिन्न स्वरूपकी वस्तु होनेसें, चार चार निक्षेप भी अलग अलग स्वरूपसें ही करना उचित होगा ? किस वास्ते जूठा परिश्रमको उठा रही है ? न तो तुम निक्षेपका विषयको समजते हो ? और न तो नयोंका विषयको समजते हो ? एकंदर वारिक दृष्टिसें जो विचार करके तपास करोंगे तो, तुम लोक जैनधर्मका सर्व तत्त्वका विचारसें ही चुके हो ? इसी वास्ते ही तुमेरा विचारोंमें, इतनी विपरीतता हो रही है ? नहीतर जैनधर्मके सिद्धांतोंमें–कोइ भी प्रकारका फरक नही है, किस वास्ते महापुरुषों की अवज्ञा करके–जैनधर्मसें भ्रष्ट होते हो ? ॥ इति अलमधिक शीक्षणेन ॥

इति मूर्त्तिमें–भगवानके 'चारनिक्षेप' का विचार ॥

(14576)

इहां पर्यंत चारनिक्षेपके विषयमें, ढूंढनीजीका जूठा मंडन, और हमारा तरफका खंडन, और अनुयोगद्वार सूत्र पाठसें एकता देखके पाठकवर्ग अवश्य मेव गभराये होंगे, न जाने किसका कहना

सत्य होगा ? सो इस शंकाको दूर होनेके लिये, किंचित् पुनरावृत्ति रूप, सिद्धांतसें मेलन करके दिखाते है, जिससें विचार करनेका सुगम हो जावें । देखियेके–अनुयोग सूत्रकारने, चार निक्षेपके विना, दूसरा एक भी विचार नही दिखाया है. । तदपि ढूंढनी, तीर्थंकर और गणधर महाराजाओंसें–विपरीत हुई, पूर्वाऽपरकें विरोधका–विचार किये विना, सत्यार्थ पृष्ट ११ में–अपणी मनः कल्पनासें–१ नाम, २ नाम निक्षेप, । ३ स्थापना, ४ स्थापना निक्षेप, । ५ द्रव्य, । ६ द्रव्य निक्षेप, । ७ भाव, । ८ भाव निक्षेप, यह आठ विकल्प खडा करती है । परंतु इतना सोच न किया के, तीर्थंकरकें सिद्धांतको धका पुहचाके में मेरी क्या गति कर लउंगी ?

प्रथम इस ढूंढनीने–यह लिखाथा के–श्री अनुयोग द्वार सूत्रमें आदिहीमें, वस्तके स्वरूपके समजनेके लिए, वस्तुके सामान्य प्रकारसे चार निक्षेपे निक्षेपने (करने) कहे है, वैशालिखके फिर सूत्रपाठका आडंबर दिखाया, फिर आठ विकल्प करके, मिशरी नामकी वस्तुमें, और ऋषभदेव नामकी वस्तुमें, केवल मनः–कल्पनासें घटानेका प्रयत्न किया. क्यों कि निक्षेप तो करने लगी है इक्षु रसका सारभूत, मिशरी नामकी ‘ वस्तुका ’ उसको ‘ नाम ’ ठहराय के, कन्यारूप स्त्रीकी दूसरी वस्तुमें, ‘ नामनिक्षेप’ वतलाती है सो कौनसा सिद्धांतसें दिखाती है ? क्यौं कि वस्तुरूपे दोनोही अलग अलग है. । और सूत्रकारने वस्तुमें ही, चार निक्षेप करने, वैशा कहा है. । तो क्या इक्षु रसका ‘ सारभूत ’ मिशरी नामकी वस्तु कुछ वस्तुरूपसें नही है ? जो नामका निक्षेपको उठाती है ? । प्रथम ढूंढनी इतनाही समजी नही है के, वस्तु क्या ? और अवस्तु चिज क्या ? तो पिछे ‘ निक्षेपका ’ विषयको

क्या समजेगी ? । तैसें ही तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया हुवा जीवने, नाभिराजाके कुलमें, शरीररूप वस्तुको धारण किये बाद, माता पिता विगरेने गुणपूर्वक, ' ऋषभ ' नामका निक्षेप किया है, उनको ढूंढनी ' नाम ' ठहरायके, पुरुषरूप दूसरी 'वस्तुमें' ' नाम निक्षेप ' ठहराती है । तो क्या नाभिराजाके पुत्रका शरीर, कुछ वस्तुरूप नही है ? जो ढूंढनी सूत्रको धक्का पुहचाके 'नाम' मात्रको ठहराती है ? सूत्रकारने तो वस्तुमें 'नाम निक्षेप' करना कहा है. । इस वास्ते यह प्रथम निक्षेपके विषयमें, दो विकल्प ही, ढूंढनीका निरर्थक रूपसें हुवा है ॥ क्यौं कि, इक्षु रसका ' सारभूत ' वस्तु है उसमें, मिशरी नामका निक्षेप करके ही लोको समजते है. । तैसें, प्रथम तीर्थंकरका शरीररूप ' वस्तुमें, ऋषभ नामका 'निक्षेप' हुये बाद, जैनी लोकोने तीर्थंकरपणे ग्रहण किया है । इस वास्ते, नाम, और नाम निक्षेप, अलग अलग है, वैशा तीनकालमें भी नही होसकता है. ॥

इति प्रथम—नाम, और नामनिक्षेप,का विचार.

अब ' स्थापना ' और ' स्थापना निक्षेप ' ढूंढनीनें किया है उनका विचार देखियें. ॥

ढूंढनीने—साक्षात्रूप मिशरीके कूज्जेका आकार मात्रको, ' स्थापना ' ठहराई, । और, मिट्टीका, तथा कागजका, मिशरीके कूज्जेका आकारको,—स्थापना निक्षेप, ठहराया । परंतु इतना सोच न कियाके, जो साक्षात्रूप मिशरीका आकार है सो तो, भाव निक्षेपका विषयरूप वस्तु है, में स्थापना किस हिसाबसें ठहराती हुं ? क्यौं कि-उस मिशरीका आकारमें, मिठापण विगरे सर्वगुण 'मिशरीका' विद्यमान है, सो तो भाव निक्षेपका विषय, ढूंढनीके ल-

क्षणसें भी-सिद्धरूप हैं। इस वास्ते यह विकल्प ही जूठा है. । और स्थापना निक्षेप है सो, मूल वस्तुकी आकृति अनाकृति रूपे, दूसरी 'दश' प्रकारकी वस्तुमें स्थापित करके, पिछान करनेका शास्त्रकारने दिखाया ही है. । इस वास्ते 'स्थापना, और 'स्थापना निक्षेप' अलग अलग तीनकालमें भी नही वन सकते है । और न शास्त्रकारने दिखाया भी है. ॥

॥ अब देखिये, ऋषभदेवके विषयमें, ढूंढनीका कहना—औदारिक शरीर, स्वर्ण वर्ण, समचौरस संस्थान, वृषभ लक्षणादि १००८—लक्षण सहित, पद्मासन, वैराग्य मुद्रा, जिससें पहिचाने जायें कि—यह ऋषभदेव भगवान हैं, सो स्थापना. ॥

पाठकवर्ग ? ढूंढनीजीकी घिठाई देखियेके जो तीर्थंकर—पद्मासन युक्त, और वैराग्य मुद्रा सहित, सर्व लक्षण लक्षित, साक्षात् भगवानरूपे, भाव तीर्थंकर पणाको प्राप्त हुये है, इनको स्थापनारूपे कर दिखाती है? नतो सिद्धांत तरफ देखती है, और न तो अपणा किया हुवा लक्षणके तरफ भी देखती है, इनकी अज्ञता-कौनसें प्रकारकी समजनी, और साक्षात्पणे भगवान् सो,-स्थापना, यह विचार किस गुरुके पाससें पढकर आई ? । और, पाषाणादिकमें—स्थापना निक्षेप, करणा सो तो सूत्रके कहने मुजब योग्य ही है. । इस वास्ते 'स्थापना' और 'स्थापना निक्षेप, तीनकालमें भी नही वन सकता है. ढूंढनीजीकी तो अकल ही ठिकानेपर नही है ।

इति स्थापना, और स्थापना निक्षेप, का विचार.

अब ढूंढनीजीका—द्रव्य, और द्रव्य निक्षेप का विचार—करके दिखावते हैं ॥

मिशरीका 'द्रव्य' खांड आदिक, जिससे मिशरी बने सो 'द्रव्य' ॥ और चासनी भरनेके पहिले, और मिशरी निकालनेके पिछे भी, मिशरीके कूज्जे कहते हैं सो 'द्रव्य निक्षेप' ! ॥

पाठकवर्ग अब विचार किजीये के, मिशरी नामकी वस्तुका कारण,—जो पूर्वावस्थारूप खांड है, उसमें मिशरी वस्तुका 'द्रव्य निक्षेप' करनेका शास्त्रकारने कहा है, उसको ढूंढनी मिशरीका 'द्रव्य' मात्र कहती है. । और जो मिट्टीका कूज्जामें,—मिशरी वस्तुका गुण, एक अंश मात्र भी नही हैं, उसमें मिशरी वस्तुका 'द्रव्य निक्षेप' ठहराती है. । अब देखो ढूंढनीका पोथा सें—द्रव्य निक्षेप कालक्षण—वस्तुका वर्त्तमान गुण रहित, अतीत अथवा अनागत गुण सहित, और नाम आकारभी सहित, सो, द्रव्यनिक्षेप, । यह ढूंढनीका लक्षण, मिट्टीके कूज्जेमें मिशरी वस्तुका क्या है ! क्या अतीत अनागतमें, मिट्टीका कूज्जा है सो, मिशरी पणेका गुणको, अथवा मिशरी पणेका नामको, कुछ धारण करता है ? जो मिशरी वस्तुका 'द्रव्यनिक्षेप' कर दिखाती है ? । और, ढूंढनी सूत्रसें, नो आगमके भेदमें, १ जाणग सरीर, और २ भविअ सरीरमें,—द्रव्यनिक्षेप, करना कहती है, सो तो, वस्तुकी पूर्वकाल अवस्था, किंवा अपरकाल अवस्था सिद्ध होती है, तो पिछे मिशरी वस्तुका—द्रव्य निक्षेप, मिट्टीके कूज्जेमें करनेका, किस गुरुपाससे पढकर दिखाती है ?

अब देखिये ऋषभदेवके विषयमें—ढूंढनीका 'द्रव्य' और 'द्रव्यनिक्षेप' सत्यार्थ—पृष्ट. १६ सें—यथा भाव गुण सहित, पूर्वोक्त शरीर, अर्थात् संयम आदि केवल ज्ञान पर्यंत, गुण सहित शरीर सो 'द्रव्य' ऋषभदेव, ॥ और पूर्वोक्त 'जाणगसरीर' और 'भविअ सरीर, अर्थात् अतीत अनागत कालमें, भाव गुण

सहित, वर्त्तमान कालमें भावगुण रहित शरीर, अर्थात् ऋषभदेवजी निर्वाण हुए पीछे, यावत्काल शरीरको दाह नहीं किया, तावत्काल जो मृतक शरीर रहाथा सो 'द्रव्यनिक्षेप'। ऋषभदेवजी वाले गुण करके रहित, कार्य साधक नही, ताते निरर्थक है ॥

॥ इहांपर देखिये ढूंढनीजी की धिठाई, जो ऋषभ देवका २ भविअ शरीर, (अर्थात् भविष्य कालमें, तीर्थंकरकी ऋद्धिका भोग करने वाला शरीर, सो तो ठहराया 'द्रव्य'। और 'जाणग सरीर' (अर्थात् ऋषभ देवजीका मृतक शरीर) सो तो ठहराया 'द्रव्य निक्षेप'। और सूत्रपाठसें,–नो आगमके भेदमें, १ जाणग सरीर, और २ भविअ सरीर, यह दोनो भेदको भी लिखती है 'द्रव्यनिक्षेप'। तो अव विचार किजीये–ढूंढनीके लेखमें, कितनी सत्यता है ? ॥ यह ढूंढनी अपणाही लेखमें पूर्वाऽपरका विचार किये बिना, विवेक रहितपणेका आचरण करती है या नही ? सो पाठक वर्ग–लक्षणसें, और सूत्र पाठसें भी, वारंवार विचार करें.॥ मैं कहां तक लिखके पत्र भरुंगा ? यह ढूंढनीजी कभी दूसरेका लेख तरफ ध्यान न देती, परंतु अपणा लेख तरफ तो ध्यान देके लिखती ? तव भी हमको इतना परिश्रम नही करना पडता, परंतु जहां कुछ विचार ही नही है ऐसेंको हम कहेंभी क्या ? ॥

इति ढूंढनीजीका–द्रव्य और द्रव्यनिक्षेप,का विचार.

॥ अव देखिये ढूंढनीका 'भाव' और 'भावनिक्षेप' का विचार ॥

मिशरीका मिठापण, तथा स्निग्ध, (शरदतर) स्वभाव (तासीर) सो भाव मिशरी ॥

और पूर्वोक्त मिट्टीके कूज्जेमें, मिशरी भरी हुई सो, भाव निक्षेप ॥

अब देखिये इसमें विचार—जो इक्षुरसका सार, मिठापण विगरेसे, वस्तुका भाव निक्षेपपणाको प्राप्त हुवा है, उनको ढूंढनी 'भाव' ठहराती है. । और जो मिट्टीके कूज्जेमें, मिशरीपणेका—एक अंशमात्र भी गुण नही है, उनको मिशरी नामकी वस्तुका 'भाव निक्षेप, ठहराती है. । और अपणा किया हुवा लक्षणमें—वस्तुका नाम, आकार, और वर्त्तमान गुण सहित, सो,—भाव निक्षेप, वैंशा लिख दिखाती है. । तो अब मिट्टीके कूज्जेमें, मिशरी वस्तुका गुण क्या है ? और मिट्टीके कूज्जेको—मिशरी नामसें, कौन कहता हैं. ? । और यह ढूंढनी सूत्रसें तो, भाव आवश्यकमें, उपयोग सहि आवश्यकका करणा, वैंशा लिखके आवश्यकका भावनिक्षेप लिख दिखाती है, और इहां मिशरी वस्तुका 'भाव निक्षेपमें' मिट्टीका कूज्जा दिखाती हैं. । भाव निक्षेप करने तो लगी हैं मिशरी वस्तुका; और दिखाती है मिट्टीका कूज्जा, क्या मिट्टीका कूज्जेको मिशरी करके, ढूंढनी खा जाती है ? । हे ढूंढनीजी हीरीके विवाहमें, वीरीको कैसें धर देती है ? ।

अब देखिये ऋषभदेवके विषयमें, भाव, और भाव निक्षेप ढूंढनीजीका. ॥

भगवान् ऐसे नाम कर्मवाला चेतन, चतुष्टय गुण, प्रकाशरूप आत्मा, सो 'भाव' ऋषभदेव. ॥

और, शरीर स्थित, पूर्वोक्त चतुष्टय गुणसहित, 'आत्मा' सो 'भावनिक्षेप' है. ॥

अब देखिये इसमें विचार—जो भगवान् ऐसे नाम कर्मवाला

चेतन है सो, तीर्थंकरकी पूर्वकालकी अवस्था रूपे, 'द्रव्यनिक्षेपका' विषय है, उनको ढूंढनी 'भावरूपसें' लिखदीखाती है, और अपणी चातुरी प्रगट करती है, परंतु अपणा जूठा लिखा हुवा, द्रव्यनिक्षेपका लक्षण तरफभी ख्याल नही करती है. । देखो ढूंढनीका द्रव्यनिक्षेपका लक्षण—वस्तुका वर्त्तमान गुणरहित, अतीत अथवा अनागत गुणसहित, और आकार, नामभी सहित, सो द्रव्यनिक्षेप, । अब इस जूठा लक्षणसे भी, पाठकवर्ग विचार करेंकिं, भगवान् ऐसे नाम कर्मवाला चेतन, तीर्थंकर पदके अतीत कालकी अवस्था रूपसे है या नही ? जब अतीत कालमें भगवान् ऐसे नामकर्मको धारण किया तबतो अवश्य मेव द्रव्यनिक्षेपका विषय हुवा, उनको ढूंढनी भाव मात्र किस हिसाबसे दिखाती है ? सो पाठकवर्ग अछी तरांसें विचार करें ॥ जब तीर्थंकरकी ऋद्धिको प्राप्त होके, तीर्थंकर पदका भोग कर रहै है, उनको भावनिक्षेप कहना सो तो युक्ति युक्तही है.। और आजतक जितने ढूंढक होते आये सोभी, यूंही कहते आये है के, साक्षात् तीर्थंकर पदमें विराजते होवे, उस 'भावनिक्षेप' को हम मानते है, परंतु इस ढूंढनीने तो, कोई नवीन प्रकारकी चातुरी काही आचरण करके दिखाया है. ॥

इति भाव, और भावनिक्षेप,का विचार.

देखिये इस विषयमें तात्पर्य—सूत्रकारने वस्तुमें ही 'चार निक्षेप' का करणा निश्चयसें कहा है.

अब ढूंढनी—निक्षेप तो करने लगीहैं—इक्षुरसके सार वस्तुका, उनका निर्वाह किये विना, मिशरी वस्तुका 'नाम निक्षेप' कन्यारूप दूसरी वस्तुमें कर दिखाया. । तैसें ही ऋषभदेव वस्तुका 'नामनिक्षेप' पुरुषरूप दूसरी वस्तुमें करं दिखाया. । और दोनो व-

स्तुका ' स्थापना निक्षेप, शास्त्रकारके कहने मुजब कर दिखाया. । अब ' द्रव्य निक्षेप, मिश्री वस्तुका, अपणा किया हुवा लक्षणसें भी विपरीतपणे, मिट्टीके कूज्जेमें, कर दिखाया, जिस मिट्टीमें मिश्री पणेका भाव, न तो पूर्वकालमें है, और न तो अपरकालमें, है। और ऋषभदेव नामकी वस्तुका ' द्रव्य निक्षेप, केवल आतीतकालमें तीर्थंकर भाव वस्तुका कारणरूप मृतक शरीरमें, कर दिखाया. । और भविष्य कालका कारणरूप शरीरमें, केवल ' द्रव्य ' पणा ठहराया. ॥

अब मिशरी नामकी वस्तुका ' भाव निक्षेप ' मिट्टीके कूज्जेमें ठहराया. । और ऋषभदेव नामकी वस्तुका ' भाव निक्षेप, तीर्थंकरमें ठहराया. । यह तो ठीकही है, परंतु मिशरी वस्तुका ' भाव निक्षेप ' मिट्टीके कूज्जेमें ठहराया यह हिसाब कैसें मिलेगा ? । निक्षेप तो करने लगी है किसका, और करके दिखाती है किसमें. ढूंढनीकी इतनी चातुरी दिखानेके वास्ते, यह लेख फिर लिख दिखाया है. ॥ सो पाठकवर्ग पुनः पुनः विचार करें. ! ॥

॥ अब स्त्रीकी मूर्त्तिसें-काम जागे ॥

ढूंढनी-पृष्ठ ३४ ओ. ३ सें-स्त्रीकी ' मूर्तियोंको ' देखके तो, सर्वा कामियोंको काम जागता होगा । परंतु भगवान्की ' मूर्तियोंको ' देखके, तुम सरीखे श्रद्धालुओमेंसें, किस २ को वैराग्य हुवा, सो बताओ ? ॥ ओ. १२ से-अथवा किसीको किसी प्रकार ' मूर्तियों ' देखनेसे, वैराग्य आभीजाय, तो क्या वंदनीय हो जायेंगी इत्यादि ॥

समीक्षा-इहांपर ढुंढनीजीने, यह क्या चातुरी दिखादीई है

कि–स्त्रीयोकी मूर्त्तिसे तो काम जागे, परंतु भगवानकी मूर्त्ति देखके भगवान् पणेका भाव न जागे, परंतु सो किसके भाव न जागे कि– वीतराग देवकी मूर्त्तिपर द्वेष करके, जिसको अधिकपणे संसार परिभ्रमण करना होगा, उसके तो भले भाव न जागें, परंतु जिस भविक पुरुषको, भव भ्रमणकाल अल्प रहा होगा सोतो वीतराग देवकी मूर्त्तिको देखके सदाही प्रमुदित रहेगा, यहतो निःसंशय बात है, ॥ जब वीतरागदेवकी मूर्त्ति देखके भक्ति आजावे, तब वंदनिक न होगी, तो क्या निंदनिक होगी ? किस गुरुने तूंने यह चातुरी दिखाई– कि–वीतराग देवकी ' मूर्त्ति ' निंदनिक है ? ॥

॥ अब मूर्त्तिसें ज्यादा समज ॥

ढूंढनी–पृष्ट ३५ ओ १९ सें– हांहां सुननेकी अपेक्षा आकार (न कसा) देखनेसे, ज्यादा, और जल्दी, समज आजाती है, यह तो हमभी मानते है, परंतु उस आकारको ' वंदना ' नमस्कार करनी, यह मतवाल तुम्हें किसने पीलादी ॥

समीक्षा–हे सुमतिनि ! जो हम, मेरु, लवणसमुद्र, भद्रशालवन, गंगानदीरूप ' भाववस्तुको ' नमस्कार नहीं करते है, तो उनकी ' स्थापनारूप ' नकसाको, कैसे नमस्कार करेंगे ? जिस वस्तुका ' भावको ' वंदनिक मानते होंगे, उनका ' नामादि तीनोभी निक्षेपको, वंदनिक मानेंगे, तूंहि समजे विना, मतवाली बनी हुई, गपड सपड लिख देती है ॥

ढूंढनी–पृष्ट ३६ ओ १३ से–जो वंदने योग्य होंगें, उनकी मूर्त्तिभी वंदी जायगी, तो क्या जो चिज खानेके योग्य होगी, उ-

सकी–मूर्त्तिभी, खाई जायगी ॥ असवारीके योग्यकी–मूर्त्ति पैंभी, असवारी होगी. इत्यादि.

समीक्षा–हे विचार शीले ! तूं ही लिखती है कि–मेरु. गंगा-नदी आदि, सुननेकी अपेक्षा, नकसा देखनेसें, जल्दी समज आ-जाती है ॥ तो क्या मेरुका–आकार पे चढाईभी तूं कर लेती है ? और गंगानदी के आकारका–पाणीभी पीई लेती होगी ? जो खा-नेकी चिंजका–आकारको, खानेका बतलाती है, ? और असवारी-की चिजकी आकृति पैं–असवारी करनेका बतलाती है, ? ॥ जिस चिजकी 'मूर्त्ति' जितना कार्यके वास्ते बनाई होंगी, उनसें उतनाही कार्य प्राप्त होंगे, ज्यादा फलकी प्राप्ति कैसें होगी ? । तूंने जो मि-शरीका भावनिक्षेपमें–कल्पित 'मिट्टीका कूज्जा' कहाथा, सो क्या तूं खा गईथी ? जो हमको आकारमात्रको,–खानेका, दिखाती–है ? बसकर तेरी चातुरी ॥

॥ इति मूर्त्तिसें ज्यादा समजका विचार ॥

॥ अब पशुका ज्ञान ॥

ढूंढनी–पृष्ट ३७ ओ १४ सें–असल और नकलका ज्ञान तो, पशु, पक्षीभी, रखते है ॥ यथा–सवैया, पृष्ट ३८ से.

जटही प्रवीन नर पटके बनाये 'कीर' ताह कीर देखकर बिल्ली हु न मारे है, कागजके कांर २ ठौर २ नाना रंग ताह, फुल देख मधुकर दुरहीते छारे है, चित्रामका चीचा देख श्वान तासौं डरेनाह, बनावटका अंडा ताह पक्षी हु न पारे है, असल हुं नकलको जाने पशुपखी राम, मूढ नर जाने नाह नकल कैसे तारे है.

समीक्षा–हे पंडिते ! हजारो जैनशास्त्रका ज्ञान छोडके, याही उत्तम ज्ञान, ढूंढ २ के लाई, ! कुछ विचार तो करणाथा कि–जव वनावटकी चिज पर, पशु, विगरे दोर नही करते हैं, कभी भ्रममें पडजावे तो, दोर करेभी, परंतु तेरें कहने मुजव निःफल होवे । हमभी तेरी यह वात मान लेंगे ॥ परंतु कोइ पुरुष–विल्लीके आगे–पोपट पोपट । मधुकर आगे–फुल फुल ।.और श्वानके आगे–चित्ता चित्ता । पंखीके आगे–अंडा अंडा । वैसें वारंवार पुकार करें, तो क्या ? पोपटके नाम पै विल्ली–दोड करेगी. ? तूं कहेंगी दोर न करें । तैसें फुलके नामसें -भमराभी न आयगा । चित्ताके नामसें–कुत्ताभी न डरेगा ॥ हां कभी 'आकृति देखनेसें' तो ते पशु, भूलभी खा जावें. परंतु–नाम मात्रका, उच्चारण सुनके तो, कभी न प्रवृत्ति करें । तो पिछे भगवान् भगवान् ऐसा 'नाम' लेनेसें भी, तुमेरा तरणा कभी न होगा. ? तो क्या होगा कि, तुमेरा नास्तिकपणा जाहेर होगा, इस वास्ते यह सवैयाका वनानेवालाभी, पंडितोंकी पंक्तिसें–अलगही मालूम होता है, क्योंकि विचार पूर्वक नही है.॥

॥ इति पशु ज्ञानका विचार ॥

॥ अव वाप, वावेकी, मूर्त्तियां.॥

ढूंढनी–पृष्ट ३८ ओ १४ सें–हमने तो किसीको देखा नहीं कि–अपने वापकी, वावेकी, मूर्त्तियों वनाके, पूज रहे हैं ॥-और उसकी न्हुं (वेटेकी वहु) उस स्वसुरकी–मूर्त्तिसें, घुंगट, पल्ला, करती है ॥ हां किसीने कुलरूढी करके, वा मोहके वस होकर–क्रोध करके, भूल करके, कल्पना करली तो, उसकी–अज्ञान अवस्था है.॥

जैसें ज्ञातासुत्रमें–मल्लादिन कुमारने, चित्रशालीमें–मल्लि कुमारीकी 'मूर्त्तिको' देखके–लज्जा पाई, और अदब–उठाया, और चित्रकार पै–क्रोधकिया, ऐसा लिखा है ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग! बाप, बावेकी, मूर्त्तियें, बनाके नही पूजते है सो सत्य है. तो वह विद्यमान हुयेंभी, कौन पूजते है! जब विद्यमान हुयेको नहि पूजते है, तो पिछे उनोकी–मूर्त्तिकी पुजा, ढूंढनी कैसें–कराती है, यह तो केवल कुतर्क है॥ और स्वसुरकी मुर्त्तिसें–बेटेकी वहु, घूंघट नही खैंचती है तो, स्वसुरकी वार्ता करनेके वख्त परभी–घूंघट न खैंचेगी। और जो बाप, बावेकी 'मूर्त्ति' पै–अदब नही करता है. सो बाप बावेका–नामपैभी, अदब न करेगा। तो उनोका नामभी निरर्थक हो जायगा॥ जब वैसा हुवा तब तो तुमको,–भगवान्का–नामसेभी, कुछ लाभ न होगा, तेरी कुतर्क तेरेकुं ही–बाधक रूप है॥ और तूं लिखती है कि– मल्लादिनकमारने, चित्रशालीमें–मल्लिकुमारीकी–मूर्त्तिको, देखके–लज्जापाई, अदब, उठाया, इत्यादि.

जब मोहके वससेभी, मल्लादिनकुमारने–मल्लिकुमारीकी मूर्त्तिकी लज्जा किई, और अदब उठाया, । तब अरिहंतदेवके–परमरागी, परम भक्त, जो होंगे सोतो, वीतरागदेवकी–मूर्त्तिको, देखतेकि साथ, आनंदितहोके अवश्य ही अदब उठावेगा, और रंगतानमें–मग्नभी हो-जायगा॥ और जिसको महामोहके उदयसे गाढ मिथ्यात्वकी प्राप्तिहुईहोंगी सो, और वहुतकालतक संसार परिभ्रमण करना रहा होगा सो–निर्लज्ज होकेही वीतरागदेवकी 'मूर्त्तिकी' बेअदबी करेगा. परंतु भव्यपुरुषतो कभीही–बेअदबी न करेगा. ॥

ढुंढनी-पृष्ट. ३९ ओ. ९ सें-हरएकने-मूर्त्तिको देखके, ऐसा-नहिं किया, क्योंकि यहशास्त्रोक्त क्रियानहीहै इत्यादि । भगवंतने उपदेश कियाहोकि-यहक्रिया इसविधिसे, ऐसे करनी योग्य है इत्यादि ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग ? ढूंढनी लिखतीहै कि-हरएकने मूर्त्ति देखके, ऐसा नहिं किया. यहशास्त्रोक्ताक्रिया नही है । विचार यह हैकि-जे वीतरागदेवकी-मूर्त्तिकी स्थापना, हजारो वरससे होतीआई, और सारीपृथ्वीकोभी मंडित कररहीहै, और हजारो शास्त्रोंमें लेखभी होचुकाहै, तोभी ढूंढनी कहतीहैकि-यह शास्त्रोक्त विधि नही है. ॥ यह कैसा न्याय हैकि-अंधेके आगे हजारो-दीपक, प्रगट करनेपरभी, और ऊलूको सूर्यका-प्रकाश, दिखानेपरभी, कहदेवें कि दीपकका, और सूर्यका-प्रकाश तो है ही नही. उनको हम कैसें समजावेगें ?

॥ इति प्रह्लादिन कुमार ॥

॥ अब वज्र करणमें कुतर्क ॥

ढूंढनी—पृष्ट. ४० ओ. ९ सें-पद्मपुराण (रामचरित्र) में-वज्रकरणने-अंगुठीमें 'मूर्त्ति' कराई, ॥ आगे ओ. १२ सें-यहसव उच्च, नीच, कर्म, मिथ्यादि पुण्यपापका, स्वरूप दिखानेको, संबंधमें कथन, आजाता है, यहनहीं जानना कि-सूत्रमें कहे हैं तो-करने योग्य होगया ॥

समीक्षा—ढूंढनीका हठतो देखो, कितना जवरजस्त है, कि, जिस वीतराग देवकी-मूर्तिका पुजनसे, श्रावकोंको-पुण्यकी प्राप्ति होती होवे सोभी, करनके योग्य नहीं । और वज्रकरणको परम

सम्यक्त्वधारी श्रावक जानके, रामलक्ष्मण दोनोभाईने पक्षमें होके, जय दिवाया। सो वज्रकरणभी--वीतरागदेवकी मूर्त्ति शिवाय, दूसरेको नमस्कार करनेवाला नहीथा. उसीही पुण्यके प्रवलसें, जय भी प्राप्त हुवा. ढूंढनी लिखती है कि--करने के योग्य नहीं, हठकी प्रवलता तो देखो?

जो कार्य दुखदाई होवे, सो कार्य--करने के योग्य नही होता है। परंतु जो कार्य इस लोकमें, और परलोकमें, सदा सुखदाता है, सो भी कार्य--करने लायक नही? ऐसा किस गुरुके पास पढी?

॥ इति वज्र करणमें कुतर्कका विचार. ॥

॥ अब मूर्त्तिके आगे मुकद्दमा ॥

ढूंढनी-पृष्ठ ४२ ओ २ से--राजाकी मूर्त्तिको लावें तो, मुकद्दमें, नकलें, कौन उस--मूर्त्तिके आगे, पेश करता है. ॥

समीक्षा--पाठक वर्ग! राजाकी मूर्त्तिके आगे--मुकद्दमें, नकलें, पेश नही होतें है, यह--मान, लिया। परंतु दूर देशमें जब राजा चला गया, तब उसके--नाम मात्रसेंभी--मुकद्दमें, नकलें, पेश न किई जायगी। तो पिछे तीर्थंकरोंके अभावमें--तीर्थंकरोंके 'नामसें' यह ढूंढको, हे भगवन् २ का--नाम, दे दे के, क्यौं कुकवा करते है? क्यौंकि ढूंढनीके मानने मुजब--कुछ सिद्धि तो, होनेवाली है नही। यह ढूंढनी--कुतर्कोंसे थोथी पोथी भरके, अपणी पंडितानीपणा दिखलाती है, परंतु विचार नही करती है कि, ऐसा लिखनेसे मेरी गतिभी क्या होगी. ॥

॥ इति राजाकी मूर्त्तिके आगे मुकुदमें ॥

॥ अब मित्रकी मूर्त्तिको देखनेसें प्रेम ॥

ढूंढनी–पृष्ट ४२ ओ १० सें–हमभी मानते है की–मित्रकी मूर्त्तिको देखके–प्रेम, जागता है, परंतु यह तो मोह कर्मके रंग है ॥

समीक्षा–ढूंढनीकी मूढना तो देखो कि,–मित्रकी मूर्त्तिको देखनेतो 'प्रेम' जागना है. परंतु जे–वीतराग देव, हमारा परम तरन तारन, संसार समुद्रसें पार उतारन, उनकी–मूर्त्ति, देखके 'प्रेम' न जागे, तो पिछे दूर भव्य विना, अथवा अभव्य के विना, यह लक्षण दूसरेमें कैसें होगे ? हमभी यही समज ते है कि, जिसको संसार भ्रमण, करनेका रहा होगा, उसकोंही वीतरागदेव पर बहुत 'प्रेम' न जागेगा. ॥

॥ अब मूर्त्तिको वंदना नही ॥

ढूंढनी–पृष्ट ४३ ओ. ९ सें–ऐसेंही भगवान्‌की मूर्त्तिको देखके, कोई खुश हो जाय तो हो जाय, परंतु नमस्कार, कौन विद्वान् करेगा. और दाल चावलादि, कौन विद्वान् चढावेगा. ॥

यथा गीत, "चाल" लूचेकी–कूक पाडे सुनता नाहीं, रागरंग क्या । आखो सेती देखे नाहीं, नाच नृत्य क्या, ॥ ताक थइया ताक थइया ताक थइया क्या, इकेंद्रि आगे पंचेंद्री नाचे, यह तमासा क्या, १ । नासिकाके स्वर चाले नाहीं, धूप दीप क्या । मुखमें जिव्हा हाले नाहीं, भोग पान क्या, ॥ ताक थइया २ । परम त्यागी परम वैरागी, हार श्रृंगार क्या । आगमचारी पवनविहारी, ताले जिंद क्या, ॥ ताक थइया ३ । साधु श्रावक पूजी नाहीं, देव

रीस क्या, । जीत विहारी कुल आचारी, धर्म रीत क्या, ॥ ताक थइया ४ ॥ इति.

समीक्षा—धर्मकी प्राप्तिको प्राप्त होनेवालें जीव, वीतराग भगवानकी मूर्त्तिको देखके तो, सभी खुश हो जाते है, केवल निर्भाग्य शेखरोंको ही खुशी होनी न होगा। और वंदना, नमस्कारभी, करना उचित ही है. क्यौं कि जब हम भगवानका, नामके--वर्ण मात्रको उच्चारण करके नमस्कार करते है. तो पिछे उनकी--वैराग्य मुद्रामयी, परम शांत--मूर्त्तिको, देखके, नमस्कार करनेमें हमको क्या हरकत आति है? जो तूं कुतर्कोंसें पेट फूगाती है। जिनका--नाम मात्र, हमारा--वंदनाय है, तो उनकी- मूर्त्ति,वंदनीय क्यौं न होगी?॥ और जो--फल फलादि चढाते है. सो तो उस भगवान् के नामसें--खेराद करते है. ॥ जैसें—आगे राजा लोकों, भगवानका नाम मात्रको सुणतकी साथ, मुकट विना सर्व अलंकार खेराद कर देतेथे. । तैसें हमभी हमारी शक्ति मुजब, प्रथम भेटके अवसरमें, खेराद करते है, । और जिनको--खानेको ही न होगा, तो वह खेराद भी क्या करेंगा?

और तूं लिखती है कि—कूक पाडे सुनता नाही. रागरंग क्या. इत्यादि. यहभी समज विनाका बकवाद है. । क्यौंकि पृष्ठ ४८ ओ. ३ सें— तूंही लिखती है कि—गुणियोंके नाम, गुण सहित लेनेसे (भजन करनेसे) महा फल होता है, अर्थात्. ज्ञानादिक कर्म क्षय होते है.

और ढूंढक लोकोंभी बडा तडकेसें (पिछली रातसे) उठकर-- तवन, सज्झाय, पढकर कूका पाडते है. तो पिछे कैसे कहती है, कि कूक पाडनेसे सुनताही नही, जो ऐसाही है तो तुम--मौनकर, एक

जगोपर वैठ क्यौं नही रहते हो ?

और भगवानको, एकेंद्रिपणा कैसें कहती है ? तूं कहेगी. हम तो--मूर्त्तिको एकेंद्रि कहते है. ॥ हे सुमतिनी ! उसमें एकेंद्रिपणा है कहां, सोतो वीतरागदेवकी--आकृति है ॥ और जो--धूपादिक, करते है सो तो--भक्तिका अंग है. क्यौंकि भगवान् साक्षात् विराजतेथे, तबभी भक्तजनो--धूपादिक, करतेही थें । और भोगभी कुछ भगवानको नही करते है, सोतो उनके नामपै--खेराद् करते है । हार श्रृंगारादि करते है सोभी, हमारा भावकी--वृद्धि के, वास्तेही करते है. कुछ भगवान्के वास्ते नही करते है. जैसें साक्षात् भगवान् विचरतेथे, तबभीं--समवसरणकी रचना, और भूमिकी पवित्रता, विगेर देवतादिक करतेथे, सो कुछ भगवानके वास्ते नही करतेथे. तैसें यहभी हम लोक--हमाराही कल्याणके वास्ते करते है. तो पिछे भगवान्के वास्त किया, वेसा क्यौं सोर मचाती है ? जो समवसरणादिक, भगवान्के वास्ते होताथा, वैसा कहेंगी तो, तूंही कलंकित होगी. कुछ भगवान् कलंकित न होंगे.

और साधु श्रावक पूजीनाही, यह जो कहा है सौभी अयोग्य पणेका ही है. क्योंकि साधुको--मूर्त्ति पूजनेका, अधिकारही नही है. और श्रावको तो- हजारो वरससे पूजते आते है. और पूजतेभी है. तूम अज्ञोको दिखे नाही हमभी करे क्या. ॥

इति मूर्त्तिका--वंदना विचार ॥

॥ अब मूर्त्तिको पूजन विचार ॥

ढूंढनी--पृष्ट ४४ ओ. १४ से--हम--मूर्त्ति, मानते है, परंतु

'मूर्त्तिका पूजन' नहीं मानते है. वैसा कहकर एक-दृष्टांत दिया है कि-

ढूंढनीवहुको, सासु-मंदिर, ले चली, उहां शेरको देखके वहु, सासुको समजानेके लिये-गिर पडी. और कहने लगी, यह मेरेको-खा लेंगे. सासुने कहा यह तो पत्थरका-आकार है, नहि खा सक्ते, आगे वहु-एक गौ पास वछा है, वैसी पत्थरकी गौ देख-दोहने लगी. सासुने कहा, यह दुधकी-आशा पूरण न करेगी. आगे देवकी मूर्त्तिको झुक २ सीस निवाती सासु, वहुकोभी कहने लगी, तूं क्यौं शीस नही निवाती-तव वहु.

छप्पा. कहकर, सासुको समजाने लगी.

पर्वतसे पाषाण फोडकर-सिला जो लाये,
वनी गौ, और सिंह, तीसरे हरी पधराये;
गौ जो देवे दुध, सिंह जो उठकर मारे,
दोनों वातें सत्य होय, तो हरी निस्तारे;
तीनोका कारण एक है, फल कार्य कहे दोय;
दोनों वाते जूठ है, तो एक सत्य किम होय.

सासु लाजवाव हुई, घरको आई, फिर-मंदिरको न गई.

समीक्षा-शेरकी मूर्ति, उठकर मारती नही है. और गौकी मूर्ति, न दुध देती है, । तैसें-जिनप्रतिमा, न तार सकेगी। यह तेरी वातभी मान लेंवे । तो क्या शेर २ ऐसा-नामका उच्चारण करतेके साथ-शेर आके, तेरी और तेरे सेवकोकी-मिट्टीतो खराव करता ही होगा ? और-गौ, गौका, पुकार करनेकेही साथ-दुधका मटका भी, भरही जाता होगा ? तूं कहेंगी, कि, शेरका-नाम उच्चारण कर-

नेसे तो शेर कभी नही–मारता है, और गौका–नाम उच्चारण कर-नेसे, नतो–दुधका मटका भरता है । जब तो तुम ढूंढको जे भगवा-नका–नाम, ले, लेके, पुकार करते हो, सोभी तुमेरा–निरर्थक ही हो जायगा, तब तो तेरा दिया हुवा दृष्टांत तुमको ही–धर्मसें, भ्रष्ट क-रनेवाला होगा ॥ हमको तो–नाम, स्थापना, दोनोही कल्याणकारी है । पाठकवर्ग ! इस ढूंढनीने, प्रथम एक सवैया लिखा । फिर ता-कथइया ताकथइयासे, नाच कर दिखलाया । अब इस तिसरा दृष्टांत देके, भगवान्का–नाम स्मरण मात्रभी छुडवाके, न जाने उनके भोंदू सेवकोंको–कौनसें खड्डमें गेरेंगी, ? ॥ और पृष्ट १६२ ओ. १ से–ढूंढक मतपणाको सनातनसे दावा बांधती है, तब तो आज ह-जारो वरससे इनके पूर्वजो, मूर्त्तिपूजकोंके–खंडन करतेंही आये होंगे, सो पुस्तके उनके पूर्वजों क्या–मरती वख्त साथ लेके चले गयेथें ? सो उनका कोइभी प्रमाण नही देती हूई, आजकालके मूढोंका प्र-माण देती है ? और साक्षात् पार्वतीरूपका अवतार लेके, क्या तूं-ही दुनीयामें उतर आंई है ? जो परमपवित्र रूप जिनमूर्त्तिका–खंड करनेको, इतना धांधल मचाया है. ?

ढूंढनी–अजी मूर्त्ति तो हम मानते हैं, परंतु मूर्तिका–पूजन, नही मानते है॥ हम पुछते है कि, मूर्त्ति है सो–कोइभी जातकी कामना तो पूरी करनेवाली है नही, तो तूं–मानतीही किस वास्ते है, ? क्या भोले जीवोंको भरमाती है.? जिनमूर्त्तिके बदल तेरी कुतर्को है सो तो तेराही–घात करनेवाली होगी. धर्मात्मा पुरुषोंको तो, जिनमूर्त्ति–सदाही कल्याणदाता–बनी हूई है, तेरी कुतर्कोसें क्या होनेवाला है ?

॥ अब नाम भी तुमेरे जैसा नही ॥

ढूंढनी–पृष्ट ४७ ओ ७ सें–हम तो–नामभी, तुम्हारीसी सम-

जकी तरह–नहीं मानते हैं, क्यौं कि हम जानते हैं कि–विना गुणों के जाने, विना गुणों के यादमें ग्रहे–नाम लेनेसे, कुछ लाभ नहीं. हम तो गुण सहित–नाम लेते हैं, सो तो–भावमें ही दाखल है.

समीक्षा–हे ढूंढनी ! तूं क्या साक्षात्–पर्वत तनयाका, स्वरूप धारण करके आई है ? जो हमारी समज तूंने मालुम हो गई । तूं भगवान्‌का–नाम, गुणोंको याद करने के वास्ते लेती हैं. तो हम क्या–गालीयां देने के वास्ते, भगवान्‌का–नाम लेतें है ? वाहरे तेरी चतुराई. ?

॥ जीवर और भेषधारी. ॥

ढूंढनी–पृष्ट ४८ ओ ८ से–किसी जीवरका–नाम–महावीर है, तो तुम उसके पैरोंमे पडते हो. !

समीक्षा–हे ढूंढनी ! किसने तेरे आगे ऐसा कहा कि,–जीवरका नाम महावीर, सो, सिद्धार्थ राजाका–पुत्र है. क्यौंकि–महावीर, यह नाम तो, अनादिका अनेक वीर पुरुषोंमें रखाता आया है. परंतु हमारा जो–महावीर नामका, संकेत है, सो तो–त्रिशला नंदनमें ही होनेसे, हम तो उनोंको ही याद करनेवालें है. जिसने जिस वस्तुमें जिनका संकेत किया है, सो तो उनकाही समजता है. दूसरे के अभिप्रायमें–तिसरेकी जरूरी ही क्या है ?

ढूंढनी–पृष्ट ४९ ओ. १ लीसें–भेषधारी, और मूर्त्तिके, विवादमें–कहती है कि, मूर्त्तिमें–गुण अवगुण दोनोही नही, ताते–वंदना करना कदापि योग्य नही.

समीक्षा–हे ढूंढनी ? जो भ्रष्ट थयेलो भेषधारी ते, और जो सर्वगुणसंपन्न वीतरागदेवकी–आकृति ते, क्या एक प्रमाणमें करती है ? इहांपर थोडासा विचार कर कि, जिस तीर्थंकरोके साथ केवल संबंध हुयेले वर्णका समुदायरूप–नाम मात्र है,सोभी–कल्याणकारी है.

और तिनकी आकृतिभी, भव्य पुरुषोंका-भावकी वृद्धि करनेवालीही है. उनको क्या भेषधारीकी तरें-निषेध करती है. ? क्यौं कि परम योगावस्थाकी-मूर्त्तिको देखके तो, सारी आलमभी खुस हो जायगी । परंतु तेरी जैसी-साध्वी, कोई पुरुप के संगमें, चित्र निकालेली देखे तो, सभीही निंभछना करेंगे, तो साक्षात्-भ्रष्ट भेषधारीकी अपभ्राजना सभी क्यौंन करेंगे ? जब भ्रष्टकी-मूर्त्ति होगी, तवही निंदनिक होगी ? परंतु सर्वगुणसंपन्न वीतरागदेवकी-मूर्त्ति, यद्यपि वीतरागके गुणोंसे रहितभी है, तोभी महा पुरुष संबंधी होनेसे, अनादरणीय कभी न होगी. तुम ढूंढको ही-चेलेको शिक्षा देते हो. कि, गुरुके आसन पै-वैठना नही. पैर लगाना नही. इत्यादि, तेतीस आसातना सिखाते हो, तो क्या आसनमें-गुरुजी, फस बैठे है. हे ढूंढनी ! तेरेको-लोकव्यवहार मात्रकीभी खवर नही, है तो शास्त्रका गूज्यको क्या समजेगी. ?

॥ अब पार्श्व अवतार ॥

ढूंढनी-पृष्ट ५० ओ ६ से-तुम्हारा पार्श्व अवतार, ऐसे कहके गाले दे तो द्वेष आवे, कि देखो यह कैसा दुष्ट बुद्धि है.

समीक्षा-जब कोई-पार्श्व अवतार, ऐसे कहकर-गालो देवे, उनकेपर तो ढूंढनीको द्वेष आ जावे. और जो लाखो महापुरुषो, भगवंत संबंधी मूर्त्ति वनायके, उनके आगे भजन बंदगी करते है, उस मूर्त्तिकी अवज्ञा करनेको-पत्थर आदि कहती है, इनका भगवान् पै भक्तानीपणा तो देखो ? कितना अधिकपणाका है. ?

॥ अब अक्षरोंसें ज्ञान नही ॥

ढूंढनी-पृष्ट ५४ ओ १ से. ॥ जिसने गुरुमुखसे-श्रुतज्ञान नहीं पाया, अर्थात् भगवान्का स्वरूप नहीं सुना, उसे मूर्त्तिको

देखके कभी ज्ञान नहीं होगाकि, यह किसकी–मूर्त्ति है. जैसें अनपढ–अक्षर, कभी नहीं वाच सकता, फिर तुम–अक्षराकारको देखके, तथा–मूर्त्तिको देखके, ज्ञान होना किस भूलसे कहते हो, ज्ञान तो ज्ञानसे होता है. क्योंकि अज्ञानीको तो पूर्वोक्त–मूर्त्तिसे ज्ञान होता नहि. और ज्ञानीको–मूर्त्तिकी गर्ज नहीं इत्यर्थः–

समीक्षा–वाहरे ढूंढनी वाह ! अक्षरोसे, और मूर्त्तिसे तो, ज्ञान होता ही नही है, यह वात तो तेरी निशानके जंडेपर चढानेवाली ही है । क्योंकि ढूंढकों तो–जवसे माताके गर्भमें आये है, तवसे ही–तीन ज्ञान लेके आये होंगे, इस वास्ते न तो–अक्षरोंकी जरुरी रहती है. और न तो–मूर्त्तिकी जरुरी रहती है. यह वात तो तेरे पास वैठनेवाले, ही मान लेवेंगे. दूसरे कोइभी मान्य न करेंगे ॥ क्योंकि हमको तो–अक्षरोंको, मास्तर दिखाके शिखाता है. जद पिछेसे–वांचना, और पढना, आता है । तैसे ही हमारे माता पिता, अथवा गुरुजी, हमको पिछान करा देते है कि–यह वीतरागदेवकी मूर्त्ति है. पिछेसे उनके गुणोकोभी समजाते है. तव ही–हमारी समजमें आता है. इस वास्ते–अक्षरोंकी स्थापना, और हमारे परमोपकारी वीतरागदेवकी–मूर्त्तिकीभी स्थापना, हमारा तो निस्तारही करनेवाली होती है । और तुम ढूंढकों तो त्रण ज्ञान सहित जन्म लेते होंगे ? इस वास्ते न तो–अक्षरोकी स्थापनाकी, और न तो वीतरागदेवकी–मूर्त्तिकी स्थापनाकी, जरुरी रहती होगी । ? जव वेशाही था तो, प्रथम पृष्ठ. ३६ में–आकार (नकसा) देखनेसें ज्यादा, और जल्दी समज आती है. यह तो हमभी मानते हैं, वेशा क्यों लिखाथा ? कुछ पूर्वाऽपरका विचार तो करणाथा ? हमको तो–नाम, और स्थापना, इन दोनोकीभी जरुरी रहती ही है ॥

॥ इति अक्षरोंसें ज्ञानका विचार ॥

॥ अव लाठीको घोडा ॥

ढूंढनी-पृष्ठ ५६ ओ १३ सें-बालकने अज्ञानतासे उसको (लाठीको) घोडा कल्प रखा है, तातें उस कल्पनाको ग्रहके, घोडा कह देते है, परंतु घास दानेका-टोकरा तो नही रख देते है। वैसें भगवान्‌का-आकार, कह देते है, परंतु वंदना, नमस्कार तो नहीं करे। और लड्डु पेंडे तो अगाडी नहीं धरें।

समीक्षा-भला हमनेभी तेरा लिखा हुवा-मान लियाकि, भगवानका आकारको देखके-आकार कह देते हो, परंतु नमस्कार नही करते हो। तो-नाम देके तो-नमस्कार, करतेही होंगे कि नही.? जो भगवान्‌का-नाम, देके-नमस्कार, करते हो, तव तो घोडाका नाम देकेभी-घास दानेका टोकरा रख देनेकी-सव क्रिया करनी पडेंगी? तुम कहोंगे लड्डु पेंडे तो, भगवान्‌का-नाम देके नही चढाते है? हम यह अनुमान करते है कि-जिसको खानेको नही मिलता होगा उनको, भगवानके-नामपै, खेराद करनेका कहांसे मिलेगा? इसमें मूढता तो देखो कि, जिस भगवानका-नाम देके, नमस्कार करें, उस भगवान्‌की-मूर्त्ति देखके, नमस्कार करें तो हम डुव जावे. यह किस प्रकारके कर्मका उदय समजना?

॥ इति लाठीका घोडा ॥

॥ अव खांडके खिलोने ॥

ढूंढनी-पृष्ठ. ५७ ओ. १३ से-खांडके हाथी, घोडा, खानेसे दोष है॥ पृष्ट. ५८ में-मिट्टीकी-गौ, तोंडनेसें हिंसा लागे. परंतु मिट्टीकी गौसे-दुध, न मिले, दोष तो हो जाय, परंतु लाभ न होय। इत्यादि-पृष्ट. ५९ तक सुधि॥

समीक्षा—जब कोइ मिट्टीकी गौ बनाके मारे, उसको तो हिंसा दोषकी प्राप्ति होवे। वैसा तो ढूंढनी मानती ही है. परंतु मिट्टीकी गौको पूजे तो—लाभकी प्राप्ति न होवे। वैसेही भगवान्की मूर्त्तिसे—प्रार्थना निःफल मानती है। हम पुछते है कि—कोइ पुरुष, हे गौ माता ! हे गौ माता ! दुध दे, दुध दे, वैसा पुकार करनेवाला है उनको—दुध मीलें के नही मिले ? तूं कहेंगी के उसकोभी—दुध काहेका मिले ? तब तो तूं, भगवानका—नाम, जपना भी निःफलही मानती होगी ? क्योंकि उससें—लाभकी तो प्राप्ति मानती ही नही है। तूं कहेंगी कें, भगवान्का—नाम देनेसे तो, हमको—लाभ होवें, तब तो गौ माताके—नामसेभी, तुमको—दुधकी प्राप्ति होनी चाहीये, तूं कहेंगी वैसा कैसे--बने, तो पिछे भगवान्के--नामसेभी, लाभ कैसें होवे. इस वास्ते तेरा मंतव्य मुजब--नतो तुमको भगवान्के--नामसेभी लाभ, और नतो भगवान्की--मूर्त्तिसेभी लाभ होगा, तो यह तुमको जो मनुष्यजन्म मिला है, सोभी निःफल रूप हो जायगा. और भगवान्के साथ द्वेष करनेसे न जाने तुमेरे ढूंढकोंको—क्या क्या गति करनी पडेगी ? हमको तो--भगवान्का, नाम देतेभी कल्याणकी प्राप्ति होती है. और उनकी--मूर्त्ति देखनेसे, और उनके नामपे--खेरादभी करनेसे परम कल्याणकी प्राप्ति होती है॥ और निर्भाग्य शेखरोंको, भगवान्के--नामसे, और भगवान्की--मूर्त्तिसेभी, अकल्याणकी प्राप्ति होती होंगी तब इसमें दूसरेभी क्या करेंगे ?

और विशेष यह हैं कि, नतो हम—दुधके वास्तें, गौका नाम लेते है, और नतो उनकी--मूर्त्तिके पाससेभी, दुधकी प्राप्ति होनेकी इछा करें. मात्र जिस* उद्देशसे (अर्थात् जिस—कार्यके वास्ते)

* वीतरागसें प्रेम, और उनकी भक्तिसे--हमारा अघोर कर्मका नाशके वास्तें॥

भगवान्‌का--नाम जपते है, तिस उद्देशसेंही--मूर्त्तिकीभी उपासना करते है. तूं किस वास्ते--कुतर्कों करके, वीतरागकी--भक्तिसें दूर होती है. ?

ढूंढनी--पृष्ठ ५९ ओ. ११ सें--कोइ पुरुष--लोहेमें, सोनेका भाव करले कि, यह हे तो--लोहेका दाम, परंतु मैं तो भावोंसे--सोना मानता हुं. इत्यादि.

समीक्षा--तूंने जे पृष्ठ. ४८ ओ. ८ में--जीवरमें, महावीर नामका निक्षेप करके, पैरोंमें पडनेका किया है, उस जीवरके भावसें, तूं जो महावीरका--नाम, जपती होगी, तब तो जरुर तेरा भाव--लोहेमें सोनेका, रखने जैसा हो जायगा। परंतु हमतो जे परम त्यागी वीतरागदेव हें, उनकाही भाव करके--नामसेभी, और--आकृतिसेभी, जपते है, इस वास्ते--सोनेके भावमे ही--सोना समजते है ।.अगर जो तूं वीतरागदेवका भावको--लोहारूप ठहराती होवें, तब तो, तेरेकोही--दुखदाई होगा, हम तेरेको कुछभी नही कहते है.--

॥ अब पंडितोंसें सुनी हुई पूजा ॥

ढूंढनी--पृष्ठ ६१ ओ ६ सें--और हमने भी वडे वडे पंडित, जो विशेषकर--भक्ति अंगको मुख्य रखते हैं, उन्होंसें सुना है कि, यावत् काल--ज्ञान नहीं, तावत् काल--मूर्त्ति पूजन है, और कई जगह लिखाभी--देखनेमें आया है. ॥

समीक्षा--पाठक वर्ग ! विचार करो कि, यावत्काल--ज्ञान नहीं तावत्काल--मूर्तिपूजन है, वैशा ढूंढनी पार्वतीजीने, कई जगह--शास्त्रोंमें लिखा हुवा देखा है, और भक्ति अंगको मुख्य रखनेवाले पंडितोंसेभी--सुना है । इससें यह सिद्ध हुवा कि, तत्वरहित लोकोको, मूर्त्तिपूजनभी, भगवानकी--भक्ति प्राप्त करनेको एक परम

साधन है ? तो पिछे जिसको-नीति रिति मात्रकीभी खबर नही है, वैसे-ढूंढकोंकी पाससे, यह ढूंढनी वीतरागदेवकी-मूर्त्तिकी भक्ति-मात्र छुडवाती हुई, और अपणा परमपूज्य वीतरागदेवकी-अवज्ञा करानेका प्रयत्न करती हुई, और यह जूठा थोथा पोथाकी रचना करती हुइ, अपणीभी क्या गति कर लेवेगी ? और उनके सेवकोकोभी-किस गतिमे डालेगी ? क्योंकि जिसको परमतत्त्व प्राप्त हो गया है, अथवा परम-ज्ञानकी प्राप्तिमें ही, सर्व संगत्याग करके-लगा हुवा है, वैसा-साधुकी पाससे तो, शास्त्रकार भी-पूजन करानेका निषेध ही लिखते है, तो फिर किसवास्ते यह थोथा पोथामें-कुतर्कोंका जालकी रचनाकरके, अपणा, और अपणे आश्रित हुयेले भद्रिक सेवकोका-नाश करनेका प्रयत्न कर रही है ? । क्यौंकि जब साधुपदको प्राप्त होके-परमतत्त्वकी प्राप्ति मिलालेवेगा, तब सभी क्रियाओ-आपोआप छुट जाती है । उस पुरुषको तेरे जैसा, मूर्त्तिपर-द्वेषभाव ही, काहेको करणा पडेगा ? अगर जो तूं तेरे मनमें अपणे आप-तत्त्वज्ञानका पुतलापणा मानती होवें, तब तो यह मेरा छोटासा लेख मात्रसे ही विचारकर ? । क्योंकि तेरा लेख यह शास्त्ररूपसे नही है, किंतु तेरे को और तेरे आश्रित सेवकोको-शस्त्ररूप होनेवाला जानकरही, मेरेको यह कलम चलानी पडी है. ॥

॥ इति पंडितोंसें-सुनी हुई, मूर्त्तिपूजाका विचार ॥

॥ अब नमोत्थुणंका पाठ ॥

ढूंढनी-पृष्ठ. ६५ ओ. १४ से-जो " नमोसिद्धाणं " पाठ पढना है इससे तो-सर्व सिद्ध पदको नमस्कार है. और जो "नमोत्थुणंका " पाठ पढना है इससे जो-तीर्थंकर, और तीर्थंकर पदवी

पाकर परोपकार करके-मोक्ष हुये हैं, उन्हींको नमस्कार है. इत्यर्थः-

समीक्षा-हे ढूंढनी 'नमोत्थुणंका' पाठसे, वर्तमान तीर्थंकरोंको, और मोक्षमें प्राप्त हुये तीर्थंकरोंकोभी, नमस्कार करना तूं मानती है? परंतु मोक्षमें प्राप्त हुयें तीर्थंकरो तो, अपरकालकी अवस्थारूपसे 'द्रव्यानिक्षेपका' विषय है। देखो सत्यार्थ पृष्ट. १६ में-'द्रव्य' संयमादि केवल ज्ञान पर्यंत, गुण सहित शरीर, सो माना था। और 'द्रव्यनिक्षेप' जो भगवानका-मृतक शरीर सो, तूने निरर्थकपणे माना था॥ अब इहांपर लिखती है कि, जो 'नमोत्थुणंका' पाठ पढना है इससे. तीर्थंकर, और तीर्थंकर पदवी पाकर परोपकार करके-मोक्ष हुये हैं, उन्हींको-नमस्कार है। विचारना चाहीये कि, जो तीर्थंकरपणे २० विहरमान है, उनको तो नमस्कार करना युक्तियुक्त हो जायगा, परंतु जे ऋषभादि तीर्थंकरो, हो गये है, उनको नमस्कार, किस 'निक्षेपाको' मानके करेंगे?। जो 'द्रव्य निक्षेपाको' मानके नमस्कार करें तो, ढूंढनीने-मृतक शरीर पिछेसें निरर्थकपणा माना है। और दूसरा निक्षेपभी कोइ घटमान होई सकता नहीं। इस वास्ते 'नमोत्थुणंका' पाठ, और जे लोगस्स के पदमें-" अरिहंत कित्त इस्सं चउवीसंपि केवली " यह पाठ पढनेका है सोभी-निरर्थक हो जायगा? इस वास्ते शास्त्रकारने-जिस प्रमाणे निक्षेप माना है, उस प्रमाणे निक्षेपका स्वरूपको मानेंगे, तब ही 'अरिहंते कित्त इस्सं' यह पाठ और 'नमोत्थुणंकाभी' पाठ, सार्थक होगा। परंतु ढूंढनीजीके मन कल्पित-निक्षेपसें नमस्कारका लाभकी सिद्धि न होगी॥

॥ इति नमोत्थुणं पाठका विचार॥

॥ अब मूर्त्तिको धरके श्रुति लगानी नहि ॥

ढूंढनी-पृष्ट ६७ ओ ६ से-मूर्त्तिको धरके उसमें-श्रुति लगानी नहीं चाहीये.

समीक्षा-पाठक वर्ग ! इस ढूंढनीको, कोई मिथ्यात्वके उदयसे, केवल वीतरागदेवपर ही-परमद्वेष हुवा मालूम होता है ? नही तो ध्यानके अनेक आलंबन है. उसमेंभी-नासाग्र दृष्टियुक्त, और पद्मासन साहित, परम योगावस्थाकी सूचक, वीतरागदेवकी-मूर्त्ति, प्रथमही ध्यानका आलंबनरूप है. तोभी ढूंढनी-लिखती है के, मूर्तिको धरके--श्रुति लगानी नहीं चाहीये, कितना वीतरागदेव उपर द्वेष जागा है । नहीं तो देखो कि--समुद्र पालीको, चोरके बंधनोंको देखनेसे भी--धर्म ध्यानकी प्राप्ति हुई।और'प्रत्येक बुद्धियोंको' बेलादि देखके, धर्म ध्यानकी प्राप्ति हुई । यह सब तो ध्यानकी प्राप्तिके कारण हो जाय. मात्र वीतराग देवकी--मूर्त्तिको देखनेसे ढूंढनीके ध्यानका नाश हो जाय ? यह तो ढूंढनीको द्वेषका फल है उसमें दूसरे क्या करे ?

॥ इति मूर्त्तिमें श्रुति लगानेका विचार ॥

॥ अब सूत्रपाठकी-कुतर्कोंका, विचार करते है ॥

पाठक वर्ग ! ढूंढनीने-इहां तक जो जो--कुतर्कों किईथी, उसका सामान्य मात्र तो--उत्तर लिख दिखाया है, उससें मालूम हो गया होगा कि, ढूंढनी के वचनमें सत्यता कितनी है ? और इसीही प्रकारसें आगे सूत्रकारोंका लेखपैंभी, जो जूठा आक्षेप किया है, सोभी, स्वजन पुरुष तो समज ही लेंगे. परंतु अजान वर्ग तो भ्रं-

कितही रहेंगें ? वैसा समजकर, उनकी शंका दूर करनेके लिये, सूत्रपाठका खोटा--आक्षेपों पै, किंचित् मात्र--समीक्षा करके भी दिखला देते है. इससे यहभी मालूम हो जायगा कि, ढूंढको जैनाभास होके केवल जैनधर्मको कलंकित करणेवालेही है!सुज्ञेषु किमतिविस्तरेण.

॥ अव सूत्रोंमें मूर्त्तिपूजा नही ॥

ढूंढनी–पृष्ठ ६७ ओ १४ सें–सूत्रोंमें तो--मूर्त्तिपूजा, कहीं नहीं लिखी है, । यदि लिखी है तो हमें भी दिखाओ.

समीक्षा–पाठक वर्ग ! स्वमत, परमतके, हजारो पुस्तकोपर, 'जिन मूर्त्तिका' अधिकार--लिखा गया है. । और आज हजारो वरसोंसें, श्वेतांवर, दिगंवर, यह दोनोभी वडी शाखाके,--लाखों आदमी, पूजभी रहें है, । और कोई अवजोंके अवजोंका खरचा लगाके, संपादन किई हुई, करोडो 'जिन मूर्त्तिके' विद्यमान सहित, आजतक एकंदरके हिसावसें--छत्रीशहजार (३६०००) जिन मंदिरोंसे--पृथ्वीभी मंडित्त हो रही है । और यह ढूंढनीभी पृष्ट ६१ मेंलिखती है कि–हमनेभी वडे वडे पंडित, जो विशेषकर भक्ति अंगको मुख्य रखते हैं, उन्होंसें–सुना है कि,–यावद् काल ज्ञान नहीं, तावत् काल–मूर्त्तिपूजन हैं । और कई जगह–लिखाभी देखनेमें आया है । वेसा प्रथमही लिखके आई, और इहांपै लिखती है कि–सूत्रोंमें तो मूर्त्तिपूजा कहीं नहीं लिखी हैं, यादि लिखी होवें तो हमेंभी वताओ ॥ विचार करो अब इस ढूंढनीको हम क्या दिखावें ? क्यौंकि जिसके हृदयनेत्रोंमें वारंवार छाई–आजाती है, उनको दिखेगाभी क्या ? ॥ और जो मूलसूत्रोंमें–जिन प्रतिमा पूजनके प्रगटपणे साक्षात् पाठ है, उनकोंभी–कुतर्कों करके विगाडनेको, प्रवृत्त हुई है, तो अव इसको, हम किसतरां समजावेंगे ? हमारी

समीक्षा तो उसके वास्ते होंगी कि, जिसका-भव्यत्व निकट होगा; सोई पुरुष तीर्थंकरोंसे-विपरीत वचनपै, विश्वास न करें. और शुद्ध आचारण पै दृढ होवे.

इति सूत्रोंमें ' मूर्त्तिपूजा नहीका विचार ॥

॥ अव शाश्वती जिन प्रतिमाओंका विचार ॥

ढूंढनी-पृष्ट ६९ ओ. ९ से-देव लोकोंमें तो, अकृत्रिम अर्थात् शाश्वती, विन वनाई मूर्त्तियें, होती है, । और देवताओका ' मूर्त्तिपूजन ' करना-जीत व्यवहार, अर्थात्-व्यवहारिक कर्म होता है, । कुछ सम्यगूदृष्टि, और मिथ्यादृष्टियोंका-नियम नहीं है । कुल रूढिवत् । समदृष्टिभी पूजते है, मिथ्यादृष्टिभी पूजते है. ॥

समीक्षा-देवलाकमें जो इंद्रकी पदवीपर होते है सो तो, नियम करके-सम्यग् दृष्टिही होते हैं, वैसा शास्त्रकारने-नियम दिखाया है, । और वही इंद्रो, अपणा हित, और कल्याणको समजकर, शाश्वती जे ' जिन प्रतिमाओ ' (अर्थात् अरिहंतकी प्रतिमाओ) है, उनका-पूजन करते है । उसको ढूंढनी-कुल रूढीवत् व्यवहारिक कर्म कहती है. । भला-दुर्जनास्तुष्यंतु इति न्यायेन, तेरा मान्या हुवा, व्यवहारिकही कर्म, रहने देते है । हम पुछते है कि-करनेके योग्य व्यवहारिक कर्म, कुछ-हित, और कल्याणके वास्ते होता है या नही ? । तूं कहेगी कि-करनेके योग्य-व्यवहारिक कर्मसे, कुछ हित और कल्याणकी प्राप्ति, नही होती है, । वैसा कहेगी, तवतो, तूं जो मुखपै मुहपत्ति वांधके, हाथमें ओघा लेके-फिरती है सो । और श्रावकके कूलमें-रात्रिभोजन नहीं करना सोभी, व्यवहारिकही

कर्म है, उनकोभी–छुडानेकाही उपदेश करती होगी ? । और दो वख्त जो–आवश्यक क्रियादि, कर्तव्यको तूं करती है, सोभी नित्य कर्तव्य होनेसे–व्यवहारिकही कर्म रहेगा । और श्रावकोकों–जीव-हत्या नही करनी, यहभी तो श्रावकोकों कुलका–व्यवहारसेंही चली आती है. यह सब व्यवहारिक कार्यभी करनेके योग्य है, उसको क्या तूं–छुडानेका उपदेश करती है ? जो हमारा परम पूज-निक वीतरागदेवकी–मूर्त्तिका पूजनको, व्यवहारिक कर्म कहकर, भक्तजनोको भ्रममे गेरके–छुडानेके वास्ते शोर मचा रही है ?

तूं कहेगी कि–मुख पै मुहपत्तिका–बांधना, और हाथमें ओघा लेके–फिरना, यह तो आत्मिक धर्म है । और रात्रिभोजन श्राव-कोंको–नहीं करना, सोभी आत्मिक धर्मही है । वैसा कहेंगी तव तो, तेरा ही वचनसे–तेरेकु ही बाधक होता है. क्योंकि तूंही पृष्ट ६४ ओ. ४ से लिखती है कि–वहुत कहानी–क्या, ज्ञानका कारण तो, ज्ञानका अभ्यासही है । इस प्रकारका तेरे लेखसें तो–तत्त्वज्ञानके पिछेसेही–आत्मि धर्मकी प्राप्ति होनी चाहिये, तो पिछे मुहपत्ति और ओघा ही, तेरेको–आत्मिक धर्म कैसें करादेगा ? यहभी तो तेरा गुडियोंकाही खेल है ? तूंभी जवतक यह–व्यवहारिकरूप मुह-पत्ति, और ओघा–न छोडेगी तवतक कभीभी–ज्ञानिनी नहीं बनेगी? वैसे औरभी श्रावकोके–करणे योग्य–कर्त्तव्योका, विचारभी समज लेना । परंतु इस बातमें हम तो यह कहते है कि–जवतक रात्रि भोजन त्याग व्यवहार आदि, श्रावक कुलका आचार रहेगा, तवतक यह–जिन प्रतिमाका–पुजनभी अवश्यही रहेगा ? सोई–हित, और कल्याणकारी है । और तुंभी कहती है कि–समदृष्टिभी पुजते है, मिथ्या दृष्टिभी पुजते है । हमभी यही कहते है कि–मुहपात्ति, और ओघा समदृष्टिभी–रखते है. मिथ्यादृष्टिभी–रखते है । तुं क-

हेगीकि सोतो सब समदृष्टिही होते है, ऐसा-कहना, या ऐसा-मान लेना, सब-गलत है ॥ क्योंकि जैन धर्मकी क्रिया करनेवालेमेंभी--निश्चयसें तो सेंकडोंमें दो चार भी समदृष्टि मिलाना कठीन ही है ॥ वैसें श्रावकोंमेंभी-रात्रिभोजन त्याग, आदि क्रियाओंको, समदृष्टिभी करते है, मिथ्या दृष्टिभी करते है. सो क्या सब छुडाने के योग्य है ? तूं कहेगी कि यह सब-व्यवहारिक क्रियाओ-छुडाने के योग्य नही है. तो पिछे-जिनप्रतिमाका पूजनको, व्यवहारिकपणेका-आरोप रखके, छुडानेके वास्ते-द्वेषभाव कर रही है. सो तेरी-किस गतिके वास्ते होगा ? इत्यलं. विस्तरेण. ॥

॥ अब देवताओंका-नमो त्थुणंका, विचार ॥

ढूंढनी-पृष्ट ७० ओ. १३ सें-और नमोत्थुणं के पाठ विषयमें-तर्क करोंगे तो, उत्तर यह ह कि, पूर्वक भावसे मालुम होता है कि, देवता-परंपरा व्यवहारसे कहते आते है. ॥ भद्रबाहु स्वामी जीके पिछे; तथा बारावर्षी कालके पिछे-लिखने लिखानेमें-फरक पडा हो । अतः (इसी कारण) जो हमनें अपनी बनाई-ज्ञानदीपिका नामकी पोथी-संवत् १९४६ की छपी पृष्ट ६८ में-लिखाथा कि, मूर्त्तिखंडनभी हठ है, (नोट) वह इस भ्रमसे लिखा गयाथा कि-जो शाश्वती मूर्त्तियें हैं वह २४ धर्म्मावतारोंमेंकी हैं, उनका उत्थापकरूप-दोष लगनेके कारण; खंडनभी-हठ है, परंतु सोचकर देखा गया तो, पूर्वोक्त कारणसे-वह लेख ठीक नहीं । और प्रमाणिक जैन सूत्रोंमें-मूर्त्तिका पूजन, धर्म प्रवृत्तिमें, अर्थात् श्रावकके सम्यक्त्व व्रतादिके अधिकारमें, कहींभी नहीं चला इत्यर्थः--

समीक्षा-अब इहांपर ढूंढनीका-विचार देखो कि-पृष्ट. ६९

में-देवताओंका मूर्त्तिपूजन-व्यवहारिक कर्म, कुल रूढीवत्, कहकर दिखाया। और फिर कहाकि-सम्यग् दृष्टिभी पूजते है, मिथ्या दृष्टिभी पूजते है। अब इहां पै-नमोथ्थुणंका पाठ, शास्वती जिन-मूर्त्तियांके आगे, देवता-परंपरा व्यवहारसे कहते आते हैं, वैसा लिखके दिखाया। और इस लेखके-नीचेका भागमें-जैन सूत्रोंमें मूर्त्तिका पूजन, धर्म प्रवृत्तिमें, अर्थात् श्रावकके-सम्यक्त्व व्रतादिके अधिकारमें, कहींभी नहीं चला.॥ अब विचार यह है कि-समदृष्टि भी पूजते है, मिथ्या दृष्टिभी पूजते है। वैसा लेख ढूंढनीही-अपणी पोथीमें लिखती है, यहभी तो सूत्रमेंसेही लिखा होगा ?। तब कैसें कहती है कि-सम्यक्त्व व्रतादि अधिकारमें-मूर्त्ति पूजन कहीभी नही चला ?। विशेषमें तूं इतनाही मात्र-कह सकेगी कि-व्रताधिकारमें 'मूर्तिका पूजन' कही नही चला है। परंतु हे विमतिनी ! सम्यक्त्व विनाके ढूंढकोका, जो व्रत है सोतो, केवल पोकलरूपही है, और व्रतादि मेहलका पायारूप सम्यक्त्व है, उनकी दृढ भासिका कारण 'जिन मूर्तिका पुजनभी' है। किस वास्ते विपरीत तर्कों करके भोंदू लोकोंको जिन मार्गसें भ्रष्ट कर रही है ? हे ढूंढनी अपणे लेखमें-तूंही लिखती है कि-मूर्त्तिको सम्यग दृष्टिभी पुजते है. तो पिछे "नमोत्थुणं अरिहंताणं." इत्यादि यह उत्तम पाठभी पढनेका, उत्तम व्यवहारसेंही चला आया होगा ? तो यह परंपराभी उत्तमही होगी ? जैसे श्रावकके कुलमें, रात्रिभोजन त्याग, सामायिक, पोसह, करनेका परिपाठ है, और दो टंक आवश्यक क्रिया आदिक व्यवहारिक जो जो कर्म है, उनको, जबसे बालक अज्ञानपणेमें होता है, तबसेही उत्तमपणेका व्यवहारिक कर्तव्य जानके, सब प्रवृत्ति करनेको लग जाता है ! तूं कहेगी यह बालक तो सम्यक्त्वधारी है, तो अभी जिसको शरीर ढकनेकी तो खबरभी नही

है. उसको सम्यक्त्वधारी ते कहांसे बना देगी ? । जैसा यह उत्तम व्यवहारिक कर्म, श्रावकके कुलमें चला आता है. तैसें देवताकी परंपरासेभी-जिनमूर्त्तिका पूजन, और ' नमोत्थुणं अरिहंताणं ' आदि पाठका पढना, व्यवहारिक कर्मभी कहेंगी ? तोभी उत्तमपणाकाही कहा जावेगा ? वैसेही श्रावकके कुलमें-मूर्त्तिपूजनका व्यवहार, कहेंगी तोभी, यह तेरा खंडन करणेका प्रयत्न है सो तो, तेरा और आश्रितोके धर्मका-नाश करनेकाही प्रयत्न है ! इससे अधिक फलकी प्राप्ति कुछ न होवेगी ॥ और जो तूं अनुमान करती है कि-भद्रबाहु स्वामीजीके पिछे, तथा बारा वर्षी कालके पीछे-लिखने-लिखानेमे फर्क पडा हो ? यहभी तेरा अनुमान, भोले जीवोंको भ्रमानेकाही है । क्योंकि-आज हजारो वरस हुवा चला आता-जिन मूर्तिका पूजन, दिगंवर, श्वेतांबर, यह-दोनों समदायके, लाखो पुस्तकपर चढ गया हुवा है, उस पाठको लिखने-लिखानेका, फर्करूप अनुमान करती है ? हम पुछते है कि, सनातनपणेका. जैन धर्मसे दावा करनेवाले तेरे ढूंढको, कितने जैन पुस्तकोकी रचना करके, यह जूठा अनुमान कर गये है ? यह तेरे जैसे एक दो आधुनिक ढूंढकका किया हुवा-अनुमानतो, कोइ भोंदु, अथवा धर्मभ्रष्ट होगा, सोइ मान्य करेगा. परंतु विचक्षण पुरुष तो-विचारही करेगा.

और तूं लिखती है कि-मूर्त्ति खंडनभी हठ है, वह इस भ्रमसे-लिखा गयाथा कि, जो शाश्वती मूर्त्तियें हैं वह २४ धर्मावतारोंमें की हैं, उनका-उत्थापकरूप, दोष लगनेके कारण-खंडनभी हठ है, परंतु सोचकर देखागया तो, पूर्वोक्त कारणसें वह लेख ठीक नहीं ॥

पाठकवर्ग ! ढूंढनी कहती है कि, शाश्वती प्रतिमा २४ अवतारोंमें की जानकर-खंडन करणा, हठ मानाथा ? तो अब २४ अ-

वतारोंमें की नही है–इसका प्रमाण तो कुछ लिखा नही है ? और चोवीश अवतारोंकी " मूर्त्ति पूजनका " प्रमाण तो तेरा ही थोथा पोथामें--जगें जगें पर सिद्ध रूपही पडा है ।। प्रथम देख--पृष्ट. १४७ का सूत्र पाठ ।। जिण पंडिमाणं भंते, वंदमाणे, अच्चमाणे । हंता गोयमा, वंदमाणे, अच्चमाणे, इत्यादि ।। पृष्ट. १४८ सें तेराही अर्थ देख–हे भगवन् जिन पडिमाकी--वंदना करे, पूजा करे, हां गोतम--वांदे, पुजे ॥ यह तेरा ही लेखसे तीनो चोवीसीके–धर्माव-तारोकी–मूर्त्तिका पूजन सिद्धरूप, ही है ।।

और दूसरा प्रमाण भी देख--पृष्ट. ६१ में–तूंने ही लिखा है कि--वडे वडे पंडितोंसें सुना है कि--यावत्काल ज्ञान नही तावत्-काल–मूर्त्ति पूजन है ! और कइ जगह, लिखा भी देखनेमें आता है ।। यह लेख भी तो तेरा हाथसें ही–तूंनें लिखा है । केवल तूं विचार मूढ–हो गई है ।। और इनके सिवाय १ महा निशीथ सू-त्रका पाठ । २ उपाशक दशा सूत्रसें–आनंद काम देवादिक महा श्रावकका पाठ । और ३ उवाइ सूत्रसें–अंवड परिव्राजकका पाठ ।। ४ ज्ञाता सूत्रसें--द्रोपदी महा सतीजीका पाठ । और ५ भगवती सूत्रसें--जंघा चारणादिका पाठ ।। इत्यादि । जगे जगे पर तूंने लिखा हुवा, तेरा ही थोथा पोथामें--जिनमूर्त्तिका अधिकारको, प्रगटपणे दिखा रहा है परंतु कोइ मिथ्यात्वरूप–कमलाका रोग होनेसें, अब तेरेको–विपरीतरूप ही हो गया है, तो अव दोष के कारणंसे कैसे मिट जायगी ? हम अनुमान करते है कि, ढूंढनीको उत्तम प्रवृत्ति उठानेका तो भय–लेश मात्रभी नही है. परंतु उसव-ख्त श्री आत्मारामजी बावाका भयसें–वैसा लिखा होगा ?. अब वावाजीका भयभी छोडके, अनादि सिद्ध जिनमूर्त्तिका खंडन क-रनेको, प्रबल पापके उदयसें प्रवृति किई है. परंतु यह विचार न

किया कि, वावाजी तो चला गया है, परंतु वावाजीके मुंडे हुये-वावाजी तो वैठे है. सोभी यह मेरी कागजकी-गुडीयां, कैसें चलने देंगे ?

॥ इति मूर्त्तिपूजन-व्यवहारिक कर्मका, विचार ॥

॥ अब पूर्ण भद्रादि यक्षोंका-पूजन विचार ॥

ढूंढनी—पृष्ट ७४ ओ. ८ से-वह जो सूत्रोंमें-[1]पूर्णभद्रादि यक्षों के 'मंदिर' चले है सो, वह यक्षादि-सरागी देव, होते हैं। और वलिवाकुल आदिककी-इछा भी, रखते हैं। और रागद्वेषके प्रयोगसे-अपनी 'मूर्तिकी' पूजाऽपूजा देखके, वर, शराफ, भी देते है। ताते हर एक नगरके वहार-इनके 'मंदिर' हमेशांसे-चले आते है, सांसारिक स्वार्थ होनेसें। परंतु मुक्तिके साधनमें-मूर्त्तिका पूजन, नही चला। यादि जिनमार्गमें-जिनमंदिरका पूजना, सम्यक्त्व धर्मका लक्षण होता तो, सुधर्म स्वामीजी अवश्य सविस्तार प्रकट सूत्रोंमें, सर्व कथनोंको छोड, प्रथम इसी कथनको लिखते.

---

१ उव्वाईजीमें--पूर्णभद्र यक्ष के मंदिर, उसकी पूजाका, पूजाके फलका, धन संपदादिकी प्राप्ति होना, सविस्तर वर्णन चला है ॥ और अंतगडजीमें-मोगर पाणी यक्षके-मंदिर पूजाका, । हरिणगमेषी देवकी-मूर्त्तिका पूजाका । और विपाक सूत्रमें--ऊंवर यक्षकी-मूर्त्तिमंदिरका, और उसकी पूजाका फल-पुत्रादिका होना, सविस्तर वर्णन चला है ॥ यहभीः ढूंढनीकाही लेख. पृष्ट ७३ सें लिखा है ॥ और यह सर्व मूर्तियोंको, और मंदिरोंकोभी, "चैत्य" शब्द करकेहि, प्रायें-सूत्रोंमें लिखा गया है. जैसें कि-पुणभद्द चेइए इत्यादि.

समीक्षा--प्रथम इस ढूंढनीने--वैसा लिखाथा की, पथ्थरका--शेर, क्या मार लेता है ? और पथ्थरकी गौ क्या--दुध देती है ? वैसादृष्टांतोसे--मूर्त्तियोंका, सर्वथा प्रकारसें--निःफलपणा, प्रगट कियाथा. । अब इहां पै " पूर्णभद्र यक्ष " और " मोगर पाणी यक्ष " आदकी--पत्थरकी मूर्त्तियांका, पूजन करवानेका कहकर, अपणा सेवकोको, धन, दोलत, पुत्र, राज्य, आदि रिद्धि सिद्धिकी प्राप्ति करा देती है । मात्र वीतरागदेवकी मूर्त्तिका नजिक, इनके आश्रित जाते होंगे, तबही न जाने--बिमार पडजाती होगी ? या न जाने जिनप्रतिमाका पूजन अधिक हो जानेसे, जो पूर्णभद्रादि यक्षहै सो--अपणी पूजा, मानताका--कमीपणा देखके,इस ढूंढनीके अंगमे--प्रवेश किया हो ? और तीर्थंकरोंका, और गणधर महाराजाओंका, अनादर करानेके लीये, यह जिनमूर्त्तिका निषेधरूप--लेख, इस ढूंढनीकी पास लिखवाया हो ! क्योंकि जो विचार पूर्वक लेख होता तबतो--यह ढूंढनी सामान्यपणेभी--इतना विचार तो, अवश्यही करती कि--जब पूर्णभद्रादि यक्षोंकी--पत्थररूप मूर्त्तियोंकी--प्रार्थना, भक्तिसें--पुत्र, धन, दोलत, राज्य रिद्धि आदिक ते यक्षादिक देवताओ, दे देतेथे, वैसा शास्त्र सम्मत है, तब क्या वीतरागदेवकी मूर्त्तियोंका भक्तिभाव देखके; जो वीतराग देवके भक्त--सम्यक्त्व धारी देवताओंहै सो, प्रसन्न हो के--हमारा इस लोकका दुःख, दालिद्रादि । तथा आधि, व्याधिभी, दूर करके अवश्य परलोकमेंभी--सुखकी प्राप्ति करानेके, कारणरूप होतें । और परंपरासे अवश्यही--मोक्षकी प्राप्तिभी हमको होजाती । क्योंकि मनुष्यको दुखादिकमेंही--अकर्त्तव्य करनेपर लक्ष हो जाता है ? उस अकर्त्तव्योकाही--नरकादिक फल भोगने पडते है । फिर वहुत कालतक--संसार परिभ्रमणभी करना पडता है । जब हमको दुःख, दालिद्र, आधिव्याधि सर्वथा

प्रकारसे न रहेगी। तब हम--दान, दया, शील, तप, भाव आदि मेभी--अधिक अधिक प्रवृत्ति करके, हमारा आत्माको--अनंत दुःखकी जालमेंसेभी--छुडानेको समर्थ, हो जायगें। एक तो वीतरागदेवकी भक्तिकाभी--लाभ होजायगा, और हमारा आत्माभी--अनंत दुःखकी जालसे सहज छुट जायगा। इतना सामान्य मात्रभी विचार करके, ढूंढनी--लेख लिखनेको प्रवृत्ति करती तब तो, तीर्थंकर गणधर महाराजाओंका, अघोर पातक रूप--अनादर, कभी न करती, वैसा हम अनुमान करते है। परंतु क्या करेंकि--जिसके अंगमें--यक्ष राक्षसोका, अथवा मिथ्यात्वरूप भूतका, प्रवेश हो जाता है, तब, पराधीनपणे--उस जीवके वशमें, कुछ नहीं रहता है, तो पिछे विचार ते कहांसे आवे! क्योंकि जिस--' चैत्य ' शब्द करके--पूर्ण भद्र, मोगरपाणी, यक्षोंके विषयमें--मूर्त्ति मंदिरका अर्थ करती है, उसी ' चैत्य ' शब्दका अर्थ--अरिहंतके विषयमें--जब जिस जिस शास्त्रमें आता है, तब यह ढूंढ पंथिनीढूंढनी प्रत्यक्षपणे लिखा हुवा मंदिर मूर्त्तिका अर्थको छुपानेके लिये, अगडंवगडं--लिख मारती है.। इसी वास्ते हम अनुमान करते है कि, ' यक्ष ' या ' मिथ्यात्वरूप ' महा भूतका प्रवेश हुये विना, ऐसा--अति विपरीत पणेका आचरण, क्यौं करती, ? और देखोकि--एक तो अपणा आत्माको, और अपणे आश्रित सेवकोका--आत्माको, वीतरागदेवकी भक्तिसे--दूर करके, और सेवकोंको धनादिककी लालच दिखाके, यक्षादि मिथ्यात्वदेवके वशमे करनेको, यह अघोर दुखका पायारूप--ग्रंथकी, रचनाभी क्यौं करती? " अहो कर्मणो गहना गतिः "॥ और यक्षादिकोंकी जो मूर्ति--पत्थररूपकी है, उनकी प्रार्थनासे, धन पुत्रादिककी प्राप्ति होनेका लिखके, नीचेके भागमे यों लिखती है कि--जिन मंदिरका पूजना, सम्यक्त्व धर्मका--लक्षण होता तो, सुधर्मस्वामीजी--अवश्य

सविस्तार लिखते। अव इस विषयमें ढूंढनीको हम क्या लिखें-- क्यौंकि-जिन प्रतिमापूजनका लेख--दिगंबर, श्वेतांबरके, लाखो शास्त्रोंमें हो चुका है, और पृथ्वीभी-हजारो वरसोंसें, जिन मंदिरोसें-मंडितभी हो रही है, तोभी यह ढूंढनी--अखीयां भींचके, लिखती है कि, सम्यक्त्व धर्मका लक्षण होता तो, सुधर्मस्वामीजी अवश्य लिखते ? अव ऐसें निकृष्ट आचरणवालेको, हम किसतरें समजानेको सामर्थ्यपणा करेंगे ? इत्यलंविस्तरेण.

॥ अव गणधरोंका लेखमें भी--अधिकताका, विचार ॥

ढूंढनी—पृष्ट. ७९ ओ. ७ सें--हम देखते हैं कि, सूत्रोंमे ठाम २, जिन पदार्थोंसे--हमारा विशेष करके, आत्मीय--स्वार्थभी सिद्ध नहीं होता है, उनका विस्तार--सैंकडे पृष्टोंपर--लिखधरा है--पर्वत, पहाड, वन वागादि ॥ पुनः 'पृष्ट. ७८ से--परंतु--मंदिर मूर्त्तिका विस्तार, एक भी प्रमाणीक--मूलसूत्रमें, नहीं लिखा. ॥

समीक्षा—पाठक वर्ग ! यह ढूंढनी क्या कहती है ! देखो कि--सूचनमात्र सूत्रको, सूत्रका तो--मान देती है। फिर कहती है कि--आत्मीय स्वार्थभी--सिद्ध नहीं होता है, उनका--विस्तार, सैंकडे पृष्टों पर, गणधर महाराजाओने लिखधरा है। वैसा कहकर--अपणी पंडितानीपणाके गमंडमें आके--तीर्थंकरोंको, तथा गणधर महापुरुषोंकोभी--तिरस्कारकी नजरसे, अपमान करनेको--प्रवृत्त हुई है। वैसी ढूंढनीको--क्या कहेंगे ? क्यौंकि सूत्रमें तो एक 'चकार, मात्रभी रखा गया होता है. सोभी अनेक अर्थोंकी सूचनाके लिये ही रखा जाता है वेसें महा गंभीरार्थवाले—जैन सूत्रोंका लेखको, सैंकडे पृष्टोंतक--निरर्थक ठहराती है ? अरे विना गुरुकी ढूंढनी ! गणधर महाराजाओंके लेखका रहस्य, तुजको समजमें आया होता तो--वैसा लिखतीही क्यौंकि, हमारा स्वार्थकी सिद्धिं

नही होती है ? इहांपरही तेरी–पंडितानीपणा, वाचकवर्ग समज लेवेंगे ? हम कुछ विशेष लिखते नही है। और जों तूं लिखती है कि-मंदिर मूर्तिका विस्तार एकभी–प्रमाणिक सूत्रमें, नहीं लिखा, सोतो तेराही लेखसें तेरी अज्ञता सिद्ध करके दिखा देवेंगे. ॥

॥ इति सूत्रोंका लेखमेंभी–अधिकताका, विचार ॥

॥ अब वहवे अरिहंत चेइय प्रक्षेपका विचार ॥

ढूंढनी–पृष्ट. ७७ में. " वहवे अरिहंत चेईय. " (यह प्रश्नके उत्तरमें) लिखती है कि, यादि किसी २ प्रतिमें, यह पूर्वोक्त पांठभी है, तो वहां ऐसा लिखा है कि--पाठांतरे। अर्थात् कोई आचार्य ऐसे कहते है. एसा कहकर–प्रक्षेप, पणाकी सिद्धि कीइ है. ॥

समीक्षा–हे पंडितानी ! पाठांतरका अर्थ *तूंने प्रक्षेपरूपसें समजा ? क्योंकि–उवाईजीमे तो प्रथम–' आयारवंतचेइय १, इनके वदलेमें यह " वहवे अरिहंतचेइय २, पाठांतर करके लिखा है. परंतु केवल–प्रक्षेपरूप नही है. और दोनों पाठोंका अर्थभी एकही जगे आके मिलता है. । प्रथम पाठका अर्थ यह है कि–आकारवाले अर्थात् सुंदर आकारवाले, वा आकार चित्र देवमंदिराणि यह अर्थ होता है। और दूसरे पाठसे–वहुत अरिहंतके मंदिरां, वैसा खुला अर्थ होता है। उस पाठको तूं प्रक्षेपरूप कहती है ? परंतु

---

* देख तेरी थोथीपोथीमें- इतरिये (थोडा) पृष्ट ९ में ॥ मांडले (नकसा) पृष्ट ३९ में ॥ न्हु (वेटेकी वहु) ऐसा तूंने जगें २ पर लिखाहै सो पाठ क्या 'प्रक्षेप' रूप के है ? ॥

प्रक्षेपपाठ किसको कहते है, और पाठांतर किसको कहते है, यहभी तेरी समजमें कहांसे आवेगा ? केवल मिथ्यात्वके उदयसे प्रगटपणे-मंदिरोका पाठोंको, उत्थापन करनेके लिये प्रयत्न करती है ।। परंतु शोच नहीं करती है कि--हम ढूंढको सनातनपणेका तो दावा करनेको जाते है, और प्रतिमापूजन निषेधका पाठ तो एकभी सूत्रसे दिखा—न सकते है, और मंदिरोंके जो जो पाठ सूत्रोंमें है. और जिस मंदिरोंकी सिद्धि रूप पाठोंके हजारो शास्त्रों तो साक्षीभूत हो चुके है. और पृथ्वी माताभी—जिनमंदिरोकों गोदमें बिठाके, साक्षी दे रही है. उन पाठोंकी उत्थापना करनेको हम प्रयत्न करते है. सो तो वीतरग देवकी महा आशातना करके अधिकही हमारा आत्माको संसारमें फिरानेका प्रयत्न करते है. इतना विचार नहीं करती है. उनको अधिक—हम क्या कहेंगे ?

॥ इति प्रक्षेप पाठका विचार ॥

॥ अब अंबडजी श्रावकके—पाठका विचार ॥

ढूंढनी—पृष्ट. ७८ । ७९ में--उवाईजीका पाठ--" अम्मडस्सण परिव्वायगस्स, णोकप्पई अणउत्थिएवा, अणउत्थिय देवयाणि वा, अणउत्थिय परिग्गहियाणि वा अरिहंते चेइयंवा, वंदित्तएवा, नमंसित्तएवा, जावपज्जुवासित्तएवा, णण्णत्थ अरिहंते वा, अरिहंत चेइयाणिवा "

॥ ढूंढनीकाही अर्थ. लिख दिखाते है--अम्बडनामा परिव्राजकको (णोकप्पई) नहीं कल्पे. (अणुत्थिएवा) जैन मतके सिवाय अन्ययुत्थिक शाक्यादि साधु १ । (अण:) पूर्वोक्त अन्ययु-

स्थिकोंके माने हुये देव, शिवशंकरादि २। (अन्नउत्थिय परिग्गहियाणिवा अरिहंतचेइय) अन्यउत्थिओंमेंसे किसीने (परिग्गहियाणि) ग्रहन किया (अरिहंतचेइय) अरिहंतका—सम्यक् ज्ञान, अर्थात् भेखतो है परिव्राजक, शाक्यादिका, और सम्यक्त्व व्रत, वा अणु व्रत, महाव्रत रूप, यह अंगीकार किया हुआ है जिनाज्ञानुसार है। इनको (वंदित्तएवा) वंदना (स्तुति) करनी (नमंसित्तएवा) नमस्कार करनी. यावत् (पज्जुवासित्तएवा) पर्युपासना (सेवाभक्तिका करना) नहीं कल्पै ! पृष्ठ ७९ ओ. १४ से. लिखतीहै कि, नया क्या इस पाठका यही अर्थ यथार्थ है.

समीक्षा—पाठकवर्गों ! इस ढूंढनीजीका हठ तो देखो कितना है कि—जो इसने अर्थ किया है, सो अर्थ नतो टीकामें है, और नतो टब्बार्थमें—कोइ आचार्यने किया है. ॥ और (पज्जत्य अरिहंतेवा, अरिहंत (चेइयाणिवा) इस सूत्रका अर्थको छोडके, केवल मनोकल्पित अर्थ करके कहती है कि, नया क्या इस पाठका यही अर्थ यथार्थ है। ऐसा कहती हुई को कुछभी विचार मालूम होता है ? हे सुमतिनी भगवंतने अनर्थ करनेको, ईसिने साक्षात् ठेके लेली है ? कि, जो आजतक हो गये हुये भाष्यकार, टीकाकार, टब्बाकार, यह सर्व जैन आचार्योंसे निरपेक्षहोके, अनर्थ करके कहती है कि—इस पाठका यही अर्थ यथार्थ है. देखो क्या कोईभी पुछने वाला न रहा है, कि, हे ढूंढनीजी यह अर्थ जो आप करते हो सो किस प्रमाणिक ग्रंथके आधारसे करतेहो ? इतना मात्र भी कोई गुरु, संसार भ्रमनका भयसे, पुछने वाला होता तो, तेरी क्या जातीथी क्या ताकातथी जो मन कल्पितपनेसे इतना अनर्थ कर सकती ? परंतु कोई गुरु पुछनेवाला ही इसको दिखता नहीं है ॥ अब इस पाठका अर्थ सर्व जैन महा पुरुषोंकासम्मत यथार्थ क्या

प्रक्षेपपाठ किसको कहते है, और पाठांतर किसको कहते है, यहभी तेरी समजमें कहांसे आवेगा ? केवल मिथ्यात्वके उदयसे प्रगट-पणे–मंदिरोका पाठोंको, उत्थापन करनेके लिये प्रयत्न करती है ॥ परंतु शोच नही करती है कि--हम ढूंढको सनातनपणेका तो दावा करनेको जाते है, और प्रतिमापूजन निषेधका पाठ तो एकभी सू-त्रसे दिखा–न सकते है, और मंदिरोंके जो जो पाठ सूत्रोंमें है. और जिस मंदिरोंकी सिद्धि रूप पाठोंके हजारो शास्त्रों तो साक्षीभूत हो चुके है. और पृथ्वी माताभी–जिनमंदिरोकों गोदमें बिठाके, साक्षी दे रही है. उन पाठोंकी उत्थापना करनेको हम प्रयत्न करते है. सो तो वीतरग देवकी महा आशातना करके अधिकही हमारा आ-त्माको संसारमें फिरानेका प्रयत्न करते है. इतना विचार नही करती है. उनको अधिक–हम क्या कहेंगे ?

॥ इति प्रक्षेप पाठका विचार ॥

॥ अव अंबडजी श्रावकके–पाठका विचार ॥

ढूंढनी—पृष्ठ. ७८ । ७९ में--उवाईजीका पाठ--" अम्मड-स्सण परिव्वायगस्स, णोकप्पइ अणउत्थिएवा, अणउ-त्थिय देवयाणि वा, अणउत्थिय परिग्गाहियाणि वा अ-रिहंते चेइयंवा, वंदित्तएवा, नमंसित्तएवा, जावपज्जुवा-सित्तएवा, णण्णत्थ अरिहंते वा, अरिहंत चेइयाणिवा "

॥ ढूंढनीकाही अर्थ. लिख दिखाते है--अम्बडनामा परिव्राज-कको (णोकप्पई) नहीं कल्पे. (अणुत्थिएवा) जैन मतके सि-वाय अन्ययुथिक शाक्यादि साधु १ । (अणः) पूर्वोक्त अन्ययु-

त्थिकोंके माने हुये देव, शिवशंकरादि २ । (अणउत्थिय परिग्गहियाणिवा अरिहंतचेइय) अन्यउत्थिकोंमेंसे किसीने (परिग्गहियाणि) ग्रहण किया (अरिहंतचेइय) अरिहंतका–सम्यक् ज्ञान, अर्थात् भेषतो है परिव्राजक, शाक्यादिका, और सम्यक्त्व व्रत, वा अणु व्रत, महाव्रत रूप, धर्म अंगीकार किया हुआ है जिनाज्ञानुसार ३ । इनकी (वंदित्तएवा) वंदना (स्तुति) करनी (नमंसित्तएवा) नमस्कार करनी, यावत् (पज्जुवासित्तएवा) पर्युपासना (सेवाभक्तिका करना) नहीं कल्पै ! पृष्ट ७९ ओ. १४ में. लिखतीहै कि, नया क्या इस पाठका यही अर्थ यथार्थ है.

समीक्षा–पाठकवर्ग ! इस ढूंढनीजीका हठ तो देखो कितना है कि–जो इसने अर्थ किया है, सो अर्थ नतो टीकामें है, और नतो टब्वार्थमें–कोइ आचार्यने किया है. ॥ और (णण्णत्थ अरिहंतेवा, अरिहंत (चेइयाणिवा) इस सूत्रका अर्थको छोडके, केवल मनोकल्पित अर्थ करके कहती है कि, नया क्या इस पाठका यही अर्थ यथार्थ है । ऐसा कहती हुई को कुछभी विचार मालूम होता है ! हे सुमतिनी प्रगटपणे अनर्थ करनेको, ईश्वरने साक्षात् तेरेकुं भेजी है ? कि, जो आजतक हो गये हुयें भाष्यकार, टीकाकार, टब्वाकार, यह सर्व जैन आचार्योंसे निरपेक्षहोके, अनर्थ करके कहती है कि–इस पाठका यही अर्थ यथार्थ है, तेरेको क्या कोईभी पुछने वाला न रहा है, कि, हे ढूंढनीजी यह अर्थ जो आप करते हो सो किस प्रमाणिक ग्रंथके आधारसे करतेहो ? इनता मात्र भी कोई सुज्ञ, संसार भ्रमनका भयसें, पुछने वाला होता तो, तेरी स्त्री जातीकी क्या ताकातथी जो मन कल्पितपणेसे इतना अनर्थ कर सकती ? परंतु कोई सुज्ञ पुछनेवाला ही हमको दिखता नही है ॥ अब इस पाठका अर्थ सर्व जैन महा पुरुषोंकोसम्मत यथार्थ क्या

है, सो, और इस ढूंढनीका मरोड क्या है सो भी, किंचित् लिख कर दिखावतेहै–यथा पाठार्थ–अंबडपरिव्राजकको न कल्पें, अन्यतीर्थीक (शाक्यादिक साधु) अन्यतीर्थीके देव (हरिहरादि) अन्यतीर्थीने ग्रहण किये हुये अरिहंतचैत्य (जिनप्रतिमा) को–वंदना, नमस्कार करना, परंतु अरिहंत और अरिहंतकी प्रतिमाकों वंदना नमस्कार करना कल्पे. इति पाठार्थ. ॥ अब ढूंढनीका मरोड दिखावते है कि–(अएणउत्थिय परिग्गहियाणिवा अरिहंत चेइयंवा) इस पाठका अर्थ, अन्यतीर्थीने ग्रहण किई जिन प्रतिमाका है. उसका ढूंढनी अर्थ करती है कि–अन्य यूत्थिकोंमेंसे किसीने ग्रहण किया अरिहंतका सम्यक् ज्ञान, अर्थात् भेपतो है परिव्रजाक, शाक्यादिक, और सम्यक्त्व व्रतवा अनुव्रत रूप धर्म, अंगीकार किया हुवा है जिनाज्ञानुसार. यह अर्थ करके. ! पाठके अंतपदका जो.–अरिहंत, और अरिहंतकी प्रतिमाको, वंदन, नमस्कार करना, कल्पे, इस प्रतिज्ञाकरने रूप पदका अर्थको छोडदेके, जिसका कुछ भी संबधार्थ नहीं, है, वैसा अगडं बगडं लिखके अपणी सिद्धिक–

रनेको. ८० । ८१ । ८२ । ८३ । पृष्ट तक—कुतोकोंसे फोकटका पेट फुकाया हे । इससें क्या विपरीतपणाकी सिद्धि होयगी! सिद्धि न होगी; परंतु तेरेको, और तेरा वचनको अंगीकार करने वालोंको, वीतराग देवके वचनका भंग रूपसें, संसारका भ्रमण रूप फलप्राप्तिकी, सिद्धि हो जावे तो हो जावो ! परन्तु जिनप्रतिमाका नास्तिक पणाकी सिद्धितो तेरा किया हुवा विपरीतार्थसे कभीभी न होगी ॥

ढूंढकीनी पृष्ट. ८३ ओ. १४ (णण्णत्थ अरिहंतेवा अरिहंतचेइयाणिवा) पूर्व पक्षमें लिखके–पृष्ट. ८४ के उत्तर पक्षमें अर्थ लिखती है । यथा–(णण्णत्थ) इतना विशेष, इनके सिवाय और

कीसीको नमस्कार नहीं करूंगा, किनके शिवाय (अरिहंतेवा) अरिहंतजिको (अरिहंतचइयाणिंवा) पूर्वोक्त अरिहंत देवजीकी आज्ञानुकूल संयमको पालनेवाले, चैत्यालय, अर्थात् चैत्य नाम ज्ञान, आलय नाम घर, ज्ञानकाघर अर्थात् ज्ञानी. (ज्ञानवान् साधु) गणधरादिकों को वंदना करूंगा, अर्थात् देव गुरुको । देव पदमें-अरिहंत, सिद्ध, गुरुपदमें, आचार्य, उपाध्याय, मुनि इत्यर्थः॥

फिर-पृष्ट ८९ ओ ९ से-अब समजनेकी बात है कि-श्रावकने, अरिहंत, और अरिहंतकी मूर्त्तिको, वंदना करनी तो आगार रखी । और इनके सिवा सबको वंदना करनेका त्याग किया। तो फिर-गणधरादि: आचार्य, उपाध्याय, मुनियोंकों, वंदनाकरनी बंदहुई ॥ क्योंकि देवको तो-वंदना, नमस्कार. हुई, परंतु गुरुको वंदना नमस्कार करनेका त्याग हुआ । क्यौं कि-अरिहंत भी देव, और अरिहंत की मूर्त्ति भी देव, तो गुरुको वंदना किस पाठसे हुई । ताते जो प्रथम हमने अर्थ किया है वही यथार्थ है ।

समीक्षा—पाठक वर्ग ! आत्माराम तो विचारा संस्कृत पढा हुआथा ही नही. वैसा. पृष्ट २१ में-ढूंढनीने लिखाथा सो क्या सत्य होगा, ? क्योंकि सम्यक्त्व शल्योद्धारमें—(अरिहंतेवा, अरिहंत चेइयाणिवा) इसका अर्थ-अरिहंत, और अरिहंतकी प्रतिमा, इतना किंचित् मात्रही अर्थ दिखाया । और, इस ढूंढनीने तो, ढूंढढूंढ कर अर्थात् मेंसेंभी अर्थात् निकाल निकालकरके गूढार्थको दिखाया, कि-जो जैनमतमें आजतक लाखो आचार्य हो गये उसमेंसे किसीनेभी नहीपाया । धन्यहै ढूंढनीकी ' धनगरी, माताको कि-जिसने ऐसी पुत्रीको जन्म देदिया । इसीवास्ते कहती है, के-अरिहंत, और अरिहंतकी प्रतिमाका-अर्थ करें तो, गुरुको वंदना नमस्कार, करनेका त्याग हुआ । क्योंकि-अरिहंत भी देव, और

अरिहंतकी-मूर्तिभीदेव, तो गुरुको-वंदना किसपाठसे हुई। ताते हमने-अर्थ किया, वही यथार्थ है। हे सुमतिनी! तूं अपणे सेवकोंमें-सर्वज्ञपणेका, डोलतो दिखाती है, परंतु इतना विचारभी-नही करती है, कि-जब अन्ययूथिक शाक्यादिक-साधुको, वंदना, नमस्कार, करना-नही कल्पें तो, जैन के-साधुको तो, वंदना, नमस्कार, करनेका अर्थापत्तिसे ही-सिद्धरूप, पडाहै. इसवास्ते यह-तेरालेख, सर्व आचार्योंसें-निरपेक्ष रूप होनेसें, तेरेकों, और तेरे आश्रितों को-बाधक रूप होगा, परंतु-साधक रूप, न होगा। इत्यलं ॥

॥ इति अंबडजी श्रावकके, पाठका विचार ॥

॥ अब आनंद श्रावकजीके सूत्र पाठका विचार ॥

ढूंढनी-पृष्ठ. ८७ सें—आनंद श्रावकके विषयका पाठ लिखके. पृष्ट ८९ ओ. ३ से लिखतीहै कि-संवत् ११८६ की लिखी हुई-उपाशक दशासूत्रकी, ताडपत्रकी प्रतिमें ऐसा पाठ सुना है (अण्णउत्थिय परिग्गहियाइं चेइया) परंतु (अरिहंत चेइयाइं) ऐसे नही है। यह पक्षपातीयों ने-प्रक्षेप, किया है ॥

समीक्षा-हे ढूंढनी? यह ११८६ के सालका ताडपत्रका पुस्तक है, वैसा-सुना है, परंतु तूंने-देखा तो, है नही, तो पिछे यह पाठका-फर्क कैसें लिख दिखाया? तूं कहेगीके-ए. एफ रुडोल्फ हरनल साहिबके लेखके अनुमानसें-लिखती हुं। तो भी इस पुस्तकका अनुमान-उस पुस्तकपै, कभी नही होसकता है। खेर जो तूं-साहिबके लेखसे भी, विचार करेंगी तो भी-तेरी जूठी कल्पनाकी-सिद्धि तो, कभी भी होने वाली नही है। क्यौं कि, जो

तूं (अण्ण उत्थिय परिग्गाहियाइं, चेइयाइं,) इतना पाठ मात्र कोभी मान्यरखेगी, तोभी-आनंद-काम देवादिक महान्-श्रावको होनेसे, प्रत्याख्यानके अवसरमें-न कल्पें अन्ययूथिका, (शाक्यादि साधु) और अन्य यूथिक-देवतानि, (हरि हरादि देवों) अब (अण्णउत्थियपरिग्गाहियाइं, चेइयाइं,) इसमें-अरिहंत शब्दको, न मानेगी, तोभी-हरि हरादि देवोंका प्रथमही निषेध हो जानेके संबधमें यह चेइयाइं पाठसें, अन्ययूथिकोंने-ग्रहण किई हुई-जिनप्रतिमाका ही-अर्थ, निकलेगा, और उसको ही-वंदना, नमस्कार, करनेका-नियम, ग्रहण किया है ॥ परंतु तेरा-मनः कल्पित जो, अन्य यूथिकोमेंसे, किसीने-ग्रहण किया, अरिहंतका-सम्यक् ज्ञान, अर्थात् भेपतो है-परिव्राजक, शाक्यादिकका, और सम्यक्त्वव्रतवा, अनुव्रतरूपधर्म अंगीकार किया हुवा है-जिनाज्ञानुसार, यह-वे संबध, लंबलंबायमान, अगडं बगडं रूप अर्थकी, सिद्धि तो तीनकालमें भी-नहीं होती है ॥ काहेको फुकटका प्रयास लेके और वीतराग देवकी, आशातना करके पापका-गठडाको, शिरपर-उठाती है ?

॥ इति आनंद श्रावकजीके-सूत्रपाठका विचार ॥

॥ अव द्रौपदीके विषयमें- कुतर्कोंका, विचार ॥.

ढूंढनी—पृष्ठ ९१ ओ. ५ से—क्या जिनमंदिर के पूजने वालों के घर--मद, मांसका--आहार, होता है, अपितु नहीं, तो सिद्ध हुवा कि--द्रोपदीने, जिनेश्वर का--मंदिर, नहीं पूजा. ॥

फिर पृष्ट. ९४ ओ. १९ से—बहुधा यह--सुनने, और, देखनेमें भी -आया है कि, अनुमानसे ७।७०० सैंवपों, के लिखितकी श्री ज्ञाता धर्मकथा, सूत्रकी प्रतीहै, जिसमें--इतनाही पाठहै, यथा-: तएणं सा दोवइ रायवर कन्ना, यावत् जिनघर मणु पविस इ २ त्ता, जिन पडिमाणं--अच्चणं, करे इ २ त्ता) बस इतनाही पाठहै. । और नई प्रतियोंमें, विशेप करके तुमारे कहे मुजब-पाठहै, तांते सिद्धहोताहै कि-मिलाया गया है. इत्यादि ॥

फिर पृष्ट ९६ ओं. २ सें--साबूतीयह है कि-प्रमाणिक सूत्रोंमें, तीर्थंकर देवकी-मूर्ति पूजाका, पाठ नही आया. । द्रौपदीने भी धर्म पक्षमें-मूर्ति नहीं पूजी, ॥ दूसरी सावूती—तुह्मारे माने हुये पाठमें-सूरयाभ देवकी—उपमा, दी है, परतु श्राविकाको श्राविकाकी—उपमा, नदी. ॥

फिर पृष्ट ९७ ओ. १ से—किसी श्रावक, श्राविकाने—मूर्ति, पूजी होती तो—उपमा, देते ॥ जैसें—देवते, पूर्वोक्त जीत व्यवहारसें—मूर्ति, पूजतेहै । ऐसेही—द्रौपदीने, संसार खातेमे—पूजीहोगी ॥

फिर पृष्ट ९८ ओ. ३ सें—यहां संवंध अर्थसे—जिनप्रतिमाका अर्थ—कामदेवका—मंदिर, मूर्ति—संभव, होता है ॥

ओ १० से--विवाह केवक्त--वरहेतु, कामदेवकी--मूर्ति, पूजी होगी ॥

समीक्षा—हे ढूंढनी ! द्रोपदीने—मद, मांस—खाया, वैसा कहां—

लिखा है, जो तूं महासतीकों--जूठा कलंक देके, जिन मूर्तिका पूजन--निषेध, करती है ? । क्यौंकि-पंजाबखाते, वर्त्तमानमेंभी, क्षत्रियोंमें-मांसादिककी, प्रवृत्ति होतीहै, और स्त्रीयों तो-छूतीभी, नहीहै, उनके घरका आहार तेरेको और दूसरे ढूंढको भी लेनाही पडता है तोपीछे जैनमतको धारणकरके क्यों फिरते हो ? । इस-वातसे-द्रौपदीको कलंकित, न कर सकेगी और, सातसो वर्षके प-हिलेकी-ज्ञाताधर्मकथा, लिखी हुईहै, वैसा-सुनकर, देखेविना उस कापाठ-कैसे लिखदिखाया ? और सनातन धर्मका दावा करने-वाले-तेरे ढूंढको, ते ज्ञाता सूत्रकापाठ-लिखदिखानेको, कौनसी-निद्रामें पडेथे, जो लिखके--दिखाभी न गये ? क्या तूंही उनोंका उद्धार करनेको--जन्मी पडीहै, जो हजारो 'ज्ञाता धर्मकथाके, पु-स्तकोंमें-प्रचलित पाठको, नया मिलाया गयाहै वैसा कहतीहै, ॥

हे ढूंढनी ! ज्ञाताधर्म कथाका पाठतो, यह नया--नही मिलाया गयाहै, परंतु तुम ढूंढकोही-विना गुरुके मुंडेहुये, नवीन रूपसे--पे-दाहोगये हो, सो, थड मूलविना--यद्वातद्वा, बकवाद--करतेहो, परंतु यह हद उपरांतका तेरा जूठ, मूढविना दूसरा कौन मानेगा?॥ और-तूं साबूतीदेती हैकि--सूत्रोंमें, तीर्थंकर देवकी--मूर्तिपूजाका, पाठ नही आया, सो तो तुमको, कुछ--दिखताही नही तो दूसरा-कोई क्या करें ? क्यौंकि, पुण्यात्मा पुरुषोतो--तुमेरे जैसेंको, दिखा-नेकेलिये--करोडो, वलकन अब्जो, रूपैयेका--व्ययकरके, सूत्रोंका पाठकी--साबूती करनेको, हजारो 'जिनमंदिरोंसे' यह पृथ्वी भी--मंडितकरके, चले गयेहै । और धर्मात्मा--पूजतेभीहै । तोपिछे तूंकि-स वास्ते पुकार करतीहै कि--द्रौपदीने, धर्मपक्षमें-मूर्ति नहीं पूजी, तो क्या-अधर्मके वास्ते पूजीथी ? जोतूं ऐसा जूठा अनुमान कर रही है ?

और दूसरी साबूतीमें--ढूंढनी, कहती है कि--सूरयाभ देवने--पूजाकरी, ऐसें--द्रौपदीने करी, वैसें देवकी--उपमा, दीहै, परंतु श्राविकाको श्राविकाकी उपमा--नही दीई है। हे सुमतिनी! क्यां इतनाभी भावार्थ तूं समजी नही? देख इसका--भावार्थ, यह है कि--तुमेरे जैसें जो शाश्वती-जिन प्रतिमाको, मानके--कृत्रिम, अर्थात्--अशाश्वती, जिनप्रतिमाका लोप करनेका--प्रयत्न कररहे है, उनका--हृदय नयन, खोलनेकेलिये, यह--सूर्याभ देवकी--उपमा, दीई है। जैसे--देवताओं सदाकाल 'शाश्वती जिनप्रतिमाका' पूजनसे, अपणा भवोभवका-हित, और कल्याणकी-प्राप्ति, करलेते है, तैसे ही--श्रावक श्राविकाओंकोभी--अरिहंतदेवकी--मूर्त्तिका, पूजन, सदाकाल करके, भवोभवका--हित, और कल्याणकी प्राप्ति, अवश्य ही करलेनी चाहिये, इस भावको--जनानेके लिये ही, यह सूरयाभ देवताकी--उपमा, दीहै। जैसें--दश वैकालिककी, आद्य गाथामें कहाहै कि--**देवावि तं नमंस्संति जस्स धम्मे सया मणो** देवताभी तिसको--नमस्कार करतेहे, जिसका मन सदा धर्ममें होता है. तो मनुष्य नमस्कार करें उसमें-क्या वडी वात है तैसें द्रौपदीजीके--पाठमेंभी समजनेका है॥ और देवताकी--उपमा, देनेका--दूसरा प्रयोजन, यहहै कि--जितनी, देवता-भक्ति, करसकते है उतनी-मनुष्योंसें प्राये, नही हो सकतीहै, परंतु इस द्रौपदीजीने तो-मनुष्य रूप होके भी-सूरयाभ देवताकीतरां, सविस्तरवडा आडंबरसे--अरिहंत प्रतिमाकी, पूजा किईहै। इसभावको भी, जनानेके लिये, यह सूरयाभ-देवताकी--उपमा, दीइ है.॥ और जैसी-शाश्वती जिन प्रतिमाकी, भक्ति, करनेकी है, तैसी ही--अशाश्वती जिन प्रतिमाकी, भक्ति, करनेकीहै। और यह दोनोंप्रकारकी-प्रतिमाका पूजनसे, भावानु सार--एक सरखाही, फलकी प्राप्ति हो-

तीहै। यह भी विशेष प्रकार-बतानेके लिये, यह-उपमा, दीई सिद्ध होतीहै। परंतु वीतरागदेवकी मूर्तिके-निंदकोंकी, सिद्धिके लिये, यह-सूर्याभ देवकी, उपमा नहीं दिई है। किसवास्ते जूठ की-सिद्धि करनेको तरफडती है?॥ और ढूंढनी कहतीहैकि-जैसें-देवते, जीतव्यवहारसे-मूर्त्ति, पूजतेहैं, ऐसेही द्रोपदीने-संसार खातेमें, पूजीहोगी। अब इसमें-पुछनेका, इतनाही है कि-शाश्वतीजिन प्रतिमाका पूजन-देवताओंका, जो जीत व्यवहारसे-कहतीहै सो क्या-अधम फलदाताहै कि-कोइ उत्तम फलका-दाताहै?। तूंकहेंगीकि-अधम फलदाताहै, तो पिछे शाश्वती जिनप्रतिमाकी-भक्तिके साथ, यह अधमफलदाता-व्यवहारका, संबंध ही क्या?। और जो यह जीतव्यवहार, उत्तम-फलका, दाताहै. तोपिछे तुमेरे जैसें-विचार शून्य ते-दूसरे कौन होंगे कि-जो उत्तम आचारसे-भ्रष्ट-करनेको, थोथी पोथीयोंको-प्रगट करवावें? और जीतव्यवहार, जीतव्यवहार, शाश्वती जिनप्रतिमा-पूजनी, सोतो, जीतव्यवहार. यह्जो तेरा वकवादहै, सोभी जिनप्रतिमा पूजनका नास्तिकपणाकी-सिद्धिके वास्ते, कभीभी न होगा, किंतु आस्तिकपणाकीही-सिद्धिका, दाताहै॥ और तूं जो-जीतव्यवहार कहकर, उसको-संसारखाता, कहतीहै सो तुमेरा क्या चिजरूप है? * और संसार खाताका, जो तुमेरा-जगें जगे वकवाद, सुननेमें आताहै, सो किस माननिक-सूत्रमें, लिखाहै, जो फुकट लोकोको-भ्रममें, गेर ते हो?। और ढूंढनी कहतीहैकि-संबंधार्थसें-काम देवका-मंदिर, मूर्ति, संभवहोता है, क्योंकि विवाहके वक्त, वरहेतु-काम देवकी-मूर्ति,

---

* हमारे ढूंढकोंमें-संसार खाता, जो-चलपडा है। उनका-किंचित् स्वरूप, अवसर पाके, कोइ अलग भागमें-लिखके, दिखावेंगे॥

पूजी होगी ! अहो इस ढूढनीने ढूंढढूंढकर, काम देवकी-मूर्तिका, संवधार्थ तो खूवही निकाला। क्योंकि-द्रौपदीजीका जिनप्रतिमाके पूजनको, शाश्वती जिनप्रतिमाका सविस्तारसें पूजनकरनेवाला जो सूरयाभदेव है उनकी-भलामण, शास्त्रकारने-दीईहै, इससे, काम देवके-मंदिर, मूर्तिकाही, संवंध, यथार्थ निकलनेवाला होताहोगा ? परंतु वीतराग देवकी-मूर्ति पूजनका, संवंध-योग्य नही होताहोगा ? और नमोत्थुणं, का पाठभी, जो पढाहोगा, सोभी, काम देवकी मूर्तिके-आगेही, पढाहोगा ? क्यौंकि, यह ढूंढनी जब संसारमें होगी, तव इसीनेभी सब विधि-काम देवकी मूर्त्तिके आगे, किई होगी ? इसी वास्तेही यह-संवंधार्थ, निकाल कर-दिखाती है ? दूसरे संसारसें अनभिज्ञ-आचार्योंकी, क्या ताकातहैकि-वैसा गूढ संवंधार्थ-हमको, निकालकर दिखादेवे ! यहतो ढूंढनीही ढूंढकर-निकाल सकतीहै, दूसरा क्यादिखा सकताहै ? ऐसा तद्दन विपरीत-लिखने वालोंके साथ, क्या हम ज्यादावातकरेंगे ? वाचकवर्ग आपही-समजलेवेंगे.

॥ इति द्रौपदीके विषयमें-कुतर्कोंका विचार ॥

॥ अब चैत्यका अर्थ-प्रतिमा, नहिका विचार ॥

ढूंढनी-पृष्ट. १०० ओ. १ से-चैत्य चैत्यानि (चइयाणि) शब्दका अर्थ ज्ञानवान्, यति, आदि-सिद्ध, होता है, मूर्ति (प्रतिमा) नहीं ॥ ओ. १० सें-यदि कहीं-टीका, टब्बाकारोंनें, चेइय शब्दका-अर्थ-प्रतिमा, लिखा भी है, तो, मूर्ति पूजक-पूर्वाचार्योंने, पूर्वोक्त पक्षपातसे-लिखा है ॥

समीक्षा—हे सुमतिनी ! इतना-जूठ लिखतें तेरेको कुछ भी-शंका नही होतीहै ! क्यौंकि नीतिमे भी कहा है कि-"आदावऽसत्यवचनं पश्चाज्जाता हि कुस्त्रियः अर्थ-नीचस्त्रीयों होती है सो प्रथमसेही-असत्य वचनको-जन्म देके, पिछेसेही आप-जन्म लेतीयां है, इस नीतिका वचनको-सार्थक कियाहो, वैसा-सिद्धहोता है, नही तो इतना-जूठ, क्यौं लिखती ? । तूं 'चेइय' शब्दका अर्थ, ज्ञान, ज्ञानवान्, यति, आदिविना-मंदिर, मूर्त्तिका, नही होता वैसा जो-लिखती है । तो क्या-उवाई सूत्रमें-चंपानगरीका जे वर्णन है, उनकी-आद्यमें ही-"पुण्णभद्द चेइए होत्था, " वैसा कहकर-सविस्तर पणासें 'चेइए' शब्दसे मंदिर, मूर्त्तिका-वर्णन किया है । सो क्या तुंने दिखा नही ? और--पृष्ट ७७ में--बहुवे अरिहंत चेइय, ऐसा-उवाइ सूत्रका, पाठसें-जो तुने--चेइय, शब्दका अर्थ-मंदिर, मूर्त्तिका, करके, पाठांतरके बदलेमें-प्रक्षेप रूप, ठहरानेका--प्रयत्न, कियाथा, सो क्या-भूल गई ? इसका विचार-देख-इस ग्रंथका पृष्ट. १०३ मे। । और पृष्ट. १४३ में—चैत्यस्थापना, करवानें-लगजायगें, द्रव्य ग्रहणंहार मुनि-हो जायगें ॥ ऐसा लिखके "चैत्य स्थापना" सें -मंदिर, मूर्त्तिकी, स्थापना दिखानेके वखत चैत्य श-

ब्दका अर्थ--मंदिर,मूर्त्ति,रूप--तेरा लक्षमें क्या नही आया? जो चेइय शब्दका अर्थ--ज्ञान,और ज्ञानवान्, यतिका कहकर--मंदिर, मूर्त्तिका अर्थको निषेध करती है?। और ज्ञाता, उपाशकदशा, विपाक सूत्रोमें भी--(पुण्णभद्दचेइए) के पाठसे--मंदिर, मूर्तिका अर्थको ही जनता है, ॥ और तूं भी पृष्ट. ७३ में--पूर्णभद्र यक्षका--मंदिर, मूर्तिका अर्थपणे, लिखकेही आई है। तो पीछे तेरा--जूठा वक्रवाद, मूढविना--दूसरा कौन सुनेगा? और ढूंढनी कहती है कि--यदि कही, टीका, टब्बा कारोने--चेइय, शब्दका अर्थ--प्रतिमा, लिखा भी है, तो पूर्वाचार्योंने--पक्षपातसें, लिखा है॥ हे सुमतिनी! तूं तेरा ढूंढकपणाको--सनातनपणेका तो दावाकरनेको जाती है, तो क्या आजतक तेरे ढूंढकोमेंसे, कोइ भी ढूंढक--टीका, अथवा टब्बार्थ, करनेको--जीवता, न रहाथा? जो तेरेंको उनका--एक भी प्रमाण, हाथमें न आया?। जिस आचार्योंका--टीका, टब्बार्थ, वांचके--गूजारा चलाती है. उनकोही निंदतीहै? तुमेरे जैसे मंद बुद्धिवाले कौन होंगे कि--जिसडालपर बैठना, उसीकोही--काटना, और जिसपात्रमें--जिमना (अर्थात् खाना) उसी पात्रमें--मूतना, अब इससें अधिक मंद बुद्धिवाले दूसरे कहांसे मिलेंगे? इस वास्ते जो--टीकाकरोने--अर्थ, किया है, सोई प्रमाणरूप सिद्ध है। परंतु तेरी स्त्री जातिका तुछपणेका किया हुवा अर्थ तो, कोइ मूढ होगा सोइ मानेगा, परंतु सुज्ञ पुरुषो तो अवश्यही विचारकरेंगे और जो मूढपणेके दिनथे सो तो--चलेगये, अबतो सुज्ञ पुरुषोंकाही समयप्रचलित है, काहेंकु फुकट--फजेता, कराती है?

॥ इति चैत्यका अर्थ--प्रतिमा नहीका विचार ॥

॥ अब नंदीश्वरद्वीपें-जंघाचार, गयेका, विचार ॥

ढूंढनी—पृष्ठ. १०२ ओ. २ सें--ठाणांगजी-सूत्रमें तथा जीवा-भिगम-सूत्रमें--नंदिश्वर द्वीपका, तथा पर्वतोंकी रचनाका, विशेष वर्णन-भगवंतने, किया है, और यहां-शाश्वती मूर्त्ति, मंदिरोंका-कथन भी है,परंतु वहां मूर्तिको-पडिमा नामसेही,लिखा है इत्यादि॥

ओ. ८ सें. और भगवतीजीमें--जंघा चारणके, अधिकारमें--चेइयाइं वंदइ ऐसा--पाठ लिखा है। इससे निश्चय हुआ कि-जंघा चारणने-मूर्ति, नहीं पूजी, अर्थात्--वंदना, नमस्कार, नहीकरी यदि करीहोती तो एसा पाठहोता कि—जिनपडिमाओ, वंदइ न-मंस्सइत्ता, सिद्ध हुवा कि--भगवंतके ज्ञानकी, स्तुतिकरी। अर्थात् धन्य है केवल ज्ञानकी शक्ति, जिसमें-सर्व पदार्थ, प्रत्यक्ष है॥ यथा सूत्रं पृष्ठ. १०३ से.

जंघाचारस्सणं भंते—तिरियं, केवइए गइ विसए, पण्णत्ता, गोयमा सेणं इतो—एगेणं उप्पाएणं, रुअग-वरे दीवे—समोसरणं, करेइ, करेइत्ता, तहं—चेइयाइं, वंदइ, वंदइत्ता, ततो पडिनियत माणेवि—एगेणंउप्पाएणं, नंदीसरे दीवे—समोसरणं करेइ, तहं—चेइयाइं, वंदइ, वंदइत्ता, इह मागछइ, इह चेइयाइं, वंदइ, इत्यादि ॥

ढूंढनीकाअर्थ—भगवन् जंघाचारण मुनिका-तिरछी गतिका विषय, कितना है, हे गौतम--एक पहिली छालमें--रुचकवर द्वीपपर विश्राम करता है, तहां--(चेइय वंदइ) अर्थात् पूर्वोक्त ज्ञानकी स्तुतिकरे अथवा इरिया वहीका--ध्यान करनेका अर्थ भी, संभव

होताहै, क्यों कि ' लोगस्स उज्जो यगरे ' कहा जाता है, उसमें--चौविस तीर्थंकर, और केवलीयोंकी--स्तुति, होती है। फिर दूसरी छालमें--नंदीश्वर द्वीपमें, समवसरणकरे, तहां पूर्वोक्त--चैत्यवंदन, करे। फिर रहनेके--स्थान आवे, यहां पूर्वोक्त-ज्ञान स्तुति, अथवा-इरियावही, चौवीस त्था, करे ॥

पृष्ट. १०४ ओ १९ से. एकबात औरभी समजनेकी है. ॥ पृष्ठ १०५ ओ. २ से चेइयाइं--वंदइ, नमंसइं ऐसापाठ-नहीं आया ॥ ओ. ६ सें--केवलें--स्तुति, की गई है, नमस्कार--किसीको, नहीकरी ॥ पृष्ट. १०६ ओ. ३ से-धातु पाठमें लिखाहै--वदि अभिवादन स्तुत्योः अर्थात् "वदि" धातु, अभिवादन-स्तुतिक-रनेके अर्थमें है ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग ? देखियें ढूंढनीजीका ढूंढकपणा, लिखती है कि,-ठाणांगजी सूत्रमें, और जीवाभिगम सूत्रमें,-नंदीश्वर द्वीपका, तथा पर्वतों की रचनाका, औरवहां-शाश्वती " मूर्ति मंदिरोंका " कथनतो आताहै ॥ वैसा कहकरभी, जंघाचारणके पाठमें-अपणी चातुरी-प्रगट करतीहै, और कहतीहै, कि-जंघाचारण-रुचक वर-द्वीपमें, पहिलीही छालमें जातेहै, परंतु वहां रहे हुयें-शाश्वतें मंदिर, मूर्तिको-वंदना, नमस्कार, नहीं करतेहै। और जो-चैत्यवंदना, कहीहै, सोतो वहां-ज्ञानकी, स्तुतिकरी, अर्थात् धन्यहै केवल ज्ञान-की शक्ति-जिसमें सर्व पदार्थ प्रत्यक्षहै, अथवा इरियावहीका, ध्यान करनेका-अर्थभी, संभव होताहै, उसमें लोगस्स उज्जोयगरे कहा जाताहै. । हे ढूंढपंथिनी ! चैत्य वंदनका अर्थ ज्ञानकी स्तुती होती है वैसा कौनसें सिद्धांतसें, और कोनसें गुरुके पाससे--तूंने पढा ? और वहां नंदीश्वरादिक द्वीपोंमें कौनसा केवल ज्ञानका ढेर--कर

रखाथा, ? जो तूं कहती है कि,-ज्ञानकी स्तुति, करी, और इरि-
वहीका ध्यानका नाम-चैत्य वंदन है ? और जो--लोगस्स उज्जोय
गरे का-ध्यानका नाम--चैत्य वंदन, कहती है सोभी तेरी समज
विना काही है-नतो तुं पूजाका अर्थको समजतीहै, नतो-वंदनाका
अर्थको समजतीहै, केवल थोथापोथा की रचना करके, अज्ञानांधो
कों-धर्मसे भ्रष्ट करती है. । नतो जंघाचारण मुनिने-पूजा किईहै ।
और न शास्त्रकारने भी-दिखाई है, । किसवास्ते पूजापूजाका पुका
र करती है ? क्योंकि जिस मुनिको जंघाचारण की लब्धि होतीहै,
सोही मुनि-नंदीश्वरादिक द्वीपोंमें, रही हुई--शाश्वती प्रतिमाओंकी,
यात्रा करनेको, अपणी-लब्धिका, उपयोग करते है। इसीवास्तेही
यहशास्त्र सम्मत पाठ है । इसका लोपतो तेरे बावेकेभी बावेसे-न-
हीहो सकता है, किसवास्ते महापुरुषोंके--वचनोका अनादर करके,
अपणा आत्माको भवभ्रमणमें जंपापात कराती है ? । और--के-
वल ज्ञानकी, जो--स्तुति करनी दिखाती है, सोतो एकवचन रूपसे
है । और--चेइयाइं, यहपाठ है सोतो--बहुवचन रूपहै । नतो तेरेको
-एकवचनकी, खबर है, और नतो--बहुवचनकी खबर है, केवल वे
भान बनी हुइ, जूठाही पुकार करती है, इससें क्या--तेरी हितपणा
की सिद्धि, हो जानेवाली है ? ।। और उन मुनियोंने रुचकवर
द्वीपमें--नंदीश्वर द्वीपमें--जानेका जो उपयोग किया है--सो भी वहां
के, शाश्वतें--मंदिर मूर्तियोंकी, यात्रा करनेके लियेही, अपणी जं-
घाचारणपणेकी लब्धिका उपयोग किया है । परंतु वहां--केवल
ज्ञानका, ढेर को--वंदना, करनेके वास्ते नही गये है ।। और इहां-
पर भी अर्थात्--भरतादिक क्षेत्रमें, जो अपणी जंघाचारणपणेकी
लब्धिसे--फिरते है, सोभी--जोजो महान् महान् तीर्थोंमें--वीतराग
देवकी--अशाश्वती मूर्तियां, स्थापित किइ गई है, उनकी--यात्रा कर-

नेको ही फिरते है ॥ परंतु तेरा मान्य किया हुवा-ज्ञानका ढेरको, वंदना करनेको, नही-फिरते है, ॥ और ढूंढनी कहती है कि-चेइयाइं वंदइ नमंसइ ऐसा पाठ नही आया, सो केवल-स्तुति कीगई है, नमस्कार किसीको-नही करी, ॥ वैसा लिखकर, धातुका अर्थ, दिखातीहै, कि-वदि अभि वादन स्तुत्योः अर्थात् 'वदि' धातु, अभिवादन-स्तुति करनेके अर्थमें है. । हे पंडिते ! तुंने क्या 'वदि' धातुका अर्थ-एक स्तुति करने मात्रका ही दिखा ? तो क्या अभिवादन, और स्तुति, यह-दोनो अर्थ, द्विवचनसे, दिखाइ न दिया ? जो स्तुतिमात्र-एकही अर्थ, करती है ? । देख अभिवादन शब्दका-अर्थ, शब्दस्तोम महानिधि कोशमें-अभिवादनं, स्वनामोचार पूर्वकं-नमने, अर्थात् नमन अर्थमें, अभिवादन शब्द होता है । इस वास्ते वदि धातुका प्रयोग करनेसे-वंदनाकाभी, और स्तुति करने काभी-यहदोनो अर्थकाही, समावेश किया गया है, किस वास्ते-स्तुति मात्र अर्थका जूठा पुकार करती है ? ॥ पाठक वर्ग ! इहां समजनेका यह है कि,-प्रथम अंबड परिव्राजकके विषयमें-अरिहंत चेइयाइं, इसका अर्थ-इस ढूंढनीजीने-अरिहंतका सम्यक् ज्ञान, अर्थात् भेष तो हे परिव्राजक, शाक्यादिका, । और सम्यक्त्व व्रत, । वा अणुव्रत, । महाव्रतरूप धर्म । अंगीकार किया हुआ जिनाज्ञानुसार कियाथा, । और-णाणत्थ अरिहंतेवा अरिहंत चेइया णिवा इहांपर, अरिहंतजीको, और-अरिहंत देवजीकी आज्ञानुकुल-संयमका पालनेवाले-चैत्यालय, अर्थात्-चैत्यनाम ज्ञान, आलय नाम घर, ज्ञानकाघर । वैसा अर्थ कियाथा, । सो यह-वे संबधार्थ तो इस ढूंढनीको मिलगया ॥ और द्रौपदीजीके विषये-कुतर्कों पैभी कुतर्कों करके प्रगटरूप-जिनप्रतिमाका, अर्थको छोड

देके, और विवाहार्थका-संबंध जोडके, कामदेवके मंदिरका अर्थ-करनेका प्रयत्न किया॥अब जंघाचारण मुनि-जो अपणी लब्धिके प्रयोगसे-रुचकवर द्वीपमें, और नंदीश्वर द्वीपमें-कि जिहां शाश्वते मंदिरोंमें शाश्वती जिनप्रतिमाओको, वंदनाकरनेको जाते है, उसका खास जो संबंधार्थ है, उनको छोडके, इनके बावेने रखा हुआ ज्ञानका-ढेरको, बतलाती है ? । अब ऐसी यह-हठ दृढ ढूंढपंथिनी ढूंढनीको, क्या उपमा देंगे ? क्यौं कि जो कोइ आप नष्टरूप होके दूसरोंको भी-नाश करनेका प्रयत्न करें, उसको क्या कहेंगे ? ॥

॥ इति नंदीश्वर द्वीपमें जंघाचारण गयेका विचार ॥

॥ अब चमरेंद्रके-पाठका विचार ॥

ढूंढनी—पृष्ट. १०६ ओ. १० से-चमर नामा-असुरेंद्र, जो-प्रथम स्वर्गमे, गया है ॥ पृष्ट १०८ ओ. १५ से-तहां सक्रेंद्रने-विचार किया कि । यह-चमरेंद्र, ऊर्ध लोकमे आनेकी शक्ति तो, रखता नहीं है, परंतु-३ मांहला किसी एकका-शरणा लेके आसक्ता है ॥

पृष्ट १०९ यथा सूत्रं—णणत्थ अरिहंतेवा १ । अरिहंत चेइयाणिवा २। अणगारेवा भावियप्पाणो णीसाए उद्ढं उप्पयंति ३॥

ढूंढनीका अर्थ—३४ अतिशय, ३५ वाणी संयुक्त-अरिहंत १ । अरिहंत चैत्यानि-अर्थात् चैत्यपद-अरिहंत छद्मस्थ यति पदमें, क्यौंकि अरिहंत देवको जबतक-केवल ज्ञान, नहीं होय, तबतक-पंचमपदमे, होते है, जब केवल ज्ञान होवे तब-अरिहंत पदमें होतें है. २ ।

सामान्यसाधु-भावितात्मा. ३ । इनतीनोंमेंसे किसीका शरण

छेके आवे ॥ पृष्ठ. ११० ओ. ७ से-अरिहंत-चैत्यपद । किसपाठसे निकाला है ? इसके उत्तरमें लिखती है कि-जिसपाठसे तुम मूर्ति पूजकोंने-देवयं चेइयं, का अर्थ-प्रतिमावत् ऐसे निकाला है. ॥

पृष्ठ. ११२ ओ. १२-वंदना तो करे प्रत्यक्ष-अरिहंतको, और कहेकि-प्रतिमाकी तरह, तो अरिहंतजीसें प्रतिमा-जड, अछीरही.॥

समीक्षा—अब इहांपर-सर्व महापुरुषोंसे, निरपेक्ष होके ढूंढनी है सो उघडपणें धीठाईपणाको-प्रकट करतीहै ॥ देखोकि—अरि-हंत चेइयाणिं, इस पदका अर्थ—अंबड परिव्राजकके विषयमें सम्यक् ज्ञान, अर्थात् भेषतो है परिव्राजक, शाक्यादिका । और सम्यक्त्व व्रत । वा अणुव्रत । महाव्रतरूपधर्म । आदि कराथा ॥ और, इसी पदका अर्थ-जंघाचारण मुनिके विषयमें-भगवानका ज्ञानकी-स्तुति, दिखाईथी कि-धन्य है केवल ज्ञानकी शक्ति, जिसमें सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष है ॥ और इस-चमरेंद्रके विषयमें-उसी चैत्य शब्दका अर्थ-चैत्यपद, करके-दिखाती है, अर्थात्-अरिहंत छद्मस्थ यतिपदमें, करके दिखातिहै ॥ फिर प्रश्न उठाया है कि-चैत्यपद, यह किसपाठसे निकाला है, तब धिठाईपणा दिखाके कहती है कि-जिस पाठमेंसे तुम मूर्तिपूजकोंने—देवयं चेइयं, का अर्थ-प्रतिमावत् ॥ ऐसे निकाला है ॥ इसमें विचार करनेका यह है कि,जो अरिहंत चेइयाणिं, शब्द ह सो, सर्वजगें पर-अरिहंतकी-प्रतिमाओका, अर्थको-प्रगटपणे दिखारहा है, उसपदका अर्थ एकजगें तो-परिव्राजक । दूसरीजगें—केवल ज्ञान । और, तीसरीजगें-अरिहंत-छमस्थ-यतिपद । आदि भिन्न २ पणे-संबंध विनाका अर्थको प्रगट करती है. । जैसें कोई पुरुष, एकजगों पर भूल जाता है, तब जगों जगों पर, गोतेंही खाता है. ॥ कहवतभी है कि—ता-

लोंसे चुकी डुमनी गावे आल पाताल, तैसे ही यह ढूंढनीभी जैसा मनमें आता है तैसेही वकवाद-करदिखाती है। और अपणा ढूंढक पंथको-सनातनपणेका, दावाभी करनेको जाती है, परंतु एकभी जैन सिद्धांतका प्रमाणतो दिखातीही नही है। केवल टीकाकार-महापुरुषोंको, और टब्बाकार-महापुरुषोंको-निंदती हुई, सर्व पंडितोंमें अपणी ही पंडिताइपणेका-प्रमाणको, प्रगट करती है॥ परंतु इतना विचार भी-नही करती है, कि-टीका, टब्बाकार, महापुरुषो ते कौन, और हुं ढूंढनी स्त्रीजाती मात्र ते कौन? परंतु तुछ हृदय वालोंको विचार-होता नही है. ॥

और-देवयं चेइयं, पदका अर्थ-प्रतिमाकी तरहका जो सम्यक्त्व शल्योद्धारमें किया है सो-यथार्थही किया गया है, क्यौं कि 'जिनप्रतिमा' है सो-जिनेश्वर देवके-सदृशही, सिद्धांतकारोंनें-मानी है.। और जिन प्रतिमाहै सो-तीनोही लोकमें विराजमानहै॥ देख तेराही थोथाका, पृष्ट १०२ में-ठाणांग सूत्रमें, तथा जीवाभिगम सूत्रमें-नंदीश्वर द्वीपका, तथा-पर्वतोंकी रचनाका, विशेष वर्णन-भगवंतने, किया है। और वहां शाश्वती-जिन मूर्ति मंदिरोंका, कथन भी है॥ तुं कहेगी कि-यह शाश्वती जिन प्रतिमाओ तो जैन सिद्धांतोंमें है, और हम मानते भी है, परंतु-अशाश्वती प्रतिमाओ, सिद्धांतोमें-नही है, यह भी तुमेरा कहना-विचार रहितपणेकाही है,

देख तेरीही पोथीका पृष्ट. १४७ में-कि-जोतेरे ढूंढकोंने अंगीकार कीया हुवा-नंदीसूत्रहै, उसी नंदीसूत्रमें, वर्तमान कालके कितनेक-सूत्रोंकी, नोंध दीई है, उसीही नोंधकी गीनतीमें-आया हुआ, जो-विवाह चूलीया, सूत्रका तूं ने-पाठ, लिखा है सोई लिख दिखाताहुं-तद्यथा॥

कइ विहाणं भंते मनुस्स लोए—पडिमा, पण्णत्ता, गोयमा अणेग विहा पण्णत्ता—उसभादिय वद्धमाण प-रियंते, अतीत, अनागए, चोवीसंगाणं तिथ्थयर पडिमा, इत्यादि ॥ पुनः—जिन पडिमाणं भंते—वंदमाणे, अच्च-माणे, । हंता गोयमा—वंदमाणे, अच्चमाणे. ॥

पृष्ट. १४८ में, तेराही लिखा हुवा अर्थ देख--हे भगवान् मनु-ष्य लोकमें, कितने प्रकारकी प्रतिमा (मूर्ति) कही, गौतम अनेक प्रकारकी कहीहैं । ऋषभादि महावीर (वर्द्धमान) पर्यंत २४ ति-र्थकरोंकी । अतीत, अनागत-चौवीस तीर्थंकरोंकी पडिमा, इत्यादि ॥ हे भगवान् जिन पडिमाकी, वंदना-करे, पूजाकरे, हां गौतम-वंदे, पूजे. ॥

यह तेराही लेखसे,-शाश्वती, तैसेंही अशाश्वती, ऐसें दोनोंही प्रकारकी ' जिन प्रतिमाओंको, मूल-सिद्धांतोंका-पाठही, अना दि कालकी सिद्धिको दिखा रहा है. ॥ और जैन धर्मानुरागी है सो-अपणी अपणी योग्यता प्रमाणे-वंदन, पूजन भी, करतेही चले आते है, । और ते अनादि कालकी-जिन प्रतिमाओ, जिनेश्वर देवकेही सदृश होनेसें, वर्तमान कालके तीर्थंकरको-वंदन करनेवाले भक्तजनो है सो, होगये हुयें, और होनेवालें, सर्व तीर्थंकरोंकी प्रति माओंका, और-देवलोकादिकमें रही हुई-शाश्वती जिनप्रतिमाओंका आदर, सत्कार-प्रदर्शित करनेके, वास्तेही-देवयंचेइयं, का पाठको -पठन करतेहुये, विद्यमान तीर्थंकरोको वंदन करते है, नहीके मू ढोंकीतरां-मूढताको, प्रगट करते है. । इसवास्ते टीका, टब्बाकरोने, जो-अर्थ किया है सोई-यथार्थ है. ॥ और अलंकारके ग्रंथोंके प्रमा

णसे, 'इवपद' गर्भित होनेसे, यह अर्थ-टीका, और टब्बाकार, महापुरुषोंने, गुरु परंपरासे-चला आया हुवा, लिखा है। सोइ अर्थ-सम्यक्त्व सल्योद्धारमें लिखा है। परंतु तुमेरी तरां-स्वकल्पित अर्थ, नहीं लिखा है, जोतूं दूषितकर सकेगी ? किस वास्ते वीतराग देवकी आशातना करके-संसार भ्रमनका वोजा-उठाती हुई, लोकोंकोभी-देती है ?

और ढूंढनी-पृष्ट. ९० ओ. ९ सें-लिखती है कि-कोइभी, तुह्मारा "पार्श्व" अवतार, ऐसे कहके, गालीदे तो-द्वेष आवे कि-देखो यह कैसा दुष्ट बुद्धि है, जो हमारे-धर्मावतारको, निंदनीय वचनसे बोलता है. ॥ अब इस लेखसेंभी विचारकरोकि-गालीदेने वाला तो, पार्श्वनाथके नामसे-अवतार, समजता नही। अथवा, समजके भी-अवतार रूप, मानता नही है; । तोपिछे ढूंढनीको-द्वेष, किसवास्ते आता है ? । इहांपर ढूंढनी कहेंगी कि-वह पुरुष पार्श्व अवतार, नही मानता है, परंतु हमतो अवतार मानतेहै, इसवास्ते द्वेष आ जाताहै। तो अब इहांपर थोडासा सोचकर देखोकि जि-सजिस, भव्य पुरुषोंने, परमशांत, पद्मासन आकृतिरूप, स्थापनाके आगे बैठकरके, वीतराग देवके गुणोंमें मग्नता होनेके लिये, जो यह वीतरागी मूर्त्तियोंकी रचना रची है; उस वीतरागदेवकी परमशांत मूर्तिको, कभी तो जड, कभी तो पाषाण, कभी तो अज्ञानरूप, कहकर जो अपभ्राजना करके उस भव्य पुरुषोंका चित्तको द्वेष उ-त्पन्न कराते है उनके जैसें दुष्ट बुद्धीवालें दूसरे कौन होंगे ? ॥ वीतराग देवकी मूर्तिकी तो अपभ्राजना, कभी होनेवाली नहीं है, परंतु ते निंदको ही वीतरागकी आशातनाके योगसे, अनेक भवोंमें, अपणा आत्माको अपभ्राजनाका पात्र बनालेतें है, उसका विचार क्यों नही करती है ? ॥

॥ इति चमरेंद्रका पाठकी साथ, देवयं चेइयं, का विचार ॥

॥ अब ढूंढनीके चैत्य शब्दका विचार ॥

ढूंढनी—पृष्ट. ११५ ओ. ६ से-चेतति जानाति इति चितः ज्ञानवानित्यर्थःतस्यभावः चैत्यं ज्ञानमित्यर्थः ॥

पृष्ट. ११६ में-चैत्यशब्दका दश अर्थ दिखाके, पृष्ट. ११७ में, श्लोक, ॥ चैत्यः ११ प्रासाद विज्ञेय, चेइ १२ हरि रुच्यते । चैत्यं १३ चेतना नाम स्यात्, चेइ १४ सुधा स्मृता ॥१॥ चैत्यं १५ज्ञानं समाख्यातं, चेइ १६ मानस्य मानवं । चैत्यं १७ यति रुत्तमः स्यात् चेइ १८ भगवनुच्यते. ॥ २ ॥ चैत्यं १९ जीव मवाप्नोति, चेइ २० भोगस्यारंभनं । चैत्यं २१ भोग निवर्तस्य, चैत्यं २२ विनउ नीचउ ॥ ३ ॥ चैत्यः २३ पूर्णिमाचंद्रः, चेई २४ गृहस्यारंभनं । चैत्य २५ गृह मगवाहं चेइ २६ गृहस्य छादनं ॥ ४ ॥ चैत्यं २७ गृह स्तंभोवापि, चेइ च २८ वनस्पतिः चैत्यं पर्वते २९ वृक्षः चेइवृक्ष स्थूलयोः ॥ ॥ ५ ॥ चैत्यं ३१ वृक्षसारस्य, चेइ ३२ चतुःकोणस्तथा । चैत्यं ३३ विज्ञान पुरुषः चेइ ३४ देहस्य उच्यते ॥६॥ चैत्यं ३५ गुणज्ञो ज्ञेयः चेइच ३६ जिन शासनं ॥ इत्यादि ११२ ॥ पुनः नाम अलंकार सूरेश्वर वार्तिकादि वेदांते शब्द कल्पद्रुम प्रथम खंड पृष्ट ४६२—चैत्यं क्लीपुं—आयतनं, यज्ञ स्थानं देवकुलं ॥ यज्ञायतनं यथा यत्र, युपामणि मयाश्चैत्या, श्चापि हिरण्मयाः चैत्य पुं कारिभः कुंजरः । इत्यादि और ग्रंथोंमें चले है । अब हठवादियोका कथन कौनसे पातालमें गया ॥

समीक्षा—हमारे ढूंढक जैसें, अविचारी दूनीयामें दूसरे-होंगे या नही ? । क्योंकि, आप जैन-मतको कलंकभूतहोके, व्याकरणादिक कोभी दूषित कर देतेहै ॥ देखो ढूंढनीने कीईहुई-चैत्य शब्दकी, व्युत्पत्ति-चेतति जानाति इतिचितः ज्ञानवानित्यर्थः । तस्यभाव चैत्यं ज्ञान मित्यर्थः । समजनेका यह है कि-जब "कः"

प्रत्यय आके-चितः शब्द सिद्धहुवा, तवतो ज्ञानवान्, अर्थात् ज्ञानका आधारभूत जीवरूप अर्थ होगया। और फिर उसके भावमें " यण् " प्रत्यय आ गया तव जीवके विना ज्ञान मात्रका-अर्थ, करती है। कैसी व्याकरण वालोंमें, अपणी पंडितानीपणा दिखा देती है ? ॥

अव आगे देखो-श्लोकोंकी रचना, कि-जिसमें नतो वर्णप्रमाण, नतो विभक्तिका ठिकाना, नतो छंद भंगपणेका पत्ता, केवल जंगली भाषारूप किसी मूढने मनकल्पित जूठ लिखके-वेदांतका नामको भी, कलंकित किया है. ॥ देखो श्लोकका लक्षण, अक्षर ८ के प्रमाणसे ॥ पांचमे लघुता तोलो, गुरु छठो लख्यो गमे ॥ बीजे चोथे पदे बोलो, श्लोकमां लघु सातमे ॥ १ ॥

ढूंढनीके लेखका विचार—प्रथम श्लोक,-प्रथम पादमें-प्रसाद, और विज्ञेय, शब्दमें-विभक्ति ही नहीं है. ॥ दूसरे पदमें-वर्णही सातहै। और चैत्य शब्दका ' चेइ ' नतो संस्कृत व्याकरणसे-सिद्ध होता है, और नतो प्राकृत व्याकरणसें-सिद्ध होता है, और नतो इनके आगे-विभक्तिका भी ठिकाना है। ऐसें जिस जिस पदमें " चेइ " शब्द लिखा है, उहांपै सर्वथा प्रकारसे-निरर्थक पणे रखके, और वेदांतका सिद्धांतको कलंकित करके, अपणी ही पंडिताईपणेको प्रगट किई है. । तिसर पादम-पचमा अक्षर ह्रस्वके स्थानमे-दीर्घ रख दिया है। और चौथे पादमें-चेइ शब्दभी निरर्थक, और अक्षर भी ८ के स्थानमे ६ ही रखा है. ॥

अव दूसरा श्लोक, दूसरा पादमें—'चेइ' निरर्थक, और विभक्तिभी नही है। तिसरे पादमें—पंचम अक्षर ह्रस्व चाहिये सो दीर्घ है, और छठा दीर्घ चाहीये उहां ह्रस्व है. । चौथे पादमें-'चेइ' शब्दही निरर्थक है ॥

अब तीसरा श्लोक—दूसरे पादमें-'चेइ' शब्द निरर्थक। और तिसरे पादमें-सातमा अक्षर ह्रस्व चाहिये, उहां दीर्घ रखा है। चौथे पादमें-विनउ, नीचउ, निरर्थक, संस्कृतसे सिद्ध होता ही नही है, और नतो विभक्ति भी कोई रखीहै, और अक्षर भी सात ही है ॥

॥ अब चौथा श्लोक—प्रथम पादमें-अक्षर ही सात है, पंचम ह्रस्व चाहिये वहां दीर्घ रखा है। दूसरे पादमें-चेई, शब्दही संस्कृतमें सिद्ध नही होता है। तिसरे पादमें—छठा अक्षर दीर्घ चाहिये वहां ह्स्वलिखा है। और चौथा पादमेंतो-'चेइ' शब्दही निरर्थक, है। जब वाचक रूप शब्दही न रहा तब "वाच्य" पदार्थकी भी सिद्धि क्या होने वाली है, इसवास्ते जहां जहां "चेइ" शब्द रखा है वहां सर्वथा प्रकारसे निरर्थकपणा समजनेका है ॥

अब पंचम श्लोक—प्रथम पादमें-पंचम अक्षर ह्रस्व चाहिये दीर्घ रखा है। और दूसरे पादमे-'चेइ' शब्दका ही नीरर्थकपणा है। तिसरे पादमे-अक्षरही ८ केजगे सात है, सिद्धि ही क्या करेंगे ?। चौथापादमें-अक्षर भी सात है, और 'चेइ' शब्दभी निरर्थक होनेसे सभी निरर्थकपणा है. ॥

॥ अब छठा श्लोक, प्रथम पादमें-अक्षरही ८ केस्थान में; सात हीहै। दूसरे पादमें-'चेइ' शब्दही निरर्थक है, वाचक नही तो वाच्यकी सिद्धि क्या होनी है ?। तिसरे पादमें-अक्षरही सात है सिद्धि ही क्या करेंगे, और 'विज्ञान' पदभी विभक्ति विनाका है। चौथापाद-चेइ, शब्दसेही सर्वथा निरर्थक है. ॥

॥ अब सातमा श्लोक-आधाही है, प्रथम पादमे-'चेइ' शब्द हि निरर्थक रूप है तो आगे सिद्धि किस बातकी करेंगे ? ॥

पाठक वर्ग ! यह हमारी किंचित्मात्रकी समीक्षासे आपही विचार किजीयेकि-यह ढूंढनी, इत्यादि कहकर ११२ अर्थ ' चैत्य ' शब्दका कहती है, सो, और नाम अलंकार सुरेश्वर वार्तिकादि वेदांतका-जूठा प्रमाण दाखल करती है,सो;सत्यस्वरूप मालूम होता है!*

॥ अब शब्द कल्पद्रुम प्रथम खंड पृष्ठ ४६२ का-जूठा प्रमाणकी भी सत्याऽसत्य समीक्षा देखीये। प्रथम श्लोक-पहिले पादमें क्लीब शब्दका-वकारही उडादिया है, और विभक्तिकाभी-ठिकाना नही है, पंचम अक्षर-ह्रस्व चाहिये, उहांपर दीर्घ है, और छठा सातमा अक्षर-दीर्घ चाहिये, उहां ह्रस्व है। दूसरे पादमें-पंचम अक्षर-ह्रस्व चाहिये, उहां दीर्घ है, और छठा दीर्घके ठिकाने ह्रस्व है। तिसरा पादमें-अक्षरही ९ करदीये है, क्या सत्यपणा समजेगे। ' करिभः ' शब्दभी कोई कोशमे दिखता नही, तैसें ' हिरण्मय ' भी शब्दनही दिखता है, तो किस अर्थकी सिद्धि करेंगें, जितना स्त्रीकी जातिमें-जूठपणा, शास्त्रकारोंने वर्णन किया है, उतनाहीं जूठापणा, इसमें भी ढूंढलो, । ऐसा-महा जूठा लेखको, लिखके भी कहती है कि-हठवादियोंका कथन-कौनसें पातालमें गया. है ढूंढनी अब इसमें थोडासा तो विचार कर कि-हठवादी हम है के तेरे ढूंढको ? और यह तेरा लेखही-पातालमें गुसडने जैसा है कि-सम्यक्त्व शल्योद्धारका। अछी तरांसें विचार कर। क्योंकि-सम्यक्त्व शल्योद्धारमें-चैत्यं जिनौक स्तद् बिंबं, चैत्यो जिन सभातरुः यह जो प्रमाण दिया है सोतो-श्री कुमा-

---

* ॥ हमारे गुरुजी महाराज-यह कल्पित अर्थका एक पत्रा, ढूंढक पाससें देखा हुवा कहतेथे, सो हमने भी सुनाथा। अब यह जूठा लेख, प्रत्यक्ष पणे भी देख लिया ॥

रपाल राजाको प्रतिबोध करनेवाले—श्री हैमचंद्राचार्य महाराजका दिया है कि, जिस हैमचंद्राचार्यको, वर्त्तमान कालमें—जो अंग्रेजे लोको—बडे प्रवीन गीने जाते है, सोभी, सर्वज्ञपणेकीही उपमा देके—बडामान दे रहे है, उस महापुरुषोंको—यद्वातद्वा; लिखनेवाली तेरे जैसी—विचार शून्याते दूसरी कौन बनेगी ? । अगर जो तेरा ढूंढकपणेका पंथको—ढकके रखा होतातो, क्यौं इतना फजेता होता!॥

॥ इति ढूंढनीके चैत्य शङ्का, विचार ॥

॥ अब मूर्त्तिपूजनमें-मिथ्यात्वादि दोपका, विचार ॥

ढूंढनी—पृष्ट. ११८ मेंसें-लिखती है कि-मूर्त्तिपूजनेमें, षट्-कायारंभादि दोष है, ॥ और पृष्ट १२० ओ. ७ सें-और दूसरा बडा दोष-मिथ्यात्वका है । क्यौं कि-जडको चेतन मानकर मस्तक जूकाना, यह मिथ्या है. ॥

समीक्षा—हमतो जैन सिद्धांतोका-अक्षरे अक्षर चिंतामणि रत्नके तुल्य, मान्यकरनेवाले है, परंतु तुमेरे ढूंढकों जैसे नही है कि, यह तो माने, और यह तो न माने, क्यौं कि केवल मूर्त्तिपूजनमेंही-षट्कायाका आरंभ दिखाके, उनका निषेध करनेके लिये यह थोथापोथाकी रचना किई, । परंतु तेरे ढूंढक सेवको, जे-स्थानक बंधाते है, । और दीक्षा महोत्सव, और मरण महोत्सव करते है, । संघ निकालकर तुमको-वंदना, करनेको आते है । उसमें तो पूर्ण-अविवेकसें, महा आरंभका कार्य करते है, उसका, और तूं ने लिखा हुवा सूत्रका पाठका-विचार, करती वखत-तुमेरे ढूंढकोंकी मति, नजाने कौनसा-खेतचरणेको, जाति है ? सो उनका विचार किये विना, केवल-मूर्त्ति पूजनमें ही, षटकायाका आरंभ दिखानेको, थोथापोथा-लिख मारते हो, ? क्या उसमें तुमको—षट्कायाका आ-

रंभ, नहीं लगता है ! तुम कहोंगे कि-लगता तो है, तो तुमको कौनसी अधोगतिका दाता है ? उनका भी तो विचार लिखके, साथमेंही दिखा देनाथा, जिससे तेरे ढूंढक श्रावकोको भी-ज्ञान हो जाता कि, हम तो सभी प्रकारसें-दुर्गतिके ही बंदे बननेवाले है ! हम तो सुनते है कि-जिस गावमें, स्थानक नहीं होता है उहांपर, ढूंढक साधुको-रहनेकी विनती करते है तब, धम धमाटसे पुकारकर उठते है कि-स्थानक तो बंधाते नही हो, काहेकी विनतीकरते हो। और उपदेश करके, पैसेकी वर्गनी कराने भी-सामील हो जाते है, उहां पर तुमेरी-दया माता, कहां जाती है ? केवल जूठा वक्रवादही करतेहो कि, कुछ तत्त्वकाभी-विचार करते हो ? हमतो यही समजते है कि-जोकोइ तत्त्वका विचार करनेवाला होगा सोतो-तुमेरा ढूंढक पंथकी नजिकमें भी न खडा रहेगा। कारण उनको भी कलंकित ही होना पडेगा। और जो अजान होंगे सो तुमेरा पकडाया हुवा-हठपणेका अनघड पथ्थरा लेके फगाता फिरेगा और बुद्धिमान् होंगे सो, सूत्रका-पाठको, और अपणा-कर्त्तव्योंको, और साथही उनका-तात्पर्यको, विचार करकेही अपणा पांउ धरेंगे, उनको कोइभी-दुर्गतिका कारण न रहेगा. केवल मूढोंकाही-फजेता होता है ॥ और तूं जो दूसरा, मिथ्यात्त्वका-दोष कहती है-सोतो तेरेको ही प्राप्तहोता है। क्यौंकि-प्रतिमारूप अजीव पदार्थको दूसरेकों पास-जीवपणको, पुकार रही है ? और अपणा आत्माको मिथ्यात्वसे, मलीन कररही है। और हम है सोतो, योग्याऽयोग्यका विचार-करणेमेंही तत्पर रहते है, किस वास्ते जूठा कलंक देके जडको-चेतनपणे, मनाती है ? हम कहते है कि-अबी भी विचार करों, और सद्गुरुका शरणाल्यो, आगे जैसी तुमेरी भवितव्यता, हम तो कहनेमें निमित्त मात्र है. ॥

॥ इति मूर्त्तिपूजनमें मिथ्यात्वादि दोपका विचार ॥

॥ अब महा निशीथ सूत्र के पाठका विचार ॥

ढूंढनी—पृष्ट. १२१ से—काउंपि जिणाययणेहिं, मंडिय सब्ब मेयणिवट्टं । दाणाइ चउक्केणं, सड्ढो गच्छेज अ-च्चुअं जाव ॥ १ ॥

समीक्षा—इस महानिशीथ सूत्रकें पाठसें, केवल श्रावककी करणीसे गतिका प्रबंध, किया है कि-जिनमंदिरोंको, करवायके सर्व पृथ्वी भी मंडित करदेवे, और दानादि चार धर्मकोभी करें, तोभी-१२ मा देवलोकसे, अधिक गति—श्रावककी करनीसे न होवे ॥

इसका अर्थ ढूंढनी लिखती है कि-संपूर्ण भूमंडलको मंदिरों करके भरदे, (रचदे) दानादिचार करके, अर्थात् दान, शील, तप, भावना, इनचारोंके करनेसे, श्रावक जाय अच्युत १२ में देव लोक तक. ॥ अब इहांपैं यह ढूंढनी—मंदिरोंका अर्थको, गपड सपड कर देके, केवल-दानादिकसे ही १२ में देवलोककी—गति, दिखाती है। परंतु बारमा देवलोककी गति कराणेमें—दूसरा कारण भूत—जिन मंदिरोंका धर्मको, साथमें क्यों नही लिखके—दिखाती है ? यह बे संबंधा—तात्पर्य दिखाना, किस गुरुकीपाससे पढी ? ॥ फिर. पृष्ट. १२२ ओ. २ से—लिखती है कि—इसगाथामें मंदिर बनवानेका, खंडन है कि, मंडन है । हाम पूछते है कि इस गाथामें मंदिर बनवानेका खंडन है, वैसा किस गुरुने तूंने दिखा दिया?॥

फिर. ओ. ७ सें—कहती है कि—मंदिरको—उपमा वाची शब्द में लाके—ऐसें कहा है कि—मंदिरों करकें चाहे सारी पृथ्वी भरदेतोभी-क्या होगा, दानादि करके—श्रावक १२ में देवलोक तक जाते है ॥ पाठक वर्ग ? इस ढूंढनीका, उद्धत्तपणा तो देखोकि—मं-

दिरोंको, उपमा वाची, करती है, और मंदिर बनवानेका खंडनभी कहेती है, और कुतर्कों पें, कुतर्कों करके-पृष्ठ. १२३ ओ. ४ सें-लिखती है कि-नतो सारी मेदिनी (पृथ्वी) मंदिरों करके-भरी जाय, न १२ मा-देवलोक मिले ॥ ऐसा जूठा सोच करके-प्रत्यक्षपणे जिन मंदिरोंका-पाठका, लोप करती हुई-फिर लिखती है कि-तातें भली भांतिसें सिद्ध हुवाकि-सूत्र कर्त्ताने-उपमा, दीहै ॥ परंतु इहांपर ढूंढनी-इतना विचार,नही करती है कि-हजारो जैन सिद्धांतों में-जिस मंदिरोंका पाठकी-साक्षी होचुकी है, और पृथ्वी माता भी-आपणी गोदमें लेके,साथमें-सिद्धि दिखा रही है,उनका लोप करनेको-में कैसें प्रवृत्ति करती हुं ?॥ फिर पृष्ठ.१२४ ओ.३सें-लिखती हैकि-द्वितीय यहभी प्रमाण हैं कि-प्रथम इसही,निशीथ के ३ अध्यायमें-मूर्त्तिपूजाका-खंडन, लिखा है, तातें निश्चय हुवाकि-यहांभी-खंडन नही है, सूत्रमें-दो बात तो, होही नही सकतीहै ॥ पाठकवर्ग ? महानिशीथतिसरा अध्यायके-पाठका अर्थभी, विपरीतही लिखाहै । सोहमारा लेखसें-ध्यान देके, विचार लेना, इस ढूंढनीको तो-सर्व जगेंपर, पीलाही पीला दिखताहै । न जाने क्या इनकी मतिमें-विपर्यासपणा हो गया है जो वीतराग देवसेंही, इतना-द्वेषभावको प्रगट कर रही है ॥ इत्यलं पलवितेन ॥

॥ इति महा निशीथ सूत्रके-पाठका, विचार ॥

॥ अथ कवयलि कम्मा'में-कुतर्कों, विचार ॥

ढूंढनी-पृष्ठ. १२४ से-(कयवलिकम्मा) के पाठमें,-अनेक कुतर्कों कर के-पृष्ठ. १२६ ओ. ९ सें-लिखती है कि-कहीं २-टीका, टब्बामें, रूढिसें-कयवली कम्मा का अर्थ-घरका देव पूजा-

लिखा है, फिर पक्षपाती-अर्थ करते है कि-श्रावकों का घरदेव-तीर्थंकर देव, होता है।। ओ. ९ से-तीर्थंकर देव-घरके देव,नहीं, घरके देवतो-पितर, दादेयां, बाबे, भूत, यक्षादि होते है ।। ओ. १९ सें-कुल-देवका मानना, संसार खातेमें, कुछ और होता है ॥ पृष्ठ. १२७ ओ. १ सें-तुम्हारेही ग्रंथोमे-२४ भगवान्के, शासन यक्ष, यक्षनी, लिखे है, उन्हें कौन पूजताहै इत्यर्थः।। ओ.७ से-रायमश्रीमें --कठियाराने, वनमें--स्नान किया, वहां--बलिकर्म पाठ, लिखा है। समजनेकी बात है कि-उसकठियारा पामरने तो--घर देवकी, वहां उजाडमें--पूजाकरी, जहां घर ना, घरदेव, उत्तम राजायोंकी--देव-पूजा--उडगई।। पृष्ठ. १२८. ओ.२ से--उक्तपाठ ओसकी--बुंदे टटोल २ के, मंदिर पूजाकी सिद्धिके--आसा रूपी कुंभको, भरसकोगे? अपितु नहीं ओ. १६ सें--निशीथादिमें, साधुको--बहुत प्रकारके, व्यवहारकी विधि, लिख दी है, परंतु मूर्तिपूजाका न फल, न विधि, नना पूजनेका दंड, लिखा है. ॥

समीक्षा—पाठकवर्ग ! देखिये ढूंढनीजीकी चतुराई-'बलिकर्म्म-का' अर्थ, अस्त व्यस्त हुई-कभी तो--बलवृद्धि । कभी तो--स्नानकी, पूर्णविधि । कभी तो-पंचयज्ञोंमेंसे. भूतयज्ञ । कभी तो--दानार्थ । कभीतो--नवग्रह बलिका अर्थ--दिखाके, फिर--लिखती है कि कहीं कहीं--टीका, टब्बाकारोंने, रूढीसें--' कयबलीकम्मा' का अर्थ, घरकादेव पूजा लिखा है, । फिर पक्षपातीओंने--श्रावकोंका घरदेव--तीर्थंकर देव, करदिया, सो ठिक नहीं ।। पाठकवर्ग ? जो गुरुपरंपरासे, चला आया हुवा अर्थ-टीकाकार, और टब्बाकार महापुरुषोने किया सोतो, रूढीका—ठीक. नहीं, तो क्या विनागुरु की ढूंढनीका कियाहुवा, अगडं बगडं रूप अर्थ--ठिक होजायगा ! हे ढूंढनी तेरेको लिखतें--कुछभी विचार, नहीं आता है ! ॥

फिर लिखती है कि-घरका देवतो-पितर, दादेयां, भूत, यक्षादि। तीर्थंकर देवतो—त्रिलोकी नाथ, होते है। हे ढूंढनी तूं क्या नित्य कर्तव्यके लिये, ते परम श्रावकोको—पितर, दादेयां, भुत, यक्षादिककी, पूजा दिखाती है ? । प्रथमही देखकिं, वर्त्तमानकालके ढूंढको, मलीन रूप वने हुयें—पितर, दादेयां, भूत, यक्षादि—नित्य पूजते है ? जो तूं उस उत्तम महा श्रावको कीपास—पितर, भूत, यक्षादि, दररोज पूजाती है ?॥ फिर कहती है कि—तीर्थंकर देवतो, त्रिलोकी नाथ, होते है, घरके देव नही ॥ हे सुमतिनी ! त्रिलोकी नाथ है जवींही ते परम श्रावको, अपणे घरमें, महा मंगल स्वरूप मूर्तिको—पधरायके, सदाही उनकी सेवामें—तत्पर रहते है, दूसरे देवोंकी उनकों-गर्जही क्या है ? जोतूं अपणा पंडितानी पणा प्रगट करके वकवाद करती है ? । फिर लिखती है कि-सहाय वांछना, कुछ और है, और कुलदेवका-मानना, संसार खातेमें-कुछ और होता है. ॥

हे शुद्ध मतिनी ! तेरे ढूंढक सेवकोंकी पाससें, तूं भूत, यक्षादि, नतो-स्वर्ग, मोक्षादिकके वास्ते-पूजाती है, और न तो-कोई कार्यकी सिद्धिके वास्ते, पूजाती है, तो फिर कौनसा तेरा—संसार खाताके वास्ते, पूजाती है ? सो तो दिखानाथा ? क्या अधोगतिमें पटकनेके वास्ते -भूत यक्षादि, पूजाती है ? जो-संसार खाता का, पुकार करती है ? वसकर तेरा पंडितानी पणेका विचारको ॥ फिर लिखती है कि-तुमरे ही ग्रंथोंमें-२४ भगवान्‌के शासन यक्ष, यक्षनी, लिखे है, उन्हें कौन—पूजता है इत्यर्थः॥ हे सुमतिनी ! तूं यह—वकवादही, क्या कररही है, इस लेखसे तो, तेरीही कुतर्कोंका नास, हो जाता है । क्यों कि जब वर्तमान कालमें यत् किंचित् श्रद्धावाके श्रावकों भी, सम्यक्‌दृष्टि यक्ष, यक्षिनी, का, पूजन, विनाकारण,

दररोज नही करते है, तोफिर पवित्र कालके--ते महा श्रावकों कि पाससें, मिथ्यादृष्टि--पितर, दादेयां भूत, यक्षादिक--तूं कैसें पूजाती है ?। और टीका, टब्बाकार महा पुरुषोंका, किया हुवा अर्थसे—निरपेक्ष होके, यह ढूंढनी--ऐसा बकवाद, कर रही हैकि- जाने ते महा श्रद्धालु श्रावको थे सो--दररोज भूत यक्षादिको की ही--पूजना, करतेथे ? और उनकाही पूजनकी सिद्धि करनेको--यह थोथा पोथा लिखके, अपणी पंडितानीपणा करतीचली जातीहो ! ॥ और यही ढूंढनी, राय प्रश्नीय संबंधी--कठियाराका--वनमें ' ब- लिकर्मके ' पाठसे देवपूजा दिखाके, कहती हैकि—उत्तम राजाओंकी घरकी देवपूजा--उडगई, ॥ हे शून्य मतिनी ! उत्तम राजाओंकी— देव पूजाकी, सिद्धिहुई कि—उडगई ? क्योंकि--जिसको जो इष्ट देव पूजनका, नित्य कर्त्तव्यरूप है, उसका नाम—शास्त्र कारोंका संकेतसे--" वलिकर्म " कहा जाता है, सो—वलिकर्म, इस कठियारे ने—जंगलमेभी करकेही, भोजन किया । अर्थात् जोदेवसेवारूप-- नित्यकर्तव्यथा सो, जंगलमेंभी—साथही रखाथा, और उनकीही सेवा,पूजना, करके—भोजन किया तैसेही—उत्तम राराओ और ते श्रावको, आदि—परम श्रद्धालुओंनेभी—वीतराग देवकी--मूर्तिका पूजनरूप, अपणा नित्य कर्त्तव्यको, किये बादही, दूसरे कर्त्तव्योंमे-- प्रवृत्ति किइ है । इसवास्ते ते परम श्रावकोंकों, वीतराग देवकी-- पूजा, नित्य कर्तव्य रूपहीथी उनकी सिद्धिही हुई है ?।। और इस लेखरूप-सूर्यकी किरणोका प्रसारसें, तेरीही--कुतर्कों रूप, ओसकी बुंदे--उडजानेपर भी, जोतूं कुतर्कों रूप--ओसकी बुंदे,टटोलती टटो- लती, विपरीत पणेकी बुद्धि रूप कुंभको, भरनेकी इछा रखेगी सो अब न भरसकेगी ॥ और निशीथादिकसें, जोतूं साधुको--पूजन विधि, और--पूजनका फल, आदिको ढूंढती है, सोभी तेरी पंडिता

नी पणाका एक-चिन्हही, प्रगट करती है, क्यौं कि-साधुको मूर्ति पूजनेका अधिकारी ही, शास्त्रकारने-नही दिखाया है, तो पिछे-साधुको पूजनेकी विधि, और पूजनका फल, किस वास्ते लिखेंगे ? । हां विषेशमें, इतना जरुर है कि-साधु, और श्रावक. मंदिर हुये, मंदिरमें, दर्शन करनेको-जावे नही तो, उनको जरुर-ही-प्रायछित, होता है, वैसा-श्री महाकल्प सूत्रमें लिखा है-यथा-

सेभयवं, तहारूवं समणं वा, माहणं वा चेइयघरे--गछेज्जा ? हंता गोयमा, दिणे दिणे--गछेज्जा, सेभयवं जस्स दिणे-ण गछेज्जा, तओकिं पायच्छित्तं हवेज्जा? गोयमा-पमायं पडुच्च तहारूवं समणं वा, माहणंवा, जो जिणघरं--न गछेज्जा, तओ छठं, अहवा दुवालसमं, पायछित्तं हवेज्जा. इत्यादि ॥

अर्थ हे भगवन् ! तथा रूप श्रमण (अर्थात् श्रावक) अथवा माहण--तपस्वी, चैत्य घर, यानि जिनमंदिर जावे?,। भगवंत कहतेहै, हे गौतम ! रोज रोज अर्थात् हमेशां जावे. फिर गौतम स्वामी पुछते है. हे भगवन् ! जिस दिन-न जावे तो उस दिन क्या प्रायश्चित्त होवे ? भगवंत कहतेहै, है गौतम ! प्रमादके वशसे तथा रूप-श्रावक, अथवा-तपस्वी, जो जिनगृहे न जावे तो-छट्ठ, अर्थात् बेला, (दो उपवास) अथवा-पांच उपवासका, प्रायश्चित्त होवे. ॥ वैसाही श्रावकके, पोषध विषयमेंभी, सविस्तर प्रायश्चित्तका पाठ है सो विशेष देखना होवेसो. नवीन छपा हुवा सम्यक्त्व शल्योद्धार पृष्ट. १९७ से देखलेवे. ॥ इसवास्ते साधुकी पूजन विधि आदिका, लेख ही तेरा विचारशून्यपणेका है, किस वास्ते विपरीतपणे जूठी तर्को करती है ? ॥

॥ इति कयवलि कम्मा-में, कुतर्कोंका विचार ॥

॥ अब सावद्याचार्य-और ग्रंथोंका, विचार, करते है ॥

ढूंढनी-पृष्ट १२९ से ग्रंथोंमें सविस्तार-पूजा है! इस प्रश्न के उत्तरमें लिखती है कि-हम ग्रंथोंके-गपौडे, नहीं मानते है, हां जो सूत्रसे मिलती वातहो, उसे मानभी लेते हैं, परंतु जो सावद्या चार्योंने-मालखानेको, मनमानें-गपौडे, लिख धरेहैं, " निशीथ-भाष्यवत्, " उन्हें विद्वान् कभी नहीं प्रमाण करेंगें ॥

फिर. पृष्ट. १३० से-(३२) सूत्रको माननेमें-गणधर, प्रत्येक बुद्ध, दशपूर्व धारीयोंके रचे हुवे है, ऐसा-प्रमाण देके, दूसरे ग्रंथोंको-सावद्याचार्यका, कहती है। और कहती है कि-जिन ग्रंथोके माननेसे, श्री वीतरागभाषित-परम उत्तम, दया, क्षमा रूप, धर्मको-हानि, पहुंचती है॥ पृष्ट. १३२ से-अर्थात् सत्यदया धर्मका-नाश, कर दिया है। फिर निर्युक्तिके, प्रश्नमें-लिखती हैं कि-तुम्हारीसी तरह-पूर्वोक्त आचार्योंकी वनाई, निर्युक्तियोंके पोथे, अनघडितकहानीये गपौडेसे भरे हुये-नहीं मानते हैं ॥

यथा-उत्तराध्ययनकी, निर्युक्तिमें-गौतम ऋषिजी-सूर्यकी किर्णोंको-पकडके, अष्टापद पाहाडपर-चढगये, लिखा है॥ आवश्यककी, निर्युक्तिमें-सत्यकी सरीखे, महावीरजीके-भक्ता, लिखे है, इत्यादि.

पृष्ट. १३५ सें-सूत्रके मूलमें, और सूत्रकर्त्ताके अभिप्रायसें, संबंधभी नहो-उसका कथन-टीका, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णीमें-सविस्तर कर धरना. मूर्ति पूजक ग्रंथोंमे-गपौडे लिखे है। ऐसा कहकर एक गाथा लिखी है-सेतुज्जे पुंडरीओ सिद्धो, मुनिकोडि पंच संज्जुत्तो। चित्तस्स पूणीमाए, सो भणइ तेण पुंडरिओ. १ ॥ इसमें सो १०० पुत्रवालेका दृष्टांत-पृष्ट. १३६ से-दे के १३७ में लिखती

है कि, १०० मेंसे सात मरगये ९३ रहेतो-आनंद, और ९० मरंजावे १० रहे तो वडा-अफसोस, इत्यादि ॥ पृष्ट. १३८ सें-ऐसे मिथ्या वाक्योंपर-मिथ्यातीही, श्रद्धा न करते है ॥ ओ. १० से-सूतथ्थो खलु पढमो, वीओ निज्जुत्ति मिसिओ भणिओ। तइओए निरविसेसो, एसविही होइ अनुयोगो. १ ॥

अर्थ—प्रथम १सूत्रार्थ कहना। द्वितीय-निर्युक्तिके साथ कहना, अर्थात्-युक्ति, प्रामाण, उपमा, (दृष्टांत)देकर-परमार्थको, प्रगठ करना। तृतीय-निर्विशेष अर्थात्-भेदानुभेद खोलके, सूत्रके साथ-अर्थको मिला देना। इसप्रकार-निर्युक्ति माननेका अर्थ, सिद्ध है कि-तुम्हारें कल्पित अर्थ रूप, गोले-गरडानेका। वाचने लगे तो, प्रथम-सूत्रार्थ, कहलिया, । द्वितीय जो निर्युक्तियें नामसे-बडे २-पोथे, वना रखे हैं, उन्हें धरके वांचे। तीसरे जो-निरविशेष-अर्थात् ' टीका, चूर्णी, भाष्य, आदि ग्रंथों वांचे. । ऐसा तो होता नहीं है. ताते तुम्हारा-हठ, मिथ्या है॥

---

१ सूत्र १ टीका २ निर्युक्ति ३ भाष्य ४ चूर्णि ५ यह पंचोंही प्रकार 'आगम' स्वरूपही कहेजाते है। उसमेंसें एक ३२ सूत्रके विना, सर्वको जूठा ठहरायकें, ढूंढनीही-टीकादिक सर्व प्रकार-अपणे आप वनवैठी है। परंतु सत्यार्थ-पृष्ट ३८ में-मूर्त्तिखंडनके वास्ते, जिसका 'सवैया' लिखाहै-सो ढूंढक-रामचंद-तेरापंथीका खंडन-रूप एक स्तवनमें-लिखताहैकि-वत्रीश सूत्र मानां मेंतो, ते पण मानां पाठ, आगम पंच प्रकार वरोवर, निंदें गेहली ठाठ, इस कहनेसें भ्रष्टी कहीये, ग्रही नरककीवाट ॥ इत्यादि। फिरभी लिखाहैकि-टीका उत्थापे खरा ॥ यहस्तवन, अमोए इस ग्रंथके अंतमें, दाखल कियाहै, उहांसें विचार करलेना ॥

पृष्ट. १४०—१४१ तकमें—नंदीजी वाले सूत्रोंके नामसें, ग्रंथ है भी, तो वह—आचार्य कृत—साल संवत्, कर्त्ताका नाम, लिखा है, इस कारण प्रमाणिक नहीं हैं॥ पृष्ट. १४१ में हे भ्राता—जिस २ सूत्रोंमेंसें—पूर्व पक्षी "चेइय" शब्दको ग्रहण करके—मूर्ति पूजाका पक्ष करते है, उस २ का, मैंने—सूत्रके संवंधसें—अर्थ लिख दिखाया। अपणी जूठी कुतर्कों का—लगाना, छति अछति निंदा-करना, गालीयोंका—देना, स्वीकार, नहीं किया है। जूठ वोलने वाले, और गालीयों देने वालेको, नीच वुद्धिवाला समजती हुं॥

समीक्षा—वाचक वर्ग ! ख्याल करनेकी वात है कि—जो आज हजारो वर्षोंसे—हजारो ग्रंथोंकी साक्षी रूप, "जिन प्रतिमा" पूजनका-पाठ चला आता है उनको—जूठा ठहरानेके लिये, ढूंढनी कहती है कि—हम ग्रंथोंके—गपौडे, नहीं मानते है, तो पिछें अभी थोडे दिनोपै, जगें जगें पर अपमानके भाजन रूप, अज्ञानी—जेठमल आदि ढूंढकोंके, वनाये हुये—छप्पे, सवैयेका—प्रमाण देनेवालेको, क्या कहेंगे ?॥ और ढूंढनी कहती है कि—जो सूत्रोंसे मिलती वात हो उसको—मानभी लेते है॥ इसमें कहनेका यह हैं कि—आजतक हजारो आचार्य. कि—जो सर्व सूत्रपाठी, धर्म धुरंधर, प्रमाणिक स्वरूप, महा ज्ञानकी मूर्ति रूप थे, उन महापुरुषोंका वचनको, सूत्रसे अमिलित कहकर, अव अपणे आप, सूत्रसें मिलानेका कहती है, सो क्या—यह ढूंढमतिनी, कि, नतो जिसीको—विभक्तिका, नतो छंदका, और नतो शास्त्रके विषयका, भान है, सो सर्व महापुरुषोंसे—निरपेक्ष होके, सूत्रका मिलान करेगी ?। क्या कोई साक्षात्पेण पर्वत तनयाका स्वरूपको धारण करके आई है? जो सर्व सूत्रोंकी मिलती वात हमको दिखादेगी ?। हमतो यही कहते है कि—यहभी एक मूढोंका—मूढपणेकाही बकवाद है। क्या

उस महाचार्योंको, तेरा जितनाभी विवेक नही था? और क्या तूंही विवेकिनी जन्मी पडी है! हे ढूंढनी! इतना गुरुद्रोहीपणा क्यों करती है? फिर कहती है कि-माल खानेको मनमाने-गपौडे, लिखधरे है-निशीथ भाष्यवत्, उन्हें विद्वान् कभी नहीं प्रमाण करेंगे॥ इस लेखसे मालूम होता है कि-इस ढूंढनीको, आज तक खानेको कुछ माल--मिला न होगा, परंतु, गप्प दीपिका, निकालने पर, माल-बहुत मिलने लगा होगा, वैसा अनुमान होता है। उसीही माल खानेकी लालच करके-यहभी 'गपौडे, लिखकर, प्रगट करवाया होगा?। नहीतो क्यौं कहती कि-मालखानेको लिखधरे है। और इस लेखमें, इतना अछा किया है कि-गणधर महाराजाओको, इस कलंक से-बचाये है, अगर कलंक दे देती तो, तुच्छरूप स्त्री जातीको, कहतेभी क्या! और ढूंढपंथिनी-निशीथ भाष्यको 'गपौडे. कहकर' कहती है कि,-विद्धान् कभी नहीं-प्रमाण, करेंगे.। परंतु इस ढूंढनीको यह मालूम नही है कि-विद्वान् पुरुषो तो आजतक निशीथ भाष्यका एकैक वचनको-शिरसा वंद्य करके, मानते आये है, और आगेभी-मानेगे, केवल तुम ढूंढको कोही; विधाताने इस महा ग्रंथका अधिकार नही देके, केवल मूढता रूप पाषाण दिया है, सो इधर उधर फगाया करतेहो.॥ फिर ३२ सुत्रके विना, दूसरे ग्रंथोंको-सावद्याचार्य रचित कहती है.॥ हे ढूंढनी! जिस ढूंढकोंका-फजिता प्रगटपणे, हो रहा है, सो तो-निरवद्याचार्य, और आजतक जिनोने जैन शासनको सूर्यकी तरां प्रकाशमान किया, और जिनोंके गुणोंमें रंजित हुई "सरस्वती" देवी साक्षात्पणे वश हुई है, ऐसे अनेक महापुरुषों, सो तो-सावद्याचार्य, ऐसा लिखती हुइ-तेरी गुरु द्रोहिणीकी, लेखनी स्तंभित क्यौं न हुई?॥ फिर लिखती है कि-जिन ग्रंथोंके माननेसे, वीत-

रागभाषित–परम उत्तम दया क्षमा रूप, धर्मको–हानि पहुंचती है ॥ हे ढुंढनी ! तुं सत्यरूप जैन धर्मका–वारसा, करती है किस वास्ते, क्यौं कि, तूंही तेरी गप्प दीपिकामे, लिखती है कि–ढूंढत ढूंढत ढूंढलिया, सब वेद पुराण कुरानमे जोई ॥ ज्युंदही माहेसे मखण ढूंढत, त्युं हम ढुंढीयांका मत होई. १ ॥

यही तेरा वाक्यका–विचार कर कि, इसमें सत्यरूप जैन धर्मका, कोइ नाम मात्रभी है? केवल जैनाभास बनके, किस वास्ते जैन मतको–कलंकित करतीहै?॥ फिर लिखती है कि–सत्य दया धर्मका नाश कर दिया है ॥ हे ढूंढनी ! इहांपर थोडासा तो विचार करकिं, उन महा आचार्योंने--सत्य दया धर्मका,जंड लगाया हैकि,नाश कर दिया हे ?। तेरी मति क्यौं बिगडी हुई है, जरा इतिहासोकी तरफ तो देख कि–मालवा, मारवाड, गूजरात, काठियावाड,दक्षिण, आदि देशोंमे, यज्ञ याज्ञादिकमें--हजारो पशुओंका होम कियाजाताथा, उनका प्रतिबंध-राजा, महाराजाओंको, प्रतिबोध करके--करवा दिया, सो उस महापुरुषोंने सत्य दया धर्मको–स्थापित किया कि,नाश कर दिया? हे ढूंढनीजी तेरेको !इतना गर्व किस करतूत सें-होगयाकि जो कुछभी दिखता नही है॥फिर लिखती है कि-तुम्हारीसी तरह,पूर्वोक्त आचार्यों-की बनाई--निर्युक्तियोंके पोथे,गपौडेसे भरे हुये–नही मानते है ॥ हे ढूंढपंथिनी ! चउद पूर्व धारी भद्रबाहु स्वामिजीकी रची हुई–निर्युक्तियोंको, तूं गपौडेसे भरे कहती है, तो पिछे, कौनसे ते रे–बावेकी रची हुई-निर्युक्तियांको,निर्दोष मानती है, उनका नाम तो लिखनाथा ?। और निर्युक्तियोंको–दूषित करनेको, तूंने गौतम स्वामि विषये–कुतर्क किई है,सोभी विचार शून्यपणेसेंही किई है,क्यौंकि–जब जंघाचारण जंघाके बलसे—नंदीश्वर द्वीप तक जाते है, तो पिछे सूर्यकी किरणोका—आधारसे, गौतम स्वामीजीका–अष्टापद उ-

पर चढ जानेकी लब्धिका, कोई पण आश्चर्यकारक नही है ॥ केवल मिथ्यात्वके उदयसेही तुमको--विपरीत दिखता है, नहीतर इसमें सूत्रसें अमिलितपणाही क्या है ॥ और "सत्यकी" महावीरका भक्त नही, इसमें क्या तेरी पास-प्रमाण है, जो निर्युक्तियोको-जूठी ठहराती है ? । हमको तो-प्रमाण, इतनाही दिखता है कि-जो भ्रष्ट होते है सो-सभी ही वातसे-भ्रष्ट ही रहते है ॥ फिर लिखती है कि--सूत्रके मूलमें, सूत्रके अभिप्रायसें--संबंधभी न हो, उसका कथन--टीका, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णीमें--सविस्तार कर धरना ॥ हे गर्विष्टिनी ! तूंने इतनाभी विचार न आया कि-जिस मतमें-एकैक वचनकी, विपरीत—श्रद्धान करनेवाले, "जमाली" जैसे महान् साधुओंको-निन्हव मानके, कोइभी आचार्योंने-मान दिया नही है, वैसा निर्मल जैन मतमें, लाखो पुस्तकोका-गोटाला,कहती हुईको-कुछभी लज्जा, नही आई ? इसमें शास्त्रोंका-विपरीतपणा है कि, तेरी विपरीत मतिका ? और तेरा वचनपे-विश्वास करनेवालोंका ! फिर लिखती है कि-मूर्ति पूजक-ग्रंथोंमें गपौडे, लिखे है ॥ इसमें भी थोडीसी निघा करके देखतो-जैसें तूंने, और जेठमल ढूंढकने--गपौडे लिखे है वैसा तो कोइ भी गपौडे लिखने वाले--न मिलेंगे ? क्योंकि जिस शास्त्रको मान्य करना-उसीसे ही विपरीतपणा । देख तेरी गप्प दीपिकाके गपौडे---गप्प दीपिका समीरमें ॥ और तेरे जेठमलके--गपौडे, देख-सम्यक्त्व शल्योद्धारमें ॥ और यह तेरा चंद्रोदयकेभी--अनुयोग द्वारसूत्रसें सर्वथा प्रकारसे विपरीत-गपौडे, देख-यह हमारी किई हुई-समीक्षासें ॥ ऐसें अनेक दफे,गुरु विनाके तूम-जैन तत्वका रहस्यको समजे विना, मूढपणे-उपाधि तो कर बेठतेहो, फिर मूर्ति पूजकोकी तरफसें प्रत्यु-

त्तर हुयें बाद, जिसका उत्तरपै उत्तर देनेके वास्ते तुमको–कुछ भी जग्या नही रहती है, तो पीछे तुम किस वास्ते नवीन २ उपाधि करके वारंवार बहार आते हो ?

॥ और शत्रुंजय महात्म्यकी–गाथा लिखके जो तूंने चिकित्सा किई है, सोभी विचार शून्य पणेसे किई है। और इस गाथाके विषयमें, १०० पुत्रवालेका दृष्टांत दिया है–सोभी निरर्थक है, क्यौं-कि–भगवान्की हयातीमें, मोक्ष गये, यह तो पूरण भाग्यशालीपणे-का–सूचक है, सो १० पुत्र वालेके साथ–कभी न जुड सकता है, किसवास्तें अगडं वगडं लिखती हुई, पंडितानीपणा दिखाती है ? ॥ फिर लिखती है कि–ऐसे वाक्योंपर, मिथ्यातीही–श्रद्धान, क-रतें है ॥ इसमेंभी देख तेरी चातुरी–कोइ तो सिद्धांतका एकवचन न माने उनकेपर, अथवा एकाद् ग्रंथको–न माने उनके पर तो मिथ्यात्वका–आरोप, करते है परंतु तूं ढूंढनी तो, हजारो महान् आचार्योंकों–अमान्य करके, और जैन मतके लाखो ग्रंथोको–अ-मान्य करके, महा मिथ्यात्वनी–वनी हुई, जो जैनाचार्य महा पुरु-षोंको, और जैन मतके प्रमाणिक सर्व शास्त्रोंको, सर्वथा प्रकारसे आदर करनेवाले है उनको–मिथ्यात्वी कहती है, क्या तेरी अपूर्व चातुरी है कि–अपणा महान्–दोषको, छुपानेके लिये, जो सर्वथा प्रकारसे–अदूषित है, उनको अछता–दोष देंके, दूषित करनेको चा-हती है। परंतु जो–अदूषित है सो तो, कभीभी–दूषित, होई सकते ही–नही है। किस वास्ते अपणी वाचालताको प्रगट करती है ? ॥

फिर ढूंढनी–सूत्तछोखलु पढमो, ॥ इस गाथाका मन कल्पित-अर्थ, करती है कि–प्रथम सूत्रार्थ कहना। द्वितीय–निर्युक्तिके साथ कहना, अर्थात् युक्ति, प्रमाण, उपमा, (दृष्टांत) देके परमार्थको-प्रगट करना। तृतीय–निर्विशेष अर्थात् भेदानुभेद खोलके, सूत्रके

साथ---अर्थको, मिला देना, इस प्रकार---निर्युक्ति माननेका अर्थ सिद्ध है ॥

वाचक वर्ग ! देखये इसमें--ढूंढनीजीका वेढंगापणा. कहती है कि-सूत्रार्थ कहकर-युक्ति, प्रमाण, उपमा, दृष्टांत देके, परमार्थको प्रगट करना । इसमें विचार यह है कि-जो टीकाकारोंने-अर्थ किया, सो तो सूत्रार्थ नहीं, परंतु जिस मूढके मनमें, जो आ जावे-सोही बकना, सो तो ढूंढनीका-सूत्रार्थ । और दूसरा-नि र्युक्तिका अर्थ, युक्ति, प्रमाण, उपमा, दृष्टांत, देके, परमार्थको-प्र गट करना, कहती है, । अब इसमेंभी विचार देखियें कि-जो यु क्ति नियमित हो, सो युक्ति प्रमाण होती है कि-जिस मूढके म नमें जो आया सोही । बके, सो युक्ति-प्रमाण होगी ! और प्रमाण भी शास्त्रकारका दिया सो तो अप्रमाण, और अपने आप जो । मनमें आ जावे सोही बकना, सो तो-प्रमाण । यहभी कैसा न्याय कहा जायगा ? ऐसेही, उपमा, दृष्टांतके विषयमेंभी-विचारनेका है, क्योंकि-जो हमारेसे लाखोपट ज्ञानको धारण करनेवाले-महान् २ आचार्यों है, उनोका किया हुवा-सूत्रार्थ, और उनोंकी दिई हुई-युक्ति, और उनोंने दिखाया हुवा-प्रमाण, दृष्टांतादि, सो तो-अप्रमाण, और हमारे मूढोंके मनमें-जो आया, सोही बकना, सो तो-प्रमाण, यह बात-महामूढोंके विना दूसरें कौन-प्रमाण क रेंगे ? ॥ प्रथम-यह अनर्थ करनेवाली ज्ञान गर्विष्टिनी जो-ढूंढनी है, उनकाही विचार देखिये, यह हमारी बनाई हुई-समीक्षासें, कि- चैत्य शब्दके; अर्थमें-विभक्तिका, छंदका, अर्थका-कितना भान है ? जो महापुरुषोंका किया हुवा-अर्थको, त्याग करके, अपने आप-सर्व सूत्रोंका अर्थ, और युक्ति, प्रमाण, उपमा, दृष्टांतोसें- सिद्ध करके, और भेदानुभेदसेंभी-सिद्ध करके, दिखला देगी ? ॥

यह लिखना–उन्मत्तपणेका है कि, योग्य रितीका है ? सो तो–वाचक वर्गही, परीक्षा–कर लेवेंगे ॥

फिर लिखती है कि–नंदीजीवाले, सूत्रोंके नामसे–ग्रंथ है भी, तो वह–आचार्य कृत–साल, संवत्, कर्त्ताका नाम–लिखा है, इस कारण–प्रमाणिक नहीं है ॥ यहभी विचारशून्या ढूंढनीजीका लेख विचारने, जैसाही है, क्यौंकि–प्रथम–जितने जैनके विशेष प्रकार करके–सूत्रों है, सोभी–भगवान् महावीर स्वामीजीके पीछे–९८० वर्षे, " देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण " महाराजा वगैरह–अनेक आचार्योंने, एकत्र मिलकेही–लिखे हैं. तो साल, संवत्, तो सभी सूत्रों पैं प्रगटपणे है, और उस वख्तही–अनेक आचार्योंने, मिलकर–एक कोटी, पुस्तकोंको लिखवाके–उद्धार, कराया है. उन सबको जब–निरर्थक माने जावे, तब तो जैनमतकाही–निरर्थकपणा, हो जायगा. इसवास्ते यह लेखभी विचार शून्यपणेकाही है ? ॥ और अपना लेख जो–मूढपणे लिखा, सो तो–प्रमाण, और महा पुरुषोंका लेख–प्रमाण नही, वेसा लेख लिखनेवालोंका छुटका कौनसी गतिमें होगा, जो महा पुरुषोंका अनादर करके, सर्व जगेपर अपनीही पंडितानीपणा दिखाती है ॥ फिर लिखती है कि–जिस २ सूत्रमेंसे, पूर्वपक्षी–चेइय, शब्दको ग्रहण करके, मूर्त्ति पूजाका पक्ष–ग्रहण करते है, उस २ का मैंने, सूत्रके संबंधसे–अर्थ, लिख दिखाया ॥ पाठक वर्ग ! यह हमारी किई हुई समीक्षासे–विचार किजीये कि, सूत्रसे संबंधवाला, ढूंढनीका किया हुवा–अर्थ है कि–सर्व महा पुरुषोंसे निरपेक्ष होके, केवल अपनीही पंडिताईको–प्रगट किई है ? ॥ फिर लिखती है कि-अपनी जूठी कुतर्कोंका–लगाना. और निंदा गालियोंका–देना, नही किया है ॥ देखिये इसमेंभी ढूंढनीका भलाइपणा कितना है कि–वीतराग देवके तुल्य–वीतराग

देवकी मूर्त्तिकी अवज्ञा करके-कभी तो लीखती है-जड पूजक, और कभी तो-पाषाणोपासक, और सर्व महापुरुषोंका लेख तो-गपौडे, ठहराकर, कहती है कि-मैंने निंदा गालियां देना, नहीं स्वीकारा है, सो क्या इतने कहने मात्रसे-इनका भलेपणा हो जायगा ? ॥ फिर लिखती है कि-जूठ बोलनेवाले, और गालियां देनेवालेको, नीच बुद्धिवाला समजती हुं ॥ अब विचार करो कि-सर्व महा पुरुषोंका वचनको-गपौडे गपौडे, कहकर-पुकारा यह तो सब ढूंढनीने सत्यही कहा होगा ! और सिद्धांतसे सर्वथा प्रकारसे विपरीतपणे-कुछका कुछ लिख मारा, सो भी इस ढूंढनीकासत्यपणा ? और कलि कालमें, शासनके आधार भूत-महान् २ आचार्योंको-हिंसा धर्मी लिखे, सोभी इस ढूंढनीकाअमृत वचन ? और गणधर महा पुरुषोंनेभी-सूत्रोंमें ठाम ठाम-सैंकडो पृष्टोंपर, एसा लिखा है कि-जिससें ढूंढनीका आत्मीय स्वार्थभी सिद्ध नहीं होता है, सोभी ढूंढनीका-परम सत्य वचन ! इनका साध्वीपणा तो देखो ! । हमकोतो यह मालुम होता है कि-ढूंढनीने, जो बात नहीं करनेकी-लिखी है, सोही बात-करकेही दिखलाई है क्योंकि-नतो वीतराग देवकी, परम प्रिय मूर्त्तिकी-अवज्ञा करनेसें हटती है । नतो गणधरादिक, महा पुरुषोंकी-अवज्ञा करनेसें-हटती है ? मात्र कोइ एक प्रकारका उन्मत्तपणा हो जानेसें-बकवादही करती चली जाती है । सोतो-हमारा लेखसें, वाचकवर्ग आपही-विचार कर लेवेंगें. हम वारवार-क्या लिखके दिखावेंगे ? ॥

॥ इति सावद्याचार्य-और ग्रंथोंका विचार समाप्तः ॥

॥ अब ढूंढनी-जिन मूर्त्तिके निषेधमें, सूत्र पाठोंको-दिखाती है ॥

ढूंढनी—पृष्ट. १४२ से-लिखती है कि-सूत्रोंमे तो, धर्म प्रवृतिमें-मूर्त्तिपूजाका, जिकरही-नहीं। परंतु तुह्मारे माने हुये-ग्रंथोंमेंही,निषेध है,परंतु तुह्मारे वडे सावद्याचार्योंने-तुमको मूर्त्ति पूजाके पक्षका, हठ रूपी-नशापिला रखा है। फिर. ओ. १० से,भद्रबाहु स्वामीकृत-सोला स्वप्नके अधिकारसें-पंचम स्वप्नके फलमें-प्रथम पाठ लिखा है, इति प्रथमः ॥ फिर. पृष्ट. १४४ ओ. ११ से-महानिशीथ अध्ययन (३) तीसराका पाठ, इति द्वितीय॥फिर,पृष्ट.१४७ विवाह चूलिया सूत्र, ९ वां पाहुडा, ८ वां उदेशाका पाठ, इति तृतीयः ॥ फिर. पृष्ट. १५० में-जिनदत्तसूरिकृत, संदेह दोलावली प्रकरणकी गाथा षष्ठी, सप्तमीका, पाठ. इतिचतुर्थः ॥ पृष्ट १५१ में, ढूंढनीका २४ अधिकारकी समाप्ति हुई. ॥

समीक्षा—ढूंढनी लिखती है कि-सूत्रोंमें तो, धर्म प्रवृत्तिमें-मूर्त्ति पूजाका जिकरही नहीं ॥ सोतो यहां तक किइ हुई हमारी समीक्षासेही विचारलेना। और विशेष यह है कि-जो अब बुद्धिमान् गिने जाते है, सो अंग्रेजों तो, जगे जगेपर यही लिखते हैं कि-अपना ईश्वरोंकी-मूर्त्तिपूजाका मान,जो-जैनोने, और बौद्धोंने दियाहै, वैसा किसी भी मत वालोंने-नहीं दिया है। और आर्य समाजका संस्थापक-जो दयानंदजी है,सोभी--अपना प्रथम सत्यार्थ प्रकाशमेंभी, लिख चुकेथे कि यह-मूर्त्तिपूजा, जैनोंसेही चली है, और उनके मानने मुजब-उनकी मूर्त्ति, सिद्धभी हो सकती है. परंतु दूसरोंकी-सिद्ध, नहीं होती है ॥ वैसा हमने गुरुमुखसेंही-सुनाथा। और यह ढूंढनी है सो-केवल अपना परम पूज्य, वीतराग देवसेंही द्वेष भाव धारण करके-१ श्री महानिशीथ, २उवाई,

३ उपाशकदशा, ४ ज्ञाता, ५ भगवती, आदि सूत्रोंके--जिनमंदिर, मूर्त्ति-का, संक्षिप्तरूप मुख्य पाठार्थका, तदन विपरीतार्थ--लिखतीहुई, किंचित् मात्रभी विचार नहीं करतीहै कि--मैं अपना थोथा पोथामें, अपनेही हाथसें--पृष्ट. ६१ में--लिखती हुं कि--हमनेभी बडे बडे पंडित, जो विशेषकर--भक्ति अंगको, मुख्य रखते हैं, उन्होंसें--सुना है कि--यावत् काल--ज्ञान नहीं, तावत्काल--मूर्त्तिपूजन है । और कइ जगह लिखाभी देखनेमें आया है ॥ तो अब--वीतराग देवकी, मूर्त्तिपूजनका विपरीतार्थ-में कैसें करती हुं ? क्या हमारे ढूंढक भा-ईयोंके--हृदयमेंसें, वीतराग देवकी--भक्ति, नष्ट होगइ है ? जो ऐसें विपरीतार्थ करती है ? ॥ फिर पृष्ट. ७३ में--पूर्णभद्रादिक यक्षोंकी, पथ्थरसें बनी हुई--मूर्त्तिपूजाको, सिद्ध करके-अपने, भोंदू ढूंढकों, को--धन, दोलत, पुत्र, राज्य ऋद्धि सिद्धिको--प्राप्त, करवा देती है । तो पिछे जैनके मूल सिद्धांतोंकें--जिनपडिमा, अरिहंत चेइयाइं, बहवे अरिहंत चेइय, आदि पा-ठोंसें-तीर्थंकरोंके मंदिर, मूर्त्तिका, शुद्ध अर्थ करके, तीर्थंक-रोंके-यक्ष यक्षणीकेही पाससें-धन, दोलत, पुत्रादिक, की इछा-वाले ढूंढकोंको-वीतरागकी मूर्त्तिकी भक्ति करवायके, क्यौं नहीं दिलाई देती है ? क्या ढूंढनीको-तीर्थंकरोंकी मूर्त्तिसें, कोई वैरभाव हुवा है ? ॥

और वीतराग देवके, परमभक्त श्रावकोंकी, नित्य-देवसेवा करनेका पाठ जो--"कयबलि कम्मा" केसंकेतसें, जैन सिद्धां-तोंमें जगेंजगें आता है, उसमें अनेक प्रकारकी कुतर्कों करके, छेव-टमें--भूत; यक्ष; पितर, दादेयांका--अर्थ, करती है; और ते महा श्रावकोंकी पाससें भी, वीतराग देवकी मूर्त्ति पूजाकी भक्तिको,

छुडवायके, भूतादि पूजनेका कलंक भी चढाती है, और उन श्रावकोंके पर-मिथ्यात्वपणेका, आरोप रखती है, तो न जाने क्या इस ढूंढनीके-अंगमें, कोइ महामिथ्यात्व भूतका—प्रवेश हुवा है ? अथवा भूत, यक्ष, पितरादिकोंमेंसें-किसीने, प्रवेश किया है ? कारण यह है कि-जैनके मूल सूत्रोंमें-जिनमूर्त्ति पूजनका पाठ, संक्षेपसें—किसी जगे-जिन पडिमा-किसी जगे-अरिहंत चेइयाणि ॥ के नामसे आता है उनका अर्थ, तद्दन विपरीत करके कोइ जगे तो-ज्ञानका, ढरको बतलाती है, और कोइ जगे परिव्राजकका अर्थ करके दीखलाती है ॥ और कोइ जगे पर—कामदेवकी मूर्त्तिकी—सिद्धि करके, दिखलाती है । और छेवटमें—भगवानकी हैयातीके वख्तके, भगवान्के परम श्रावकोंकी पाससें, वीतरागदेवकी-मूर्त्तिपूजारूप नित्य सेवा, छुडवायके, भूतादिक देवोंकीही, नित्य पूजा करवाती है, इससें सिद्ध होता है कि-ढूंढनी है सो जरुरही किसी भूतादिकके वशमें हुई है ! इसी लियेही कुछ विचार नहीं कर सकी है ॥ फिर भी कहती है कि-मूर्त्ति पूजाका-जिकर ही सूत्रोंमें, नहीं सो अब इनको-कौनसे दरजेपर, गिनेंगे कि—जिनको अपना घरकीभी खबर नहीं है ॥ फिर लिखती है कि-तुह्मारे माने हुये ग्रंथोंमेंही निषेध है, परंतु तुह्मारे बंड-सावद्याचार्योंने, तुह्मे मूर्त्ति पूजाका-नशा पिला रखा है. ॥ इसमें कहनेका इतनाही है कि—तुम ढूंढको, जब सनातनपणेका-दावा, करनेको जाते हो तब तुम्हारे वडे ढूंढकों कौनसी-कोटडीमें, छूपके बैठे थे, जो हमारे—प्रडेको निषेध करनेके लिये, एकभी खडा न रहा । और जो आज थोडे दिनसे, जन्मा हुवा—जेठमल्ल ढूंढककी पिलाइ हुई नशामें चकचूर बनके, मनमें आवे सोही बकवाद कर उठते हो ? ॥ और जो—व्यवहार चूलिका सूत्र संबंधी

भद्रभाहु स्वामीकृत, सोळा स्वप्नमेंसे-पंचम स्वप्नके पाठका अर्थ, लिखा है सो भी, उनका परमार्थ समजे विना कुछका कुछही लिखा है, क्यौंकि-चैत्य द्रव्यका आहारक, भेषधारीको तो-हम भी नालायकही गिनते हैं, । इसमें तुम-मूर्त्ति पूजनका-निषेध, क्या दिखाते हो, ? जिसको जितना अधिकार शास्त्रकारने--दि--खाया होगा, सोही करना उचित होता है ॥ अब इसमें-तुम्हाराही लिखा हुवा-सूत्र पाठ, और उनका-अर्थ, लिखके, और इनकेपर समीक्षाभी करके, तुम्हारी-अज्ञानता दूर करते हैं, सो तुमको जो वीतराग देवके वचनका, विपरीत श्रद्धानसे-संसारका भय हो तो, विचार करके-शुद्ध श्रद्धानपर आजावेंगे, नहीं तो तुम्हरा किया हुवा कर्त्तव्यका फल, तुमही पावोगे, और हमको तो, सदाही-भगवंत भक्तिसे, परम कल्याणकी प्राप्तिही होनेवाली है.

॥ इति मूर्त्ति निषेधमें किंचित् विचार ॥

अब भद्रबाहु स्वामिकृत सोला स्वप्नमेंसे-पंचम स्वप्नका पाठ, और अर्थ, पृष्ट. १४२ से,-ढूंढनीकाही-प्रथम लिख दिखाते हैं, ॥

यथा-पंचमे दुवालस्स फणी संजुत्तो, कण्ह अहि, दिट्टो, तस्स फलं, तेणं दुवालस्स वास परिमाणे-दुकालो, भविस्सइ, तत्थकालीय सुयपमुहा सुया, वोछिज्जसंति, चेइयं ठयावेइ, दव्वा हारिणो मूणी भविस्सइ, लोभेन मालारोहण, देवल, उवहाण, उज्जमण, जिनबिंब पइठावण, विहिउमाएहिं, वहवे तव पभावा पयाइस्संति, अविहि पंथे पडिस्संति

ढूंढनीकाही- अर्थ--पांचवे स्वप्नमें--बाराफणी, काला सर्प देखा, तिसका फल-बारा वर्षी दुःकाल पडेगा । जिसमें कालिक सूत्र आदिमेंसे, और भी बहुतसे सूत्र विछेद जायेंगे, तिसके पिछे 'चैत्य

१ स्थापना' करवाने लग जायेंगे, द्रव्य ग्रहणहार--मुनि हो जायेंगे, लोभ करके मूर्त्तिके गलेमें--माला गेरकर, फिर उसका (मोल) करावेंगे, और- तप, उज्जमण, कराके--धन इकठा करेंगे, जिन बिंब (भगवानकी मूर्त्तिको) प्रतिष्ठा करावेंगे, अर्थात् मूर्त्तिके कानमें-- मंत्र सुनाके, उसे पूजने योग्य करेंगे, (परंतु मंत्र सुनाने वालोंको, पूजें तो ठीक है क्योंकि--मूर्त्तिको मंत्र सुनानेवाला--मूर्त्तिका गुरु हुआ, और चैतन्य है, इत्यादि ॥ और होम, जाप, संसार हेतु पूजाके--फल आदि बतावेंगे, उलटे पंथमें पडेंगे. ॥ इत्यादि कहकर, गप्पदीपिकामें, विस्तार लेखका प्रमाण दिया है.

॥ इति ढूंढनीका लिखाहुवा सूत्र और पाठार्थ ॥

समीक्षा—यद्यपि इस लेखपै–गप्पदीपिका समीरमें-उत्तर, हो गया है, तो भी–पाठक वर्गकी सुगमता के लिये, जो कुछ फरक है सो-लिख दिखाता हुं । देखिये कि-सिद्धांतमें जहां जहां " चैत्य " शब्द आता रहा उहां उहां तो, मंदिरका अर्थ–छोडनेके लिये ढूंढनीने उलट पलट करके, बेसंबंध–बकवाद करना, सरु किया । और इहांपै शीघ्रही " चैत्य " शब्दसें, मंदिरका अर्थ इनको मिल गया, हमतो योग्यही—समजते है, परंतु ढूंढनीजीका धिठाईपणा कितना है । खेर अब इस पाठमें, विचार यह है कि–मंदिर, मूर्त्तिको–बनवानेका, और पूजनेका--अधिकारी--केवल श्रावक वर्ग है । और साधु है सो–केवल भाव पूजाका अधिकारी है । परंतु यह निकृष्ट कालके प्रभावसें,अपनी साधुवृत्तिको -छोडके,

---

१ ढूंढनीको—चैत्य शब्दका अर्थ, ११२ सें भी अधिक, जूठा मिल गया । मात्र मंदिर मूर्त्तिका अर्थ नहीं मिला । परंतु यहां पर, चैत्य स्थापना कहनेसें " मंदिर स्थापना " ढूंढनीको—हम दिखा देते है, सो ख्यालकरके देख लेवें ॥

कितनेक भेषधारी–पतित होके, यह नहीं करनेका भी काम–कर-नेको लग जायगे, सो कालकाही–प्रभाव दिखाया है। जब निःपक्षपात से–विचार करोंगे तबतो–ढूंढकोंमें क्या, औंर मंदिर मार्गियोंमें क्या–यह दोनोंही पक्षमें, पतित भेषधारी, जितने चाहते होंगे–इतनेही मिल–सकेंगे ? मात्र फरक इतना है कि–ढूंढको को दुकानदारी, अथवा दूसरी दूसरी प्रकारकी–ठगाईयां करनी पडती है। औंर मंदिर मार्गीयोंमें, जो इस स्वप्नके पाठमें–कहा है सो, करना पडता है। परंतु जो सबके वास्ते कलंक देते हो सो तो तुम ढूंढको,केवळ महा प्रायश्चित्तकाही–अधिकारी बनते।हो ? ॥ अब पाठार्थसे भी कुछ तात्पर्य दिखाव ते हैं, देखो कि–यह पंचम स्वप्न,जो सर्पका हुवा है, इससे बारां वर्षी दुःकाळ पडेगा, औंर कालिकादि सूत्रोंमेंसे विछेद होंगे, औंर–चैत्यकी स्थापना, करवाके–द्रव्य ग्रहणहार, मुनि होंजायगे, औंर लोभ करके–मालारोहण, देवल, उपधान, उज्ञमण, जिन बिंब प्रति स्थापन, विधिओ आदि करके, बहुतसे भेप धारीओ–तप प्रभावोंको प्रकाशेंगे, औंर ऐसें–अविधि पंथमें, पड जायगे ॥

॥ अब इसमें विचार यह है कि–जो भेषधारी, लोभके वश होके–मालारोपण, देवल, उपधानादि–विधिओंमें पडेंगे, सो अविधि पंथमें पडे हुये–गिने जायगे कि, सभीही दोषित गिने आयगे ? जैसेंकि–जो साधुपणासे भ्रष्ट होंगे, सोई भ्रष्ट गिने जायगे कि–सभी भ्रष्ट गिने जायंगे ? ॥ अब इस लेखसे ढूंढकोंकी–सिद्धि हुई के, ढूंढकमतका पोकळ जाहिर हुवा। जरा अंखियां खोलके देखो कि–जो मालारोपण, देवल, उपधान, उज्जमण, जिन बिंब (मूर्ति) (प्रतिमा स्थापना,) विगेरे–कार्योंका विधिसे करना

चला आता है,उसको-लोभके वस होके,करनेकी-मना;किई है परंतु-धर्मकी बुद्धिसे तो करना उचितही दिखाया है। और विधिसे तो करना-शास्त्रसे सम्मतही है। केवल तुम ढूंढकोही अपने आप जैन धर्मसें विपरीत होके विधिओं का भी विपरीतपणा करनेंको चहाते हो परंतु यह सर्व प्रकारकी विधिमार्गका तो, तीन कालमेंभी वि-परीतपणा होनेवाला नहीं है, और वर्तमान कालमें भी, जब तक वीर भगवान्का शासन रहेगा, तब तक यह विधिमार्ग भी रहेगा। विशेप इतनाही है कि-जो भेपधारी-पतित होगा, सोही-पतित, गिना जायगा। इसी वास्ते मूलपाठमें भी-(बहवे) अर्थात् बहु-तसे-पतित होंगे, वैसा कहा है, परंतु सभी ऐसा अविधि पंथमें कभी न पडेंगे। अगर तुम ढूंढको-अपने आप मनमें मान लेते होंगे कि-सब विधिवाले हमही रहें है, परंतु तुम तो मालारोपणही-नही समजतेहो, इसी वास्तेही मूर्त्तिके गलेमें, गेरना लिखते हो ?॥ और न तुम्हारेमें-देवल है,न उज्जमण है,न जिन बिंबकी स्थापना है,तो फिर तुम, विधिवाले कैसे बन सकोंगे ? । केवल जैनाभास स्वरूपके बने हुये हो ? क्योंकि-जहां यह विधि करने वाले है, उ-हांही-अविधिवाले होते है, परंतु तुम ढूंढको तो-कोईभी, रीतिसें विधिवाले नही बनते हो, इसी बास्ते कहते है कि-तुम जैनाभास स्वरूपके बने हो ! ॥ और जो यह कुतर्क किई हैं कि-मंत्रका सुना-नेवाला-मूर्त्तिका गुरु, हुआ, सोभी अज्ञपणेही कीई है ! क्योंकि-तुम ढूंढकोको, व्याकरण पढानेवाला ब्राह्मणभी होता है सो और सूत्रादिक पढानेवाला श्रावकभी कभी होता है सो,तुम्हरा गुरु बन जायगा ! जबतो तुमको, और तुम्हारे सेवकोंकोभी, इच्छामि खमा-समणकी साथ, वंदना उनकोंही करनी पडेगी ? तुमको किस वा-

स्ते करते है ? क्योंकि तुम्हारमें, ज्ञानकी योग्यता करानेवाला वही हुआ है, । ऐसी कुतर्को करनेसे कुछ तुमेरी सिद्धि नहीं हो सकती है. जो जिसका अधिकार होगा, सोही व्यवहार योग्य रहेगा. इत्यलमधिकेन.

इति प्रथम पंचमस्वप्न सूत्रपाठार्थका विचार ॥

अथ द्वितीय, महा निशीथ तृतीय अध्ययन संबंधी, पृष्ट. १४२ सें, ढूंढनीका लिखा हुवा सूत्र, और अर्थ–यथा सूत्रं–

तहाकिल अम्हे, अरिहंताणं, भगवंताणं, गंध, मल्ल, पदीव, समज्जणोव लेवेण, विचित्त वृत्थ वलि धुपाइ एहिं, पुजासक्कारेहिं, अणुदियहं, [1]पद्यवणं पकुवणा, तित्थुप्पणं [2]करेमि, ! तंच णोणं तहत्ति, गोयमा समणु जाणेज्जा, । से भयवं केण अठेणं एवं वुच्चइ, जहाणं तंच णोणं तहत्ति समणु जाणेज्जा, । गोयमा तयत्थाणु सारेणं, असंयम वाहुल्लेणंच, मूल कम्मासवं, मूलकम्मा सवाउय अज्जवसायं पडुच वहुल्ल सुहा सुह कम्म पयडीवंधो, सव्व सावज्ज विरियाणंच वयभंगो, वयभंगेणच आणाइकम्मं, आणाइकम्मेणंतु उमग्ग गामित्तं, उमग्ग गामित्तेणंच सुमग्ग पलायणं, उ-

---

१ पव्जु वासणं पकुव्वमाणा ॥ ऐसा पाठ होना चाहिये. ॥

२ करेमो ऐसा पाठ होना चाहिये. ॥

मग्ग पवत्तणं. । सुमग्ग विप्पलोयणेणं च वट्ठइणं म-हति आसायणा, तेण अणंत संसारय हिंडणं । ए एणं अठेणं गोयमा एवं वुच्चइ, तंच णोणं तहत्ति समणु जाणेज्जा ॥

ढूंढनीकाहि अर्थ लिखते हैं-तिम निश्चय कोइ कहे कि-मैं १अरिहंत भगवंतकी मूर्त्तिका, गंध, माला, विलेपन, धूप, दीप, आदिक विचित्र वस्त्र, और फल, फूल, आदिसे, पूजा, सत्कार, आदिकरके-प्रभावना करूं तीर्थकी उन्नति करता हूं, ऐसा कहनेको-हे गौतम ! सच नहीं जानना, भला नहीं जानना ॥ हे भगवंत किस लिये आप ऐसा फरमाते हो कि-उक्त कथनको, भला नहीं जानना, हे गौतम ! उस उक्त अर्थके अनुसार, २असंयमकी वृद्धि होय, मलीन कर्म्मकी वृद्धि होय, शुभा ३ शुभ कर्म प्रकृतियोंका बंध होय, ४सर्व सावद्यका त्याग रूप, जो व्रत है उसका भंग होय,

---

१ यहांपर ख्याल करनेका है कि-महावीर भगवंतके विद्यमानमें भी, गंध मालादिकसें-अरिहंत भगवंतकी 'मूर्त्तिपूजाकी' प्रवृत्ति-हो रहनेपरही, गौतम स्वामीने-अपनी पूजाका (अर्थात् साधु पुरुषोंकी पूजाका) खुलासा कर लेनेके वास्ते, यह प्रश्न पुछा है । परंतु श्रावक तो सदा 'जिन पूजन' करते हो चलेआते हैं ॥

२ साधुओंकोही असंयमकी वृद्धि होय ॥

३ जिनमूर्त्तिपूजामें शुभकर्मका बंध विशेष रहा हुवा है ।

४ सर्व सावद्यका त्यागी जो साधु है उनकाही व्रतका भंग-माना है परंतु श्रावकको निषेध नहीं ।

व्रतके भंग होनेसे तीर्थंकरजीकी आज्ञा उलंघन होय, आज्ञा उलंघनसे, उलटे मार्गके जानेसे, सुमार्गसे विमुख होय,उलटे मार्गके जानेसे, सुमार्ग विमुख होनेसे, महा आसातना बढे, तिससे अनंत संसारी होय। इस अर्थ करके गौतम ऐसा कहताहूं कि, तुम पूर्वोक्त कथनको सत्य नहीं जानना, भला नहीं जानना, इति। अब कहो पाषाणोपासको–मूर्त्तिपूजाके निषेध करनेमें, इस पाठमें कुछ–कसरभी छोडी है जिसके-उपदेशकोंकोभी, अनंत संसारी कह दिया है॥

समीक्षा—पाठक वर्ग ! हम यहांतक जितना लिखान करके आये, उसमें अनेक प्रकारकी अशुद्धियांभी देखते आये, परंतु केवल तात्पर्य तरफ लक्ष देके, कुयुक्तियोंकाही विचार किया है, परंतु इस जगोपर सूत्रका पाठ, और अर्थ, प्रथमसेही बेढंगा देखके, विचार करना पडता है सोभी तात्पर्यकेही लिये करके दिखाताहुं,परंतु दोष दृष्टिसे विचार करनेको फुरसद नहीं लेताहुं.

तहाकिल अम्हे, इहां–अम्हे, जो पद है सो असमद्का बहु वचन है। तथाच हैमसूत्रं–[अम्ह१ अम्हे२ अम्हो३ मो४ वयं५ भे६ जसा.] वृत्तिः--अस्मदो जसा सह–एते षडादेशा भवंति ॥ प्राकृत व्याकरणका तृतीय पादे, सूत्र १०६ नंबरका है ॥ अब इस कर्त्ताकी क्रियाभी बहु वचनमेंही होनी चाहिये सो–करेमि, एक वचन रूपसे है, क्यौंकि–अस्मद् प्रयोगका बहु वचनमें–करेमो, क्रिया होवें–तवही वाक्यार्थ हो सकता है। इसवास्ते–तित्थुपणंकरेमो, ऐसा पाठकी जरुरी है, क्यौंकि–अम्हे, यह कर्त्ता बहु वचन रूप होनेसे, इनकी क्रियाभी बहु वचन रूप—करेमो,[1] ही होनी चाहिये। तो अब सूत्रार्थसे जो संबंध

[1] तथाचसूत्रं---तृतीयस्य मो, मु, माः ॥ त्यादीनां परस्मैपदात्मने पदानां, तृतीयस्य त्रयस्य संबंधिनो, बहुषु वर्त्तमानस्य वचनस्य

लगता है, सो हम लिखके दिखावते हैं, ॥ यहां गौतम स्वामी—भगवंतको प्रश्न करते हैं कि—हे भगवन् तथा, अ-र्थात्—जैसे गृहस्थ—श्रावक वर्ग, जिनपूजा करते हैं तैसे, नि-श्चय करके हम-साधु है सो, अरिहंत भगवंतोंकी मूर्तिको-गंध,माला, प्रदीप, विलेपन, विचित्र वस्त्र, वलि, धूपादिकसे–पूजा, सत्कार, करके दिन दिन प्रतें पर्युपासना करते हुए-तीर्थ प्रभावना करें! । भगवंत जवाव देते हैं कि–हे गौतम ! यह बात साधुको योग्य नहीं समजनी. । फिर गौतम स्वामी पुछते हैं कि–हे भगवंत ! किस वास्ते यह बात योग्य नहीं ?। फिर भगवंत कहते हैं कि–हे गौतम ! तदर्थानुसारसें असंयमकी वहुलता और उनकी वहुलता करके मूल कर्मका–आश्रव होता है, ? और मूल कर्मका आश्रवसे-और अध्यवसायके योग मिलनेसे, वहुत–शुभाऽशुभ कर्म प्रकृतिका वंध होता है. । तीनसें सर्व सावद्य-व्रतका भंग होय, अर्थात् साधुपणे-के-व्रतका भंग होय । और साधुपणेके व्रतका भंग होनेसे-आ-ज्ञाका अति क्रमण होय । और आज्ञाका अतिक्रमणसें उन्मार्गपणा हुवा । और सर्व सावद्यका त्यागरूप उन्मार्गपणेसे, सुमार्गका नाश होय । और ते साधु धर्मका उन्मार्ग प्रवर्त्तनसे, और ते साधु रूप-सुमार्गका प्रलोपन करनेसें, महा आसातना वढे, तिससे अनंत संसार फिरना पडे. ॥ इस वास्ते हे गौत्तम ? साधुओंको यह काम अच्छा नहीं समजना. ॥

इसमें विचार यह है कि–जहां–अम्हे का अर्थ, हम साधु करना था, वहां ढूंढनीने–कोइ कहे, यह विपरीत अर्थ किया है । परंतु ऐसा अर्थकरनेका है कि–है भगवन्–हम साधुओं, गंधादिक-

स्थाने, मो, सु, म, इत्येते आदेशा भवंति ॥ इस वास्ते " करेमि कभी न वनेगा.

से-अरिहंत भगवंतोकी पर्युपासना करके ? तीर्थकी प्रभावना करें।
(इस सूत्रमें-प्रतिमाका वोध अरिहंत भगवंतका शब्दसेंही कराया है
परंतु पथ्थर पहाड कहकरके नहीं कराया है-देखो ख्याल करके) तव
भगवंतने साधुओंकोही-यह कार्य करणेका निषेध किया है। क्यौंकि-
गंध, मालादिकसे, मूर्त्तिकी उपासना करनेसें, साधुओंको-असंय-
मकी वृद्धि होय। और जो सर्व प्रकारसें-प्राणातिपात विरमण व्रत-
से मूल कर्मका-त्याग किया है, उस मूल कर्मका-आश्रवकीभी
प्राप्ति होय। और यह मूल कर्मका आश्रवसें-और अध्यवसायके-
योगसें (अर्थात् परिणामकी धारासें) वहुत प्रकारकी-शुभ प्रकृ-
तियोंका, और अशुभ प्रकृतियोंकाभी बंध होय, इस वास्ते, सर्व
सावद्यका त्यागीयोंको-व्रतका भंग होय। क्यौं कि--साधुओने,
शुभ, और अशुभ, दोनों प्रकारकी, कर्म प्रकृतियांका नाश करनेको,
व्रत लिया है, उस व्रतका भंग होता है। जैसें कि--अनेक प्रकारका
दान धर्म-गृहस्थ करते है तैसे साधु—नही करते है, इसी प्रकारसें
साधुओंको पूजाका भी निषेध है॥ और यह—सर्व प्रकारका त्याग
रूप व्रतका भंग करनेसे-भगवंतकी आज्ञाकाभी, उलंघन होता है।
और भगवंतकी आज्ञाका उलंघनसें—उलटे मार्गमें जानेका होता
हैं। क्यौं कि—जो सर्व सावद्यका त्याग करके—साधु व्रत, अं-
गीकार कियाथा, उसको छोडके-फिर-देश वृत्तिका, अधिकारको
पकडना, यही-उलट मार्ग होता है। और यह—उलट मार्ग चला-
नेसे, जो साधु व्रत रूप—सुमार्ग है, उसका नाश होता है, और
उलटेही मार्गकी प्रवृत्ति हो जाय। और सुमार्गका अर्थात् साधुमा-
र्गका सर्वथा प्रकारसें—नाश होय, और यह साधु व्रत रूप-सु-
मार्गका नाश करनेसे महा आशातना प्राप्त होय! ऐसा उ-
लट मार्ग चलानेसे—साधुओंको अनंत संसार—भ्रमण करना पडे

इस वास्ते यह गंधमालादिसें, मूर्त्तिकी पूजा करनी साधुओंको उचित नहीं समजनी.

पाठक वर्ग ! देखिये—इस सूत्र पाठसे--श्रावक वर्गकी पूजाकी सिद्धि हुइ के निषेध हुवा ? जो कभी श्रावक वर्गकी पूजाका--निषेध करना होता तो, सर्व सावद्यका व्रतवालेकोही क्यौं ग्रहण करते, ? और शुभाशुभ कर्म प्रकृतिका--बंध है सो, साधुओंकोही इच्छित नही है, क्यौंकि--शुभ और अशुभ, यह दोनों प्रकारकी--कर्म प्रकृतियांका नाश करनेकोही साधु उद्यत हुवा है, इस वास्ते—गंध, मालादिकसे, पूजाका अधिकारी—साधु नहीं बन सकता है ॥ और गृहस्थ है सो—छकाय जीवोंका आरंभमेंही सदा रहा हुवा है,इसकारणसें—सदा अशुभ बंधनकोही बांध रहा है, उन श्रावकोंको—जिन मूर्त्ति पूजनसे, बहुत प्रकारकी—शुभ कर्मकी प्राप्ति, करनेकाही मार्ग योग्य है। क्यौं कि--इस जिन पूजासें शुभ कर्मकाही बंध अधिक होताहै, इस वास्तेही सूत्रमें--प्रथम बहुत शुभ पदको रखके, पिछेसें-अशुभ पदको ग्रहण किया है।और जो गृहस्थाश्रममें रह करके-जिन मूर्त्ति पूजनका त्याग करता है,सो तो सर्वथा प्रकारसे मलीन रूप हुवा, जो कुछ वीतराग देवकी भक्ति करनेसे--शुभ कर्मकी प्राप्ति होनेवालीथी, उसीकाही त्याग करता है ॥ और साधुओको--पुष्पादिक पूजन करनेसे, जितना कर्मका बंध, अर्थात् संसारका भ्रमण रूप होता है, उतनीही श्रावक वर्गको, मूर्त्ति पूजाकी--अवज्ञा करनेसेही कर्म बंधकी अधिकता होगी, । क्यौंकि श्रावकका-धर्म, और साधुका धर्म, यह दोनों—भिन्न भिन्न प्रकारके हैं. । जैसे कि--धर्मके स्थानक बंधाने, समरावने, मृतक साधुको--गत करना, साधु वृत्ति ग्रहण करनेवालेका--महोत्सव करना, साधर्मीक भाईयांका--खान पानसे आदर करना इत्यादि अनेक प्रकारके--गृ-

हस्थ संबंधी धर्मके कार्यमें-साधु अधिकारी नही है,और वह साधु अनेक प्रकारके आरंभ समारंभवाले कार्यको करें तो-मार्ग भ्रष्टभी गिने जायगा। परंतु श्रावक है सो तो-शक्तिमान हुवा ते कार्यको नही करनेसें ही निंधाकापात्र गिना जाता है. ॥ इस वास्ते, जो जिसका अधिकारी होगा-सोई व्यवहार योग्य माना जायगा,और लाभकी प्राप्तिभी-उसीसे ही होगी, परंतु विपरीत विचारसे तो कभीभी लाभकी प्राप्ति हो सकती नहीं है. । शरीरकी शोभादायक गहना है सोभी, योग्य स्थानपें पहना हुवाही शोभादायक होगा, और अयोग स्थानपें पहन लेंगे सो तो, केवल सर्व व्यवहारसे अज्ञ, हांसीकाही पात्र बनेगा, तैसें, तुम ढूंढको जिन मूर्त्तिको त्यागके इस भवमें, और परभवमेंभी हांसीके पात्र मत बनो ॥ और यह मूर्तिपूजन-निषेधका पाठ, क्या इस ढूंढनीकोही हाथ लग गया है, ? क्या और किसी आचार्यने पढा नही होगा ? हां बेशक, पाठ तो पंढाही होगा परंतु तुमेरे ढूंढकोंकी तरां विपरीत अर्थ नही समजे होंगे ? इस वास्ते इस पाठको जूठा चर्ची अपना और अपने आश्रितोंके धर्मका नाश करनेका उद्यम नही किया है ? तुमने इतना विशेप किया है ॥ और निर्युक्तिका अर्थमें, जो ढूंढनीने पृष्ट. १३५ से-मन कल्पित अर्थ करनेका दिखाया है, सोभी अपना, और अपने आश्रितोंके धर्मका नाश करनेकाही दिखाया है । इसी कारणसेही बावीस टोलेमें-अनेक प्रकारका तो प्रतिक्रमण, । और विचित्र प्रकारकी-क्रियाओ, । और विचित्र प्रकारकाही-उपदेश करनेकी पद्धतिओ, हो रही है । और कोइ पुछे तब-उत्तरमें, परंपरा बताना । और सूत्रसे मीलती २ बात हम मानते है वैसा कहकर, कोईभी प्रमाण बताना नही । और यद्वा तद्वा कहकर-लोकोंको बहकाना । और मनः कल्पितही अर्थ-ठोकते चले जाना ।

और सब पंडितोंको कुछ नही समजके–अपने आप पंडित मानी बन जाना। ऐसें विपरीत विचारवालोंको तो साक्षात् तीर्थंकरभी न समजा सकेंगे। कहा है कि–ज्ञान लव दुर्विदग्धानां ब्रह्मापि तं-नरं न रंजयति–तैसेंही हमारे ढूंढकोंके हाल हो रहे है॥ और ढूंढ-नीने–इस पाठमेसें, उपदेशकोंको–अनंत संसारी ठहराया सो तो सूत्रमें–एक अक्षरका गंध मात्रसेंभी नहीं है, तो पीछे ढूंढनी कैसे लिखती है ? परंतु जिसनेजो मनमें आवे सोइ बकना. ऐसेंको क-हनाही क्या ? ॥

॥ इति महा निशीथका–द्वितीय पाठः ॥

॥ अथ तृतीय विवाह चूलियाका, ९ वा पाहुडा, और ८ वां उद्देशाका, पाठ जो ढूंढनी पृष्ट. १४७ से–लिखती है, सोई ह-मभी लिखके दिखावते है–

॥ कइ विहाणं भंते, मनुस्स लोए–पडिमा, प-ण्णत्ता, गोयमा अणेग विहा पण्णत्ता। उसभा दिय वद्धमाण परियंते, अतीत, अणागए, चौवीसंगाणं ति-त्थयर पडिमा। रायपडिमा। जरक पडिमा। भूत प-डिमा। जाव धूमकेउ पडिमा.॥ जिन पडिमाणं भंते–वंदमाणे, अच्चमाणे। हंता गोयमा वंदमाणे, अच्चमाणे॥ जइणं भंते जिण पडिमाणं–वंदमाणे, अच्चमाणे–सुय धम्मं,चरित्त धम्मं,लभेज्जा,गोयमा णोणठे समठे। से केण-ठेणं भंते एवं वुच्चइ, जिन पडिमाणं–वंदमाणे अच्चमाणे-सुय धम्मं, चरित्त धम्मं, नोलभेज्जा। गोयमा पुढविकाय

हिंसइ, जाव तस्सकाय हिंसइ, आउकम्म वज्जा सत्त-कम्म पगडीउ सढिल बंधणाय निगड बंधणं करित्ता, जाव चाउरंत कंतार अणु परियट्टयंति, असाया वेयणिज्जं कम्मं भुज्जो २ बंधइ, । से तेणटेणं गोयमा—जाव नोलभेज्जा ॥—

अब ढूंढनीकाही अर्थ—लिखते है—हे भगवन् मनुष्यलोकमें, कितने प्रकारकी "पडिमा" (मूर्त्ति) कही है । गौतम अनेक प्रकारकी कहीं हैं ऋषभादि महावीर (वर्द्धमान) पर्यंत, २४ तीर्थंकरोंकी । अतीत, अणागत, चौवीस तीर्थंकरोंकी पडिमा । राजाओकी पडिमा । यक्षोकी पडिमा । भूतोंकी पडिमा । जाव धूमकेतुकी पडिमा ॥ हे भगवन् जिन पडिमाकी—वंदना करे, पूजा करे, हां गौतम—वंदे, पूजे ॥ हे भगवन् जिन पडिमाकी—वंदना, पूजा, करते हुए—श्रुत धर्म, चारित्र धर्मकी, प्राप्ति करें, गौतम नहीं, किस कारण ? हे भगवन् ऐसा फरमाते हो कि—जिन पडिमाकी वंदना पूजा करते हुये, श्रुतधर्म, चारित्रधर्मकी प्राप्ति नहीं करे । गौतम पृथ्वी काय आदिछः कायकी हिंसा होती है, तिस हिंसासे, आयु कर्मवर्जके, सात कर्मकी प्रकृतिके ढीले बंधनोंको, करडे बंधन करें, ता ते ४ गतिरूप संसारमें—परिभ्रमण करे, असाता वेदनी वार-वार बांधे, तिस अर्थ करके हे गौतम—जिन पडिमाके पूजते हुए धर्म नहीं पावे. इति ॥ इसमेंभी "मूर्ति पूजा" मिथ्यात्व, और आरंभका कारण होनेसे—अनंत संसारका हेतु कहा है. ॥

॥समीक्षा—पाठक वर्ग! यही ढूंढनी—वीतराग देवकी—वैरिणी बनी हुइ, अपनी थोथी पोथीमें—जो मनमें आया सोही लिखती चली आई देखो. पृष्ठ. ४८ में तो—लिखा कि—मूर्तिको—वंदना करना,

कदापि योग्यही नहीं ॥ फिर पृष्ट. ६९ में-लिखती है कि-सम्यक्त्वं दृष्टिभी पूजतेहै मिथ्या दृष्टि भी पूजते है॥फिर.पृष्ट. ७१में-लिखती है कि-सूत्रोंमें मूर्तिका पूजन-सम्यक्त्व व्रतादिमें-कही नहीं चला॥फिर पृष्ट.७५ में-मंदिरका पूजन-सम्यक्त्व धर्मका लक्षण होता तो सुधर्मा स्वामी-अवश्यही लिखते ॥ फिर पृष्ट ७६ में-देश, नगर, पुर, पाटनमें-कृत्रिम प्रतिमाका अधिकारही नहीं ॥ फिर पृष्ट ९६ में-तीर्थंकर देवकी मूर्तिका-पाठही नहीं ॥ फिर पृष्ट १२० में-जिन मूर्तिको-मस्तक जूकाना, मिथ्यात्व है ॥

फिर पृष्ट १२८ में-मस्त हुई लिखती है कि-क्या मंदिर, मूर्ति पूजा जैन सूत्रोंमें-सिद्ध हो जायगी ॥ वैसें वैसें, जो मनमें आया सोई बकवादही करना सरु किया, परंतु एक लेशमात्रभी विचार करनेमें नहीं उतरी है। सो न जाने इनके आत्म प्रदेशमें मिथ्यात्व कैसें गाढपणे व्याप्त हुवा होगा ? जो सिद्धांतका-एक अक्षर मात्रकाभी, विचार नही कर सकती है ? ॥ खेर, जैनका सिद्धांत यह है कि-प्रथम-सम्यक्त्वकी प्राप्ति होये वाद, पिछे ज्ञानकी प्राप्ति, और पीछे चारित्रकी प्राप्ति, उनके बाद जीवोंको-मोक्षकी प्राप्ति होती है. । यथाच सूत्रं.

सम्यकदर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः इति तत्वार्थ महा सूत्रं । इहां कहनेका प्रयोजन यह है कि-सम्यक्त्वधर्मकी प्राप्ति करानेका-निमित्त भूत, भव्य जीवोको-वीतराग देवकी मूर्त्तिभी है ? और अभयकुमारने अनार्यदेशमें मूर्त्तिको, भेजकरके-आर्द्रकुमारको-सम्यक्त्वकी प्राप्ति करानेका लेखोभी है, सोई हेतु शास्त्रकार-जगें जगें दिखातेभी आते है । और यह ढूंढनीभी-लिखती ही है । परंतु विशेषमें यह है कि-बेभानमेंही बकबाद करती चली जाती है देखो पृष्ट १३१ में-ढूंढनीभी लिखती है कि-मूर्त्ति

पूजकोने-मंदिर, मूर्त्तिका-पूजना, सम्यक्त्वकी पुष्टि मानी है, और जिनाज्ञा मानी है । सोई बात इस विवाह चूलियाके पाठसे-संपूर्णपणे सिद्ध है । परंतु हमारे ढूंढक भाईयोंकी मतिही मूढ बन जाती हैं, सो विचार नही कर सकते है. ॥

अब सूत्र, और अर्थके साथ, विचार करके दिखावते है. ॥

प्रथम केवल मूर्त्तिके विषये ही-गौतम स्वामीजीने-भगवान्को पुछा कि-हे भगवन्‌"मूर्त्ति" कितने प्रकारकी होती है। उनके जूबाबमें-भगवान् अनेक प्रकारकी मूर्त्ति कहकर-प्रथम, ऋषभदेव आदि २४ तीर्थंकरोकी-मूर्त्तियां वर्त्तमानकाल आश्रित होके दिखाई । और अतीत काल आश्रितभी २४ तीर्थंकरोंकी "मूर्तियां" दिखाई । और जो अनागत कालमें होनेवाले २४ तीर्थंकरो है, उनकीभी " मूर्त्तियां " दिखाई । पिछें राजादिककी-मूर्त्तियांभी दिखाइ. ॥ अब विचार करो कि-तनोंही कालमें, वीतरागदेवकी " मूर्त्तियां " की-स्थापना सिद्ध हुई या नही ! ॥ फिर, तीर्थंकरोंकीही प्रतिमाओंके वंदना, पूजाका, प्रश्न किया कि-हे भगवन्, जिन पडिमाको-वंदन, और पूजन, करना । उसके उत्तरमेभी भगवंतने-यही जूबाब दिया कि-हंता गोयमा, वंदेंभी, और पूजेंभी । और ढूंढनीभी इसका अर्थ यही लिखती है, परंतु मिथ्यात्वके नशेमें विचार नही आया है. ॥ इसमें विचार यह है कि-जब भगवंतने, तीर्थंकरोंकी मूर्तियोंको वंदना, करनेकी, और पूजन, करनेकी आज्ञा फरमाई तो चतुर्विध संघके विना-वंदन, और पूजन, दूसरा कौन करेगा ? और पिछे श्रावकोंके विना, वीतराग देवकी मूर्त्तियोंका " पूजन " भी दूसरा करनेवाला कौन होगा ? ॥ और द्रौपदीके पाठमें, " जिन मूर्तिको " उठानेके लिये जो मरडामरडी करके-कामदेवकी मूर्त्तिकी सिद्धि करनेको गई हैं सो, उन्मत्तपणा

किया है या नही ? क्यौं कि-यह विवाह चूलीयाके पाठसे तो "जिन" अर्थात् ऋषभादिक चोवीस तीर्थंकरोंके नामसे "मूर्त्तियां" का कथन होनेसे,दूसरा-कामदेवका अर्थ,कभी नही सिद्ध हो सकता है और सूत्रका अर्थके अंतमें, ढूंढनी लिखती है कि जिन पडिमाके पूजते हुए-धर्म नहीं पावें, इति इसेंभी-मूर्त्तिपूजा, मिथ्यात्व, और आरंभका, कारण-होनेसे,अनंत संसारका हेतु कहा है ॥ अब इसमें-भी देखीये-ढूंढनीजीकी-पंडितानीपणा-जब-ऋषभादिक ७२तीर्थंकरोंकी-प्रतिमा होनेका, प्रश्न-गौतम स्वामीने किया तब तीर्थंकर महावीर भगवंतने,भी यही कहाके-हां गौतम होती है ॥ फिर तीर्थंकरोंकीही प्रतिमाको वंदन, पूजनका-दूसरा प्रश्न किया, तबभी भगवंतने-यही उत्तर दिया,कि-हा-गौतम-वंदें,और-पूजें । तोपिछे यह ढूंढनी-मिथ्यात्व, और अनंत संसारका हेतु-कैसें कहती है ? ॥ क्यौंकि, धर्म है सोतीन प्रकारका है-१सम्यक्त्व धर्म,२ श्रुत धर्म, और ३ चारित्र धर्म ॥ इनतीनो धर्ममेसे,जो प्रथमका सम्यक्त्व धर्म हे उनकी प्राप्तिका हेतुमें मूर्त्तिका, वंदन, और पूजन, विषये प्रश्न करनेका प्रगटपणे मालूम होता है,उसकी तो भगवंतने हाही कही है, और जो तीसरा प्रश्न-*श्रुतधर्म चारित्र धर्मकी प्राप्तिके विषयका था उसकी ही प्राप्ति होनेकी जिन मूर्त्तिका वंदन पूजनसें ना कही है, कारण-श्रुत धर्म, और चारित्र धर्मका, अधिकारी-साधु पुरुष है, और साधुको मूर्त्ति पूजनका-सर्वथा, निषेध है । वही इस पाठसें दिखाया है तो पिछे ढूंढको मिथ्यात्वी है कि-मूर्त्तिको-वंदन, पूजन, करनेवाले मिथ्यात्वी है ? हे ढंढनी तूं अपनाही लेखका वि-

*टीका॰ श्रुतधर्म-गुरुमुख सिद्धांतोंका पठन करनेसें, और चारित्र-धर्म-अनेकही ५ प्रकारकी इछा वृत्तिको, रुकनेसे ही-प्राप्त होता है, इस वास्ते इनका जात अधिकारी मुख्यत्वे-साधु पुरुष ही, होता है ॥

चार कर कि–जब वीतराग देवकी प्रतिमाका वंदन, पूजन, मिथ्या त्वका हेतु होता तो,भगवंत वंदन पूजन करनेकी हा–किस वास्ते कहते ? हां जो साधु पणासे भ्रष्ट हो के, यूं कहें कि–मैं तो इस मूर्त्तिका, वंदन, पूजनसे, मेरा–श्रुत धर्म, और चारित्र धर्म, की आराधना करता हुं, तब तो वेशक, सो साधु भवभवके अंटेमें पडसकता है। नही तो तुम ढूंढकों ही,वीतराग देवकी,आज्ञाके भंगसें, और सम्यक्त्व धर्मकी प्राप्तिका हेतुरूप वीतरागी मूर्त्तिकी अवज्ञा करनेसे अनंत संसारके भ्रमणमें पडे हुये है ॥ परंतु सम्यक्त्व धर्मकी प्राप्तिका कारण रूप अथवा आत्माकी निर्मलताका कारणरूप "जिनमूर्त्तिका"वंदन, और पूजन, अपनी अपनी योग्यता मुजब, करनेवाला–चारो प्रकारका संघ तो, संसार समुद्रके–किनारेपर ही, बैठा है। क्योंकि–जीवोंको प्रथम–सम्यक्त्व धर्मकी–प्राप्ति होनी, सोई संसार समुद्रका किनारा, शास्त्रकारोंने–वर्णन कियाहै। जिसको सम्यक्त्की प्राप्ति नही, उनको–एकभी धर्मकी प्राप्ति नहीं, और उनको मोक्षभी नही। क्योंकि–तीर्थंकरोंका जीवोकोभी–जहांसें सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुइ, उहांसेंही भवोंकीभी गिनती हुईहै ॥ इस वास्ते हठवाद छोडके, तुम तुमेराही लेखका विचारकरो और रस्तेपर आ जावों केवल कुतर्कों करके, और अपना जन्म जन्मका विगाडा करके, अपना आत्माको, अनंत दुःखकी जालमें, मत फसाओ. इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति तृतीय विवाह चूलिया सूत्रपाठकी समीक्षा ॥

॥ अब चतुर्थ जिनदत्त सूरिकृत

संदेह दोलावली प्रकरण ग्रंथकी–षष्टी,सप्तमी, गाथाकाभी विचार करके दिखावते है ॥ प्रथम ढूंढनीजीकाही लिखा हुवा पाठ और अर्थ लिखते है पृष्ठ. १४९ में सें—१५१ तक देखो–तद्यथा।

गडडरियं पव्वाहओ, जे एइ नयरं दीसए बहुजणेहिं ॥
जिणगिह कारवणाइ सुत्त विरुद्धो असुद्धोय, ॥१॥ अस्यार्थः
भेडचालमें, पडेहुये लोग, नगरोंमे--देखनमें आते है कि, (जिनगिह) मंदिरका वनवाना, आदि शब्दसे-फल, फूल, आदिक से पूजा करनी, यह सब सूत्रसे विरुद्धहै, अर्थात् जिनमतके नियमोंसे-बाहर है, और ज्ञानवानोंके मतमें-अशुद्ध है ॥ ६ ॥

सोहोई दव्वधम्मो, अपहाणो अनिव्वुई जणाइ सद्धो
धम्मो बीओ, महिओ पडिसोय गामीहिं. ॥ ७ ॥

अर्थः-द्रव्यधर्म, अर्थात् पुर्वोक्त द्रव्य पूजा, सोप्रधान नहीं कस्मात् कारणात् किस लिये कि-मोक्षसे परांग मुख, अनुश्रोत्र गामी, संसारमें भ्रमाणे वालाहै, आश्रवका कारणसे ॥ दूजा भावधर्म, अर्थात्-भावपूजा, सो शुद्ध मोटा धर्म है. कस्मात् कारणात्, प्रतिश्रोत्रगामी, अर्थात् संसारसे विमुख; संवर होनेंते ॥ अब कहांजी, पहाड पूजको, जिनदत्त सूरिने-मूर्त्तिपूजाके, खंडनमें, कुच्छ बाकी छोडी है । इत्यादि.

समीक्षा-पाठक वर्ग ! इस ढूंढनीजीको--जो कुच्छ दिखता है, सोई-उलटा दिखताहै, नजाने इनके हृदयपरभी, क्या पाटा चढ गया होगा ! जो कुच्छभी दिखताही नही है ॥ क्यौंकि-जो जिनदत्तसूरिजी महाराज, दादाजीके नामसे-सर्वजगें प्रसिद्ध है, और अनेक स्थलमें, दादाजीकी वाडी, दादाजीकी वाडी, इस प्रसिद्ध नामसें, स्थानभी बने हुये है, और जिनकी पादुकाको अभीतक अनेक भक्तजन पूज रहै है, और जिनोने मारवाड आदि अनेक देशोंमे फिरके और रजपुत आदि अनेक जातों को प्रतिवोध करके, लाखो मनु-

१ इस गाथामें, अशुद्धपणाहै, जैसीहै वैसी लिख दिईहै

ष्योकों, श्रावक धर्ममें, दाखल किये है. । और अनेक जिन मंदिरों की, स्थापना करवाय के, प्रतिष्ठाओ भी करवाई है सो, तैसें प्रभाविक जिनदत्तसूरिजी महाराजकी दो गाथा, लिखके, यह ढूंढनीजी अपना ढूंढक धर्मको—स्थापित करनेको जाती है, सो यह कैसें वन सकेगा! क्यों कि, जो पिछे के, तीन पाठोमें विचार दिखाया, सोई विचार इस गाथामें दर्शाया है, तो अब इसमें ढूंढनीजीकी सिद्धि कहांसें हो गई? जो पहाड पूजकोंका संवोध न देके—उपहास करती हुई, अपनी तुछताको दिखाती है? और कुछ भी अपनी मर्यादाको समालती नहीं है? क्यौंकि-सिद्धि, तो जो होनेवाली है सोइ होगी, कुछ तुमेरा निंदनिक मार्गकी सिद्धि—नहीं होनेवाली है, किस वास्ते जूठा, तरफडाट करती है? ॥

॥ अब जो गाथाका तात्पर्य है, सो हम लिख दिखावते है वहुत लोकोंकी साथ, भेड चालसें, जो चलनेवाले है—सो भी नगरमें दिखनेमें आते है। मंदिरका वनवाना आदि, सूत्र विरुद्ध और अशुद्ध है ॥ ६ ॥

॥ अब सप्तमी गाथाका अर्थ—जो मंदिरका वनवाना आदि है, सो-द्रव्यधर्म है, अप्रधान है, निर्वृत्ति जो-मोक्ष, उसका देनेवाला नही है ॥ और-शुद्धरूप दूसराजो—भाव धर्म है सो, प्रति श्रोत्रगामि भिः साधुभिः । अर्थात् द्रव्य धर्मसें उलटे जानेवाले, साधुओंने-सेवित किया है ॥ ७ [1] ॥

॥ अब इसमें विशेष यह है कि-तीर्थंकर भगवानकी पूजा, दो

[1] इस गाथाके अर्थमें, ढूंढनी, प्रति श्रोत्रगामिहिं, कर्त्ता है, उनको, भाव धर्मरूप कर्मका, विशेषण करके, विपरीत अर्थ करती है.

प्रकारसें, महानिशीथ सूत्रमें–दिखाई है.। तथाच सूत्रं–ते सिय तिलोग महियाण, धम्मं, तित्थयंकराणं जग गुरुणं, १ भावच्चण, २ दव्वच्चण, भेयेण–दुहच्चणं, भणियं ! १ भावच्चण चारित्ताणुठाण, कठुग्ग घोर तव चरण ॥ २ दव्वच्चण, विरयाविरय शील पूया सकारदाणाइ । तो गोयमा एसत्थे परमत्थे । तंजहा, १ भावच्चण मुग्गविहारयाय । २ दव्वच्चण तु जिन पूया, । पढमा जईण । दोन्निवि गिहीण । पढमच्चिय पसत्था ॥

भावार्थ–तीनलोकसें पूजित ऐसें धर्मतीर्थंकर, जगत् गुरुका " अर्च्चन " दो प्रकारका कहा है ॥ एक–भावार्चन । दुसरा–द्रव्यार्चन ॥ १ भावार्चन यह है कि–चारित्रानुष्टान, कष्ट, उग्र घोर तप चरण । और २ द्रव्यार्चन यहहैकि–श्रावकपणा शील, पूजा, सत्कार, दानादिक, इस हेतुसें, हे गौतम यही अर्थ परमार्थ है कि सो १ भावार्चन–उग्र विहारियोंके तांई । अर्थात् कष्ट करनेवालोंके तांइ करणेका है २ द्रव्यार्चन–जिन पूजा है । प्रथमा अर्थात् भावपूजा–यतिको । दोनोंभी गृहीकों । पहिली प्रशस्त है ॥

अब इस पाठसे, समजनेका यह है कि–जो द्रव्यार्चन–(अर्थात् द्रव्य पूजा) जिन मंदिरका–बनवाना और फल फूलादिकसे जिन मूर्त्तिको पूजना, और दानादिक धर्मको सेवन करना । यह सर्व कर्त्तव्य, मुख्यतासें श्रावक धर्मको, अंगीकार करने वालेका है ॥ और चारित्रानुष्टान, कष्ट घोर तपसा, विगरे कर्त्तव्य है सो–भावार्चन रूप मुख्यतासें साधुका कर्त्तव्य है ॥ और यह साधुका–

भावार्चन, रूप कर्त्तव्यको छोडके, जो गृहस्थका–द्रव्यार्चन, रूप जिनमंदिर आदि करवानेको लगजाय, उसका व्रतको घातक होता है. । इसवास्ते जिनमंदिरको बनाना–यह साधुको, अप्रशस्त है ॥ और इसी साधुकोही मूर्त्ति पूजा करनेका निषेध रूप, प्रथम, भद्रबाहु स्वामीजीका–पंचम स्वप्नकाभी पाठ है, देखोकि, चेइयं ठ

यावेइ दव्वहारिणो मुणीभविस्सइ ।लोभेन माला रोहण,

आदि कहा है ॥ और दूसरा महा निशीथका पाठ है–सोभी, सर्व सावद्य त्यागी साधु है, उनकोही मंदिरादिकका कराना–अनुचितपणे दिखाया है ॥ और तिसरा विवाह चूलिया सूत्रका पाठमेंभी, श्रुतधर्म, चारित्रधर्म, का अधिकारी साधु है, उनकाही निषेधपणा किया है, परंतु सर्व श्रावकोंके वास्ते जिनपूजाका निषेध पणा तो एकभी पाठमें नही है, ॥ अब यह हमारी किई हुई समीक्षासे, ढूंढनीजीकाही लिखा हुवा पाठका विचारकरोंकि, हमारे ढूंढकोको जैनमतके एक अक्षरकाभी यथार्थ ज्ञान है! केवल आप जैन मतसें, और जैन के तत्त्वसें, सर्वथा प्रकारसे मूढ बने हुयें, औरभी भव्य जीवोको, भ्रष्ट करनेका दुर्ध्यान में ही कालको व्यतीत करते है. । परंतु जो धर्मका अभिलाषी जीव होगा, सोतो हमारी किई हुई समीक्षाको अमृत तुल्य मानके, अवश्य पान करेगा और जौ हठीले बने हुये है, उनकोतो असाध्य रोगके उपर जैसें कोईभी उपचार नही लगता है, तैसें यह हमारी किई हुई समीक्षाका, एकभी वचन गुणदायक न होगा. । सो तो उनकी भवितव्यतकाही मुख्य कारण रहेगा. ।

अबीभी इस विषयमें हमको, कहनेकातो बहुत कुछ है, परंतु पाठक वर्गको वाचन करतें कंटाला करनेंको भयसे, केवल मुख्य वा-

वतोंकीही समीक्षा करके, अधिक लिखना तहकुवही करते चले आयेहै. । जिससे पाठक वर्गको वांचतेभी कंटाला रहेगा नही. इत्यलं वलवितेन.

ढूंढनी—पृष्ट. १९१ से–मूर्त्ति पूजा कहांसे चली ऐसा प्रश्न उठाके उनकी हद, दिखानेको प्रवृतमान हुई पृष्ट. १९२ ओ, ४ से लिखती है कि–जो बारावर्षी कालसे–पीछे कहते हैं, सो तो प्रमाणोंसों–ठीक मालूम होता है । हम अभी ऊपर, मूर्त्ति पूजा निषेधार्थमें–चार ग्रंथोंका पाठ, प्रमाणमें लिखचुके हैं, जिसमें–प्रथम स्वप्नाधिकारमें–१२ वर्ष ? काल पीछेही, मूर्त्तिपूजाका आरंभ, चलाया लिखा है ॥ औरजो महावीर स्वामीजीके समयमें–कहते है, सोतो सिद्ध होती नहीं–वैसाकहकर, भगवती शतक १२, उद्देशा २ से जयंति श्रमणो पासकका, और ज्ञाता धर्म कथासे, नंदमणियारका उदाहरण दिया है ॥ फिर. पृष्ट. १९३ ओ. १४ से–औरजो कहते हैं कि–पहिले हीसे, चली आती है, सो इसमें, कोइ पूर्वोक्त कारणोंसें, प्रमाण तो है नहीं ॥ परंतु पहलेभी–मूर्त्ति पूजा, होगी तो आश्चर्य हीक्या है ?। क्योंकि ऐसे हीं–जिन साधुओंसे, संयम नहीं पलाहोगा, उन परिग्रहधारियोंने–अपना पोल, लुकानेको, और ज्ञानभंडारा नामसे–धन इकठा करनेको, थापली होगी ॥

समीक्षा—पाठक वर्ग ! इस ढूंढनीजीने–हृदय उपरभी कोइ नवीन प्रकारका पाठा, चढालिया होगा, ? जो अपना लिखाहुवाका विचार आपभी नहीं कर सकती है ? केवल मिथ्यात्व के नशे में बकवाद ही करती हुई चलीजाती है, क्यों कि, १ भगवती सूत्र, २ ज्ञातासूत्र, ३ राज प्रश्नीय सूत्र, ४ जंबुद्वीपपन्नती सूत्र, ५ उपाशक दशा सूत्र, ६ उवाई सूत्र, ७ महा

निशीथ सूत्र, ८ जीवाभिगमसूत्र, आदि सूत्रोंका मूलपाठोंमें, जो साक्षात्पणे, किसीजगें " शास्वती प्रतिमा " ओंका पाठ। किसीजगें-अरिहंत चेइयाइं, करके पाठ। और किसीजगें, " जिनपडिमा " करके पाठ–प्रगटपणे शास्त्रकारों लिख गये है। और शास्वती प्रतिमाओंका तो–अंगो अंगका, भिन्न भिन्नपणे, सविस्तर वर्णन, प्रमाण सहित–लिख गये है। और अशाश्वती प्रतिमाओंका भी–आकृति, उनके ही अनुसारसें बनाई गई है। सो जिनमूर्त्ति सिद्धांतसे भी–सम्मत, और यह धरतीमाताकी साक्षीसे भी–सम्मत, ते सिवाय परमतके शास्त्रोंसे भी, यह वीतराग देवकी मूर्त्तिसम्मत॥ उस विषयमें, यह ढूंढनी, कभी तो कहती है कि–सूत्रोंमेमूर्त्ति, चली ही नही हैं। कभी तो कहती है, मूर्त्तिका जिकरही नहीं है,॥ तो हम ढूंढकोंको, पुछते है कि–जब जिन मूर्त्तिका, सूत्रोंमे–जिकरही नही होता तो पीछे, ढूंढनीको, सूत्रोंका पाठको–लिख लिखके, जूठा खंडन करनेका–प्रयत्न ही, किस वास्ते करना पडा.॥

हे ढूंढकभाइयो। हृदय उपर अज्ञानका जो पाटा चढाया है उनको छोडके, विचार करो ? कि, हम लिखके क्या आते हैं, और पीछेसे क्या कहते है। केवल तुम अपना ही लिखा हुवाका–विचार करोकि–जिससे तुमको कल्याणका मार्ग हाथ लगजाय ? ॥

देखो सत्यार्थ पृष्ट. १४७ में–विवाह चूलियाका पाठमें, वर्त्तमान २४ तीर्थंकरोंकी मूर्त्तियां। और अतीकालकी २४ तीर्थंकरोंकी भी प्रतिमाओं। और अनागत २४ तीर्थंकरोंकी भी प्रतिमाओं होती है। और. वंदने, पूजने, भी योग्य है॥ वैसा भगवंत महावीर स्वामी, गौतस्वामी महाराजको फरमा रहै है। तो पीछें तूं

ढूंढनेवाली ढूंढनी कैसे कह सकती है कि–बारां वर्षों कालके पीछे-से, जिनमूर्त्तिका–वंदन, पूजन, चला है. । और भगवती सूत्रका, और नंदमणियारका, उदाहरण देती है, सो किस उपयोग वास्ते होगा ? सो तो प्रसंगही दूसरा है, इस जिनमूर्त्तिका खंडनमें क्या उपयोग होनेवाला है ? ऐसे तो हजारो प्रसंग शास्त्रोंमें आते हैं ॥

और फिरलिखती है कि–जो कहते हैं कि, जिनमूर्त्ति पहिले-से ही चली आती है, इसमें कोई प्रमाण तो हे नही, ॥

तो अब इसमें कहने का–यह है कि, तुमेराही लिखाहुवा, विवाह चूलिया सूत्र पाठका–प्रमाण, क्या तुमको दिखा नहीं, ? जो कहती है कि–प्रमाण हैं नहीं.

फिर लिखती है कि–पहलेभी–मूर्त्ति पूजा, होगी तो आश्चर्यही क्याहै. ॥

इसमें आश्चर्य तो–इतनाही हुवा है कि, तुम ढूंढको–अपना और अपने आश्रितोंका, धर्मके विगाडा करनेवाले–अभीथोडे ही दिनोंसे–जन्म पडे.

फिर लिखती है कि–जिन साधुओंसे, संयम नही पला होगा· उन परिग्रह धारियों ने, अपना पोल लुकानेको, और ज्ञानभंडारा नामसे–धन इकठा करनेको, थापली होंगी.

हे ढूंढनी भद्रबाहु स्वामीसें पूर्वकें महाऋषियोंकोभी, कलंकित करनेका–प्रयत्न करती है कि–जिन साधुओंसे, संयम नही पला होगा, उन साधुओंन–मूर्त्तिपूजन, स्थापली होगी ? परंतु इतना विचार नही करती है कि–जो भद्रबाहु स्वामी के पूर्वमें साधु वि-चरतेथे, सो सबीभी निस्कलंकितहीथे, और श्रावकोंमें मूर्त्तिका पू-जन भी चला आताहीथा । परंतु चंद्रगुप्तने जबसे अनिष्ट स्वप्न

हुवा, तबके पीछेसे, कोइ कोइ भेष धारीमें, अनिष्ट कालके प्रभावसे, पतितपना होनेका-सरु हुवा, ऐसा तेरा लेखही दिखा रहा है परंतु सभी मुनिमें कुछ पति तपना नही हुवा है,जो तुमेरा कल्पित पंथकी सिद्धि हो जायगी ? ॥ हे ढूंढको ! तूम आचारसे, और विचार आदिसे, भ्रष्ट होकर, पूर्वले महान् महान् पुरुषोकोभी, दूषित करनेको जाते हो ? । और अपने आप निर्मल बननेको चाहते हो? क्या तो तुमेरी चातुरी, और क्या तो तुमेरी स्वजनता, हम भी तुमको शिक्षा कहां तक देंगे ? अब तो तुमेराही भाग्यकी कोइ प्रबलता होनी चाहिये, नहि तो हमारा योग्य कहना भी तुमको विष पनेही परिणमन होगा ? इस वास्ते अधिक कहना भी छोड देते है. ॥

ढूंढनी——पृष्ट. १९४ से-१ जैनतत्वा दर्श । २ सम्यक्त्क शल्योद्धार । ३ गप्पदी पिका समीर । यहतीन ग्रंथोका प्रश्न उठाके कहती है कि १ जैनतत्वा दर्शका स्वरूपतो मैं--ज्ञान दीपिका मे,लिख चूकी हुं ।

और २ सम्यक्त्क शल्योद्धार, और ३ गप्प दीपिका समीरको तुमही देखलो, कैसे अर्थके अनर्थ, हेतुके कुहेतु, जूठ, और निंदा, और गालियें, अर्थात् ढूंढियोंको किसीको दुर्गतिमें पडनेवाले, आदिकरके पुकारा है ॥ और प्रश्नोके उत्तर दिये है, और जो देते हैं, सो ऐसेहै कि-पूर्वकी पुछो तो, पश्चिमको दौडना, कुपच्ची रन्न (लुगाई) कीतरह, बातको-उलटी करके, लडना.

फिर. पृष्ट. १९६ ओ. ११ से-भ्राता ! साधु, और श्रावक, नाम धराकर-कुछ तो लाज, निवाहनीचाहिये, क्यौंकि-जूठ बोलना, और गालियांका देना, सदैव बुरा माना है,

समीक्षा—पाठकवर्ग ! ढूंढनी लिखती है कि—१. जैनतत्वादर्शका स्वरूप तो मैं-ज्ञान दीपिकामें, लिख चूकी हूं, वैसा लिखती वखत कुछ भी विचार नही किया होगा ! क्योंकि-इनकी ज्ञान दीपिका तो, गप्प दीपिका समीरके (अर्थात् पवनके) जपाटेमें, सर्वथा प्रकारसे बुज गइ है कि, न तो रहीथी वत्ती, और न तो रहने दियाथा-तेल, तो पिछे अपनी ज्ञानदीपिका—दिखाती ही कैसे है ? । अगर जो उसमें, तेल, और वत्ती. रह गई होती तो, क्या ! फिर जगाइ न लेती ? परंतु जगावे क्या कि जिसमें कुछ रहा ही नही ॥

॥ और लिखती है कि, अर्थके अनर्थ, हेतुके कुहेतु, कैसे किये है ? । जब तेरेको उसमें अर्थके अनर्थ, और हेतुके कुहेतु दिखातबतो प्रथम ही हमको भी दिखा देती, जो हम भी देख लेते । अगर जो यह तेरा कहना-ठीक ही ठीक, होता तो, प्रथम उनका उत्तर देके, पिछेसे ही यह नवीन धत्तंग खडा करती, तो योग्य ही गिना जाता ? परंतु सो तो तूंने किया ही नही है । इस वास्ते सिद्ध है कि—जो जो उसमें लिखा है सो, सभी ही सत्यही सत्य लिखा गया है, । क्योंकि-जो जो तुमेरा जैन मतसें विपरीत कर्त्तव्य, और केवल जुठा बकवाद है, उनकाही उसमें केवल दिग्दर्शन मात्र किया गया है, ओर जूठका फल दुर्गतिरूप ही होता है, सोई कहा है, किस वास्ते जूठ लिखते हो ?

॥ और तूंने जो उनका उत्तर देना छोड देके, यह नवीन जूठा वचनोका-पूंज इकठा किया है, सोई तेरा उदाहरण जैसा तूंने ही किया है । अगरजो सम्यक्त्व शल्योद्धारका, और गप्प दीपिका समीरका, लेख अनुचित होता तो तूं प्रथम उनकाही उत्तर देनेमें प्रवृत्ति करती ? परंतु यह कुपत्ती रत्नके जैसा आचरण

कभी न करती ? ॥ और सम्यक्त्व शल्योद्धार, गप्प दीपिकासमीरके कर्त्ताने तो, तुम ढूंढकोंको, केवल हित शिक्षाके वास्तेही कहा है, परंतु उसवातकी जो रुची तुमको नही हुई है सो तो, तुमेरा आज्ञानपणेकी निशानी है, उसमें कर्त्ताका कुच्छ दोष नही है.

फिर लिखती हैं कि-भ्राता ! साधु और श्रावक नाम धराकर कुछतो लाज निवाहनी चाहीये ॥ हे ढूंढकों ? तुमको साधुपणेकी, और श्रावकपणेकी लज्जा होती तो, अपना ही महान् महान् पुरुषोंका अपवाद ही क्यौं वकते ? और वीतराग देवकाही-महोत्सव देखके, मारामारीही किस वास्ते करते ? परंतु तुमतो आप ही जैनधर्मसे-विपरीत होके और दूसरांको भी विपरीत करनेकी चाहना कर रहे हो, तुमको साधु, और श्रावक, पणेकी लज्जाही कहां रही है ? जो अपना साधुपणा दिखाते हो ? । हां कभी, कृष्णका, महा देवका, पीरका, फकीरका, महोत्सव होवें, जब तो तुम राजी, और वीतरागदेवका-महोत्सव देखते ही तुमेरा हृदय फिरजाय, तो पिछे तुम अपने आप साधु, और श्रावकपणा ही कैसे प्रगट करते हो ? तुमतो केवल साधु, और श्रावकका आभास रूप वनेहुये हो.

॥ और नीचे लिखती है कि-जूठ वोलना, और गालियां देना, सदैव बुरा माना है, ॥

॥ अगर जो तुमको इतना ज्ञान होता तो, यह केवल जूठका ही पूंजरूप, थोथा पोथा लिखनेकी प्रवृत्ति ही क्यौं करते ? तुमेरा ढूंढक पंथमें जूठ विना तो, दूसरी गति ही नही है ? तुमेरा कितना जूठपणा है, सो तुमको देखनेकी इच्छा होती होवें तो, देखो समकित सारका, उत्तररूप " सम्यक्त्व शल्योद्धार " जिससे तुमको मालूम हो जावें,

॥ और यह भी तेरा किया हुवा, सत्यार्थ चंद्रोदय है कि, केवल जूठार्थका उदय है, सोभी यह हमारी किई हुई समीक्षासे, विचार कर ?

। केवल मुखसे साधुपणा दिखानेसे तो कुछ साधु नही बन सकोंगे ? साधुपणा बनेगा तो आचरणसे ही बनेगा ।

केवल कथनरूप तुमेरा सत्यवादीपणा है सो तो, तुमेरा आत्माका निस्तार करनेवाला कभी नहोगा ॥

ढूंढनी—पृष्ट. १५७ ओ. ४ से. प्रश्नके विषयमें लिखती है कि—जैनियोंमें जो—सनातन ढूंढीये जैनी हैं, वह मूल सूत्रोंको ही मानते है, पुराणवत्—ग्रंथोंके गपौडे, नहीं मानते है, और जो यह—पीले कपडोंवाले, जैनी हैं, यह पुराणवत्—ग्रंथोके गपौडोंकों, मानते हैं, क्यों जी ऐसे ही है ॥ उत्तर—और क्या ॥

समीक्षा——पाठकवर्ग । दृष्टांत होता है सो, एक देशीय ही होता है । यह ढूंढको नतो तीनमें, और न तो तेरमें, और नतो छपनके भी मेलमें, तो भी अपने आप सनातन बन बैठे है ? । जैसे कि—एक मूढ । धनाढय, विचक्षण—वेश्याका, भावको समजे विना, अपनी मानके, और सर्व धन गमादेके, परदेशसे—मित्रकी साथ, धन भेजनेलगा । उस मित्रने उसी वेश्यासे—प्यारेका, नाम पुछा तो वह मूढ धनाढय न तो तीनमें, न तो तेरमें, और न तो छपन के भी मेलमें, तैसे ही यह ढूंढको चोरासी गछमेंसे एक भी गछकी शाखा विनाके, एक गृहस्थसे अभी सन्मूर्छन रूप उत्पन्न होके अपने आप जैनमतकी चातुरी समजे विना सनातन बनेको जाते है ?

सो कैसें बन जायगें ! क्योंकि जिन ढूंढकोका प्राचीनपणेका

एकभी निशान नही है ।। कभी दिगंबर वारसा करनेको जावे तब तो, कुछ विचारभी करना पडे, परंतु तुमेरा—न तो गाममें घर, और नतो सीममें—खेत, किस कर्तुतसे—सनातनपणेका, दावा करनेको जाते हो ? ।।

फिर लिखती क्या है कि—जूठ बोलना तो—सदैव बुरा, माना है । वैसा साध्वीपणाभी दिखाना, और गड्डे के गड्डे भरजावे इतना तो जूठा गप्प मारना ? तो क्या केवल वचन मात्रसें साध्वीपणा होजाता है ? ।।

फिर लिखती है कि—हम पुराणवत्—ग्रंथोंके गपौडे, नही मानते ।। हे ढूंढनी ? तूंने क्या जैनोंके ग्रंथोंको, पुराणवत् गपौडे समजे ? जो जूठा बकवाद करके जैनके लाखो सिद्धांतोंको कलंकित करती है ? । तूंने इतनाभी ज्ञान नही है कि—जो सर्वज्ञ पुरुषोंका ज्ञान—अनंत रूपमें था, उनकाही बीजरूप खतवनीके प्रकारसे—सूत्रोंमें गूंथन करके, मेल आदि वहियोंके प्रकारसे—प्रकरण ग्रंथोंमें विस्तार किया गया है, उनको पुराणकी तरां गपौडे लिखती हुई तेरेको जरासी भी लज्जा न आई ? जो सर्वज्ञोंका वचनोंको—अल्पज्ञकी साथ जोड देती है ? । क्यों कि—द्रव्यानुयोगमें, जो कर्म प्रकृतियांका विस्तार, जैन मतका मूल भूत है सो—प्रकरण ग्रंथोंके विना, मूल सूत्रोंमे—कभी न मिल सकेगा, सो क्या पुराणकी तरां गपौडे हो जायगे ? । और कथानु योगमें—२४ तीर्थंकरो काचरित्र, और चक्रवर्त्तीयांका चरित्र, बलदेव, वासुदेव, आदिका चरित्रोंका विस्तार भी—मूल सूत्रोंमें, कभी न मिल सकेगा ।। सो क्या गपौडे कहती है ? तो पिछे तेरेही ढूंढके जैन रामायण, ढाल सागर, आदि वांचके किसवास्ते अपनी पेट भराई करते है ? । अ-

गर बांचते है तो-सर्वज्ञके अनुयायियांका वचनको, पूराणके-गपौडे की साथ कैसें जोडदेते हो ? तुम ढूंढकोको हम कहां तक शिक्षा देंगे ?

और जिस ग्रंथोंके विना, तुमेरी भी पेट भराई होती नही है, तैसें अलोकिक तत्वरूप ग्रथोंको गपौडे कैसे कह देती है ? । हम तो यही समजते है कि-तेरी तुछ स्त्री जातिको, कोई दो अक्षर-टूं-टां-कर ने मात्र आनेसे, उनका गर्व-तेरे हृदयमे, नही समाता हुवा-महा पुरुषोंकोभी, यद्वा तद्वा करनेको, वहार निकल पडा होगा, नही तो इतना-असमंजस, क्यों वकती ? । अवीभी अपना आत्माका निस्तारका मार्गकी, ढूढकर कि जिससें तेरेकुं, और तेरे आश्रितोंको, वीतराग देवका मार्गकी, अवज्ञा करने रूप, महा मायश्चितसे, अनंत संसारका भ्रमण करना-न पडें ? । हम तो तुमेरा हितकेही वास्ते कहते है, आगे जैसी तुमेरी इच्छा ॥ इत्यलं

ढूंढनी—पृष्ट. १९७ से-साढेचारसो, और अढाईसो वर्ष, १ लोंका, २ लवजीको, होनेका प्रश्न उठाके-। पृष्ट. १९८ में, लिखती है कि-१ लोंकेने तो, पुराने शास्त्रोंका उद्धाराकिया है, नतो नयामत निकाला है, न कोई नया कल्पित ग्रंथ-बनाया है.

औरं २ लवजीनेभी-स्थिलाचारी यतिगुरुको छोडके, शास्त्रोक्त क्रिया करनी-अंगीकार किई है । न कोई नया मत निकाला है, न कोई पीतांवरियांकी तरह, अपने पोलल्कोनेको, चालचलन के अनुकुल, नये ग्रंथ-बनायें हैं ॥ हां यह संवेग पीतांबर, (लाच्छापंथ) अढाईसो वर्षसे निकला है ॥ वैशा लिखके, चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग २ के अंतिमकी, पृष्ट १९४ में-श्रीयशोविजयजी, और सत्य विजयजीने किसीकारणके वास्ते रंगे है. वैशा प्रमाण देती है ॥ फिर. पृष्ठ. १६० ओ. २-सो कारण कोई वैसाही पुरुष दूर करेगा, एक

मैथुन वर्ज, कारणे करनेका निषेध नही है। उसमें तर्क करती है, कि, जूठ बोलना, चोरी करना, कच्चापानी पीना, भी सिद्ध हो गया, धन्य निशीथभाष्य, धन्य आप ॥

फिर. पृष्ट. १६१ से–पीतांबरियोंका–कल्पित नया मत निकला है, जिसको २५० वर्षका अनुमान हुवा है, कई पीढियें एलियारंग वस्त्र धारी रहे है, कई कत्थेरंग वस्त्र धारी रहे है, मन माना जो पंथ हुवा ॥

फिर. पृष्ट. १६२ से–आत्मारामजी, पहिले सनातन ढूंढक मतका, श्वेतांबरी साधुथा, जब सूत्रोक्त क्रिया ना सधाई, और रेलमें चढनेको, दुशाले, धुस्से, ओढनेको, मोलदार औषधियेंकी डब्बियों मंगाकर खालेनेको, माल असबाब रेलोमें मंगालेनेको, ढूंढकमत छोडके, गूजरात में जाके, रंगे वस्त्र धारे.

फिर. पृष्ट. १६३ तक–यही बातमें गप्पदीपिकासमीरका प्रमाण दिया है.

फिर धनविजयकी पोथीका प्रमाणसे। और बूटे रायजीका प्रमाण देके, सर्व गुरुओंको असंयमी ठहराये है.

समीक्षा—हे ढूंढनीजी लोंकेने, पुराना शास्त्रोंका उद्धार किया है, ऐसा तूं कहती है, तो हमपुछते है कि–पुराना शास्त्रोंका उद्धार किसरीतिसे कियाथा! क्या मच्छावतार धारणकर कृष्णजीने जैसें, समुद्रमेंसे वेदोंको ढूंढलाके, उद्धार कियाथा वैसें लोंकेने–शास्त्रोंका उद्धार कियाथा ? १ ॥

अथवा तेरीही ज्ञानदीपिका के लेख प्रमाणे जैसे कि–ढूंढत २ ढूंढलिया, सब वेद पुराण कुराननमें जोई। ज्यूं दही माहेंसे मखन ढूंढत, त्यूं हम ढूंढियोंका मत होई १ ॥ तैसें वेद, पुराण, कुरान, आदि बातोंका संग्रहकरके शास्त्रोंका उद्धार कियाथा ? २ ॥

अथवा देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण महाराजने, जैसें सर्व मुनियों का मुखाग्रपाठका संग्रहकरके, शास्त्रोंका उद्धार कियाथा, तैसें यह लोंकेने शास्त्रोंका उद्धार कियाथा ? ३ ॥

किसविधिसे शास्त्रोका उद्धार किया दिखाती है ? ॥ न तो प्रथम प्रकार बनसकता है क्योंकि, जैन सिद्धांतको, कोई समुद्र में लेके नही गयाथा, जो प्रथम प्रकार बनसके ?

और न तो तिसरा प्रकारभी बनसकता है, क्यौंकि—लोंका तो केवल गृहस्थही था, तो पिछे साधुके मुखाग्रका पाठका—संग्रहही कि सतरां करनेवालाहो सकता है ?।

हां दूसरा जो, वेद, पुराण, कुरान, आदि वातोंका, संग्रह करके शास्त्रोंका उद्धार किया होगा तो, ते बात तो तूंही जानती होगी ! हमको तो मालूमही नही है ॥

॥ फिर लिखती है कि–न तो नया मत निकाला है, न कोई नया कल्पित ग्रंथ बनाया है । जब लोंकेने, नयामत नहीं निकाला है तो, किस गुरुका पाउको पकड कर चलाथा ? सो तो दिखानाथा ? । इस बातमेंभी तूं क्या दिखा सकेगी ? सो तो (लोंका) कोरा गृहस्थही था, और कोरा गृहस्थ होनेसे—उतना ज्ञान ही कहांथा, जो ग्रंथ बनासकें ! इस वास्ते यह तेरा लेख ही विचारशून्यपणेका है ॥ और जो आत्मारामजी महाराजने–जिन प्रतिमाजीको उत्थापकका बीजरूप, लोंकेको हुये, साढाचारसो वर्षका अंदाज लिखा है, सो सत्यही लिखा हुवा है । देख काठियावाड तरफसे, प्रसिद्ध हुयेला तेरा ढूंढक मत वृक्षमें । और देख जैनहितेछुपत्र वाला तेरा वाडीलाल ढूंढकनेभी सो पत्रिकाओ, गाम गाममें भेजके, ढूंढक मतकी हकीकत मंगवाके, चोकसपणे " स्थानकवासी डिरेक्टरी " बहार पाडी है उसमें, और तेरें ढूंढकोंकी

पटावलीमेंभी यही लिखा है । और पीछेसे लोंकेकीही परंपरामें- यह लवजीभी अंदाज अढाईसोही वर्ष पहिले हुवा है, और यह मुखपर मुहपत्ति चढाना सरु किया है, सो तो तूंभी अपनी ज्ञान-दीपिकामे कवुल ही कर चूकी है, किस वास्ते अब अपनी पोलको लुकाती फिरती है ? और जो लवजीने, नयामत नही निकाला कहती है सो ठीक है, क्यौंकि लोंकेकीही परंपरामेथा, और क्रोधी होनेसे, गुरुके साथ लडपडा, और अलग होके,मुखपर मुहपत्ति चढाने मात्रकाही अधिकपणा किया है. ॥

और जो तु कहती है कि-न कोइ पीतांबरियोंकी तरह, अपने पोल लकोनेके वास्ते, अपने चाल चलनके-अनुकूल, नये ग्रंथ बनाये है ॥ सो भी तेरा कहना ठीकही होगा,क्यौंकि क्रोधीला स्वभाववाले लवजीको, प्रथमसे ही अयोग्य समजके उनको, उनके गुरुजीने पढाया ही-नही होगा, तो पिछे नया ग्रंथ ही क्या बना सकनेवाला था ? यह तो तुमेरी परंपरा ही-वैशी चली आती है । आज वर्त्तमानकालमें भी देखलें तेरे ढूंढकोंमे, तूं ही योथा पोथाको प्रगट करवायके, पंडितानी पणाको दिखारही है ? और अपनी अनेक प्रकारकी पोलको भी, लुकानेका प्रयत्न कर रही है ? ॥ परंतु-अढारे वल्याउंटना अंग वांका, कहो ढांकीये तो रहे केम ढांक्यां । तैसें तुम ढूंढकोंके भी, सर्व प्रकारके अंगोअंग वांके होनेसें, तूं एक स्त्री जाति मात्र होके, किस तरांसे ढक सकेगी ? सोतो उघड पडे विना कबी भी नही रहनेवालें होंगे ? ॥

॥ और लिखती है कि-यह संवेग, पीतांबर, (लट्ठा पंथ) अढाईसो वर्षसें-निकला है ॥ अब इसमें ढूंढनीको, न तो पंथकी, और नतो मतकी खबर है कि, पंथ किसको कहते है, और मत भी किसको कहते है । क्यौं कि, यह संवेगीयोंने तो, जो जो पूर्वमें म-

हान् महान् आचार्यों हुयें है, उन सभी आचार्योंका-वचनको, शिरसा वंद्य मानके, उनके ही अनुयायी हुये है, इस वास्ते मतवादी, या पंथी, कभी नही बन सकते है, और तुम ढूंढक है सो तो, मनमें आवे सोई, एक वखत तो मानलेना, और वही वात दूसरी वखत नही मानना, वैसें ढोंगी होनेसे, मताग्रही, हठीले, कुमार्गी, आपां पंथी, सभी प्रकारके रूपको धारण करनेवाले बने हुये है? परंतु संवेगी तैसे नही है ॥ इस वास्ते लाछा पंथ विगरे कहकर जो उपहास्यपणा करती है, सोतो अपना कलंक दूसरेको चढानेका ही प्रयत्न कररही है? परंतु यह जूठा कलंक कभी न चढ सकेगा अगर जो तूं, एक पीतवस्त्र मात्रका कलंक देके-कलंकित करनेको चाहती होगी तो, उसको तो हम कह चुके है कि, कारण वास्ते किया हुवा है, जो कारणके लिये किया है सो दूर होजावे तो, अबीभी छोड देनेको तैयार है ॥ इस वास्ते नतो मत गिना जावेगा नतो हठ भी कहा जावेगा ॥ अगर जो हठ या मत, कहती होंगी तो, तेरे ढूंढकमें तो, सैंकडो ही मतकी, गिनती करनी पडेंगी, क्यौं कि-तेरे ढूंढक तो, केवल हठ पूर्वक ही, कोई तो नील वस्त्रधारी वना है, कोई तो अघोर पंथी बना है, और कोई तो महा अघोर पंथकारूप धारण करके फिरता है, । और प्रतिक्रमण क्रिया विगरेमे अनेक प्रकारका हठ ही पकडकर अपने आप मोक्षकी मूर्त्तियां बन बैठे है, तैसें संवेगी कुछ हठकरके-पीतवस्त्रको, नहीधारण करते है, जो तेरे ढूंढकोंके, सैंकडों मतकी साथ, संवेगीको भी, कलंकित कर सकेगी? ॥ क्यौं कि-यह पीतवस्त्र किया है सो, आचार्योंकी सम्मतीसे ही-किया गया है, और आचार्योंकी सम्मतीसे-दूरकरनेको भी, तैयार ही बैठे है । इस वास्ते तेरी खीचडी कुछ इसमें-नही पकनेवाली होगी । और पीतवस्त्र वास्ते जो तूंने

प्रमाण दिये है, सोतो हमारा गुरु वर्यका लिखाहुवा हमको मंतव्य है, इसमें तेरी सिद्धि क्या होगी ? ॥

और जो मैथुन वर्जके, कारणसर-वस्त्रादि, रंगनेकी-आज्ञा दिखाई है, सो भी योग्य ही है, क्यौं कि, जिसको-ब्रह्मव्रत, पक्का होगा, उनको दूसरा कोई भी अनुचित कार्य, करणेकी-जरुरही नही रहती है, इसी वास्ते शास्त्रकारने भी, उसबातकी ही सकताई दिखाई है, तुम ढूंढकों तत्त्वतो समजते है नही, और जूठा बकवाद ही करउठते हो ? ॥

अब इस बातमें, ज्यादा तपास करना होवें तो, तूं ही तेरा जन्मके आचरणको देखके, अनुभव करले, हमारे मुखसे किस वास्ते कहाती है ? और अधिक तपास करनेकी मरजी होवे तो, मारवाड, मालवा, काठियावाड, दक्षिण, आदिमें फिरके देखले कि, मुखसे दया, दया, पुकारनेवाले, इस चौथे व्रतमें, कितने पक्के है ॥ इसवास्ते जो जूठीं कुतर्कों करनी है, सोई-कुपचीरंभपणेका, स्व-भाव ही प्रगट करना है, ॥

॥ और जो एलिया रंग दिखाती है, सो तो तेरे ही ढूंढक मतमें हुये है, देखनेकी इछा होवें तो, देखलें मालवा, मार-वाड देशमें ॥

और आत्मारामजी महाराज-प्रथम ढूंढियेहीथे, सोतो तेरा कह-ना-ठीकही है, परंतु ढूंढियोंको-सनातनपणे, नही समजा, केवल-मूढ पणे का-मत, समजके, छोडदिया-किन तो जिसका सपडामूल, और नतो सपडीडाल, विनामावापके लडकेंकी तरहं, यह ढूंढक मतभी विना गुरुका समजके ही छोडा है ?॥ अगर तुमभीविचारपर आजावोंगे तो, तुम कोभी शृंग, और पुंछ, विनाकाही ढूंढकमत-मालूम होजायगा ॥

और जो तूंने, लिखा है कि–सूत्रोक्त क्रियाना सधांई, और रेलमें–चढनेको, दुशाले, धुस्से–ओढनेको, मोलदार औषधियों–खानेको, ढूंढकमत छोडके रंगेवस्त्र धारे ॥

अबइसलेखमें, तूंने केवल कुपत्तीपणे काही स्वभाव प्रगट कियां हैं, प्रथम तुमेरे ढूंढकोंमें–सूत्रोक्त क्रियातो एकभीनही है, जितना तुमेरा चालचलन है, सो केवल–मनकल्पितही है, देखना होवे तो देखलो सम्यक्त्वशल्योद्धार पृष्ट. १८ सेंलेके २८ पृष्ट तक, यहजूठी चातुरी तुमेरी कहांतक चलेगी ?॥ और रेलपर चढनेका जो कलंकदिया है सोभी तूंने, कुपत्ती रन्नपणे काहीं आचरण किया है, क्योंकि इस महात्माने नतो कभी रेलपर चढनेकी इच्छा किई है, और नतो इच्छा पूर्वक कभी रेलपर चढनेकोभी गये है, तो पिछे तेरा जूठा कलंक चडानेसे–कुछ कलंकित नहोसकेंगे.

और तूंने जो एकाद असंयमी कीटीका करके, सबको असंयमी ठहरानेका प्रयत्न किया है, सो भी मूढपणाही किया है, क्योंकि तेरे ढूंढकोंमेभी असंयमी, तेरेको जितना चाहीताहोगा, उतनाही हमनिकाल देते है, प्रथम तो तेरीही चर्या तूं अपने आप निहालें कर देखलें, पीछें दूसरोंकों दूषितकरनेका प्रयत्नकर ? धन्य तो उनको है कि–अपने गुणमें मग्नहोके, दूसरोंकोभी गुण में वासितकरनेका प्रयत्न करें ? बाकी कुपत्ती रन्नपणाकरने वाले तों, बहुतही दूनीयामें पडे हुये है. इत्यलं प्रपंचेन.

ढुंढनी–पृष्ठ. १६४ से लेके, पृष्ठ. १६६ तक, वस्त्रकाही विचारमें, चातुरी दिखाई है कि--आचारांग सूत्र अध्ययन सातमे वस्त्रका रंगना, साफ मना है ॥

समीक्षा–आचारंगकी जो साक्षी दीई है, उसमें तो न

धोयेज्जा, नं रंगेज्जा, " दोनोकीही मनाई है, तो तुं धोयेला वस्त्र पहेनके क्युं फिरती है ? केवल अपना छिद्र ढकना, और दूसरमें नही होवे उसमें छिद्र देखनेका प्रयत्न करना ? और पाठका अर्थ, और उनका तात्पर्य समजे विना केवल जिनको तिनको, दूषित ही करना और अपना चलनको छुपाना, इसमें तुमेरी क्या सिद्धि, होनेवाली है ? ॥ इस विषयका विवेचन करके ही आये है, इसवास्ते पिष्टपेषणं नही करते है.

ढूंढनी—पृष्ठ. १६६ ओ ७ से सम्यक्त्व शल्योद्धारादि बनाने वाले, मिथ्यावादी है, क्यौंकि—उसमें लिखा है कि—ढूंढिया मत, अढाईसो वर्षसे निकला है, और चर्चामें सदा पराजय होते है.

परंतु हमने तो पंजाव हातेमें, एक नाभामें, संवत् १९६१ में चर्चा, देखी, उसमें तो पूजेरोंकीही—पराजय हुई ॥ फिर. पृष्ठ. १६९ से—लिखा है कि, शिवपुराण वनानेवाले, वेद व्यासको हुयें ५ हजार वर्ष कहते है, जब भी जैनी—ढूंढिये हीथे, क्यौंकि, शिव पुराण—ज्ञान संहिता, अध्याय २१ के श्लोक २—३ में लिखा है—

> मुण्ड मलिन वस्त्रंच, कुंडिपात्र समन्वितं ।
> दधानं पुञ्जिकहाले, चालयंते पदेपदे । २ ।

अर्थ—सिर मुंडित, मैले (रज लगे हुये) वस्त्र, काठके पात्र, हाथमें—ओघा, पग २ देखके चलें, अर्थात्—ओघेसे कीडी आदि जंतुओंको, हटाकर पग रखें ॥ २ ॥

> वस्त्र युक्तं तथा हस्तं, क्षिप्यमाणं मुखे सदा ।
> धर्मेति व्याहरंतं तं, नमस्कृत्य स्थितं हरे । ३ ।

अर्थ—मुख वस्त्रका (मुखपत्ती) करके ढकते हुए—सदा मुखको, तथा किसीकारण मुख पत्तीको—अलग करें तो, हाथ मुंहके अगा-

डी देलें, परंतु उघाडे मुख न रहें (न बोले) इत्यादि ॥ लिखके-फिर पृष्ट. १७१ ओ. १२ से-अब देखो जैन साधुका, वेद व्यासके समयमेंभी-यही भेष था । तो सिद्ध हुवा कि ढूंढक मत, प्राचीन है, २५० वर्षसे निकला, मिथ्यावादी-द्वेषसे, कहते है ॥

समीक्षा—अरे हठीली, अभीतक अपना जूठा हठको भी छोडती नहीं है ! तूंही तो तेरी, ज्ञान दीपिकामें—लिखती है कि, प्रथम मुखपर मुहपत्तीको चढानेवाला, ' लवजी ' को हुये अढाईसो-वर्ष, हुये है, और पंजाबी ढूंढियें श्रावक व्याख्यान उठनेके अंतमें, भजनमें भी कहतेथे कि--प्रथम साध लवजी भया, द्वितीय सोमगुरु भाय ॥ ऐसें कहनेका परिपाटहीथा, अब इहांपर, अपना पोल लकोनेके वास्ते, सत्य शिरोमणि पणा-प्रकट करती है ? । और सम्यक्त्व शल्योद्धारवाले महात्माको, मिथ्यावादी कहती है ? । वाहरे तेरी चातुरी ? जगेंजगें पर स्त्रीजातिका, जूठा स्वभावको ही दिखाती है ?

और ढूंढिये, चर्चामें-सदा पराजय होते है. वैशा जो-सम्यक्त्व शल्योद्वारमें लिखा है, उसमे भी क्या जूठ लिखा है । जो तूं महात्माको जूठपणेका-कलंक देती है ? क्यौंकि-पांच सात जगें तो मेरी ही समक्ष, ढूंढिये साधु, चर्चाके समयमें, भगजानेका बनाव बन चूका है, तो न जाने उस महात्माके वखतमें, क्या क्या बनाव हुवा होगा ॥ देख प्रथम, टांडा अहियापुरमें, तेराही-सोहनलाल कि जो आजकाल पूज्य पदवी लेके फिरता है, सो हमारें पूज्य-कमल विजयजीके इस्तिहार निकालनेपर अपने इस्तिहारसें सभामें-आनेका कबुल होके, और अमृतसरसे-पंडितको भी बुलवाके, सभाके समय-अनेक तेडे करने परभी, हाजर न हुवा, और खिड

कीमेंसे—सभाकी कारवाई भी देखता रहा। जबमें भी उहां हा-जरहीथा, और एक हाजर कविने,

गजलमें कविता भी, सभाके अंतमें गान करके सुनाईथी सो नीचे लिख दिखाता हुं.

गजल.

अरे ढूंढीयो तुम, गजब क्या किया;
जो शास्त्र भूलाकर, बता क्या दिया । १ ।
तुमे अकलके ढोर, नहि जानते;
जो शास्त्र उलट, अर्थ पेछानते । २ ।
मुनि कमलविजकी, सभाथी सोहनलालसें;
एतकरार पायाथा, टांडेमें इस्तिहारसे । ३ ।
संवत् १९४७ फाग, चउदशके दिन;
सभा बीच बेठेथे, पंडित महासन । ४ ।
मुनिजीने नोट बेठ सभामें दिया;
सोहनलालने आनेसें, इनकार बिलकुल किया ।५।
सभाका बियान, मुजसें होता नहीं;
बडीबात है, मुख कहता नहीं । ६ ।
मुनिने जो शास्त्र, अर्थथा किया;
उसी वख्त परवान, सभाने किया । ७ ।
सभामें न आये तो, समजा गया;
सबो पोल तुमरा, जहार हो गया । ८ ।
अपना अगर, कुशल चाते हो तूंम;
श्री जिन प्रतिमाकी, लेलो शरण । ९ ।
किसीके बकाने से, तूंम ना बको;
पत्ती खोलकर, हाथमें तूंम रखो । १० ।

यथा योग शास्त्र, जब आचार हो;
तब उपदेश करनेको, अधिकार हो । ११ ।
भूले हो आप, भूलाते हो लोक;
भगवानको छोड, चाह ते हो मोख । १२ ।
महबत ल्यों, शरण भगवानकी;
तो सोबत करो, साधु विद्वानकी । १३ ।

और सभाके हूयें बाद, दूसरे दिन-किसी पुरुषने, वजारमें एक इस्तिहार लगायाथा, उसकी नक़ल नीचे. मुजब--

अरे ढूंढियों, क्यूं तडफ तेहो तूंम, तुमारा गुरु, सोन्हलाल हेजी कम, मुनिकमल विजयजीने, चर्चा करी, ईश्वरकी बरकतसें, महिमापरी १ ॥

"अलराकम हूसियार मरद."

यहनीचे संकेतमे लिखके, अपना नामभी दिखायाथा ॥

इति प्रथम बनाव.

अब दूसराभी बनाव सूनलों कि-सेहर हुस्यार पुरके पास जेजो गाममें-यही ढूंढक साधु सोहनलालने, एक आत्मारामजी महाराजजी काविश्वासी-ब्राह्मणकी साथ, आत्मारामजी महाराजजीका लेख-जूठा ठहरानेको, प्रतिज्ञापत्र लिखाकि-मैं जूठा पडजाउं तों, साधु पणा-छोडदउं, नही तो मैं तेरेको-शिष्य बना लउं, अब ते जेजो गामसें उस ब्राह्मणकी पत्रिका, हुस्यारपुरमें हमारें गुरुजीकी पास आनेसे, गुरुजीकी आज्ञालेके, उद्योत विजयजी, कांतिविजयजी-आदि हम ९ साधु ते जेजो में गये, कई दिन तकरार चलतें २ छेवट, सभाकरनेका-मुक़र्रर, हुवा, सभा के वख्त अनेक सभ्यके बुलानेपरभी-तेरा पूज्य न आया, तब हमारे बडे साधु सभा बुला-

ने-विगेरेका मतलब सुनाके-स्थानपर आ गये जबभी मैं हाजर हीथा.
इति दूसरा बनाव.

॥ अब तिसरा बंगीयां सहरकाभी सुनलो कि-जिहां एक मास तक, यही पांच साधुओंकी-तेरा सोहनलाल पूज्यके साथ, तकरार चलीथी, उसमें-फोजदार, कलेक्टर साहेबभी, देखनेको आयें, और हूस्यार पुरका संघभी आया, और मुदतपर हाजर नहीं होनेवालेके दो, दो, हजार रूपैयेकी जामीनगिरीके साथ, सरकारी 'स्टांपपर' लेख लिखनेकाभी सरु करायके, यही तेरा-सोहनलालने, और उदयचंदने, रद करवाया, जबभी मैं हाजर हीथा ॥

॥ इति तिसरा बनाव ॥

॥ अब सुनलो चोथा बनाव—अमृतसर सहरका-संवत्. १९४८ काकि, जहां सोहनलालका, और हंसविजय आदि-हम चार साधुओंका, चौमासा था, वहां तेराही पूज्यने, एक दिन अपना व्याख्यानमें, आत्मारामजी महाराजजीको बकरा होम कराने का लेखका, जूठा कलंक देनेपर, सातसो सातसो इस्तिहार दिया गयाथा, और *आ हिंसा परमो धर्मः इस मथालेका लेखसे, उत्तर देने पर, सर्व सहरके पंडितोंसे, फिट् फिट्के फटकारेसें छेवट तीन कोशका, आंटा लेके, और मुख छुपा करके-भागनाही पडाथा, जबभी मैं हाजर हीथा ॥

॥ इति चतुर्थ बनाव ॥

अब सुनलो, दक्षिण देश, अहंमद नगरमें-चंपालाल ढूंढक

---

* आहिंसा के स्थानमें, आहिंसा, अर्थात् हिंसामेंहिधर्म ऐसा-मथालाका लेख, जाहिर करवायाथा.

साधुके साथका पंचम, वनाव-कि, हम संवेगी साधुको-नवीन देखके, यद्वा तद्वा कहना सरु किया, छेवट निर्नामसें-संवेगीकी निंदारूप गुप्त पत्रिकाओ-छपवाई, उनके उत्तरमें वारंवार, सभा करनेका आव्हान करनेपरभी, एकभी उत्तर न छपवाया, केवल मुखसे-बकवाद, भेजता रहा कि, हम सभामें आवेंगे, छेवट हमने उनके कहनेपरही, दो चार पंडित बुलवाके-दोचार दफे, सभाओभी भरवाई, परंतु अपनी कोटडीसे वहार ही नही निकला, यह बनाव मेराही अग्रेसर पणमे हुवा ॥

॥ इति पंचम बनाव ॥

और प्रथम अमदावाद सहरमें-सरकारी बंधोवस्तके साथ, जेठमल ढूंढिया-आदि। और वीरविजयजी संवेगी आदिके मुख्यपणे। चर्चा हुईथी, जबभी ढूंढिये भगही गयेथे॥ और अमृतसर सहरमें, पट्टीवाला पंडित, अमीचंद घसिटामल्लकी साथभी चर्चा हुई सुनते है, जबभी तेरे ढूंढिये, भगही गयेथे, फिर खानदेशके 'धूलिये' सहरमेंभी, यही अमीचंद पंडितकी साथ-चर्चा हुईथी, जब भी तेरे ढूंढिये, भगही गयेथे॥ तो पिछे सम्यक्त्व शल्योद्धारवाले महात्माके लेखको, जूठा ठहरानेवाली, तूंही जूठका पुतलारूप बनी हुई, किसवास्ते महात्माको जूठा कलंक देती है? और जो तूं लिखती है कि हमने तो नाभेमे ही एक चर्चा देखी है, तो हम पुछते है कि, जब पंजाबमें ही, तेरे पूज्य सोहनलालकी, पांच सातवारी खराबी हुईथी, तब तूं कौनसे पहाडकी गुफामें, बैठीथी? जो तूंने कुछ मालूम ही न रहा क्या यूंही महात्माओंको, जूठा कलंक देनेसे, तुमेरा पाप छुपेगा? कभी न छुपेगा. । और जो तूं लिखती है कि, नाभामे तो, पूजेरांकी ही पराजय हुई, सो भी कैसे समजेंगे,

मुनिश्री वल्लभीवजयजीने यथायोग्य लिखके दिखाभी दि-

या है, तोभी हम यह कहते हैं कि-जूठा पंथका जयतो, तीनकाल मेंभी नहीं होसकने वाला है ? अगर फिरभी जो निश्चयकरनेकी इच्छा होतो, एक जगो मध्यकी नीयतकरके, चार मध्यस्थ पंडितोको बुलवाके, निर्णय करलो कि, तुमेरे ढूंढक पंथमे, सत्यपणा कितना है, सो मालूम होजायगा.

हमने तो यह भी-लोकोके मुखसे, सुनाथा कि-सोहनलालको जब साधु, श्रावकोंने मिलकर पूज्य पदवी दिई, तब लेख करा लियाथा कि, पूजेरोंकी साथ चर्चा करनेको जावोंगे, तब तुमेरी पूज्य पदवी हम न रहनेदेंगे, सो तेरे लेखसे भी यही मालूम होता है कि, यह भी वात सत्यही होगी ? क्यौंकि नाभाकी चर्चाके समयमें सोहनलाल पूज्य आप नही जाता हुवा. पोते चेलेको भेजा अथवा, तुमेरी वात-तुमही जानो, हम निश्चयसें नही कह सकते है,

॥ और विहारीलाल आदि ढूंढियें साधुओंको, मैं, मैं, करनेवालें लिखके, वकरें बनाये हैं, सोभी तेरी अत्यंत उन्मत्तता ही तूंने दिखाई है, इसमें केवल अनुचितपणा देखकेही लिखना पडा है, नही तो हमारा कोई भी संबंध नही है, परंतु तेरी स्त्री जातिमें तुछता कितनी आगई है ?

॥ फिर, लिखती है कि, वेदव्यास हुयें जब भी-जैनी ढूंढिये ही थे, हम पुछते है कि-तुमेरा गाममें तो घर न था, और सीममें खेत न था, तो पीछे क्या तुम ढूंढियोंने-पातालके, विलमें-वास कियाथा ? जो वेदव्यासके समयमें भी तुमही थे ? लेखतो साध्वीपणेका और चलन तो चोर चंचलोंका, जूठ बोलना तो वुरा, और जूठका तो पारावार ही नही, तुमेरी गति क्या होगी ॥

॥ फिर, शिवपुराणका-श्लोक, लिखा है-सोभी जुठा, और

अर्थ किया है, सो भी-जूठा, जहां देखो उहां जूठ ही जूठ ॥ देखिये शिवपुराणके श्लोकोंकी हालत, और अर्थ करनेकी भी चातुरी

मुंडं मलिनवस्त्रंच, कुंडिपात्रसमन्वितं ।
दधानं पुंजिकं हस्त चालयं ते पदे पदे ॥ २ ॥

॥ वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं, क्षिप्यमाणं मुखे सदा ।
धर्मेति व्याहरंतं तं, नमस्कृत्य स्थितं हरेः ॥ ३ ॥

अव देखिये ढूंढनीजीके श्लोककि-मुंडं, चाहिये उहां तो किया है-मुंड । पुंजिकं हस्ते, चाहिये उहां तो किया है-पुंजिका हाले. ॥ २ ॥ । मुखके, स्थानपें-मुख ॥ ३ ॥

॥ अव देखिये अर्थका हाल--पगपग देखके चलें, अर्थात् ओघेसे-कीडी आदि जंतुओंको,हटाकर-पग रक्खे । पाठक वर्ग! ऐसा कौन जैनका साधु देखाकि, जाहेर रस्ता पर, ओघेसें-पुंज पुंजके, पांउको-धरता है ? और कव एसी भगवंतने भी-आज्ञा दिई है ? कि जाहेर रस्तेपर-पुंज पुंजके, पग धरो ? क्यौं कि-शास्त्रकी तो, यह आज्ञा है कि-युग प्रमाण जमीनको देखके-चलना, (अर्थात् चार हाथ जमीन तक-निगा करके चलना) तो पीछे यह ढूंढनी, कहांसें ढूंढके लाई कि, जाहिर रस्तेपर भी, ओघेसें--कीडी आदि जंतुओंको हटाकर, पग रक्खे ? यह क्या दया हुईके, दया मूढता? सो पाठकवर्ग ही विचार करें ? ।

अव तिसरा श्लोकके, अर्थमें-देखो-मुखवस्त्रिका करके-ढकते हुए सदा मुखको, यहतो ठिक है, परंतु तथा शब्दसें-किसीकारण मुखपत्तीको, अलग करें तो, यह तथा शब्दका अर्थ-कैसेंहोगा? और इहां जाहिर वातका-प्रतिपादनमें, किसीकारणका-प्रयोजनही,

क्याहै, ? और आधाही श्लोकका अर्थ करके–धर्मेति व्याहृरंतं इसपदका अर्थतो–कियाही नही, क्योंकि–ढूंढक मतमें, धर्मलाभ, ही देनेके वास्ते नही है तो,फिर अर्थही करेंगे क्या ? तोभी ढूंढनी, अपना ढूंढक मतको–वेदव्यासतक, पुहचानेका प्रयत्न करती है ? हे ढूंढनी ऐसे अघटित प्रमाण देती वखते तूं कुच्छभी विचार करती नही है ? तुमजो बने हुये है सो वनेही है, किस वास्तें ऐसें जूठे प्रमाण दके, आपना उपहास्य करातेहो ? जो सत्य है सोई सत्य रहेगा, कुच्छ पीतलका सोना नही होजाता है. ३ ॥

ढूंढनी——पृष्ठ. १७२ ओ. ५ से–निंदा, जूठ,दुवर्चन, आदि सहित, पुस्तक छपनेमें, पाप लगता होगा ? वैसाप्रश्न उठायके, उत्तरमें लिखती है कि अवश्य लगता है, क्यौंकि लिखने वालेका, और वांचने वालेका, अंतःकरण मलीन होनेसें ॥

॥ फिर. पृष्ठ. १७३ ओ. ६ से–अपने साधु स्वभावसे, विचारें कि–निरर्थक, निंदारूप, आत्माको–मलीन करने वाली, पुस्तक बनानेमें, व्यय करेंगे, उतना समय, तत्व के विचार, व, समाधिमें, लगायेंगे । जिससे पवित्रात्मा हो । मौनही श्रेष्टहै ॥

दोहा–

मूर्खका मुख वंबहै, बोले वचन भुजंग ।
ताकी दारू मौनहै, विष न व्यापे अंग । १ ।

यह समज कर–न लिखे, परंतु वांचतेही–क्रोध आनेसेभी तो, कर्मबंधे ॥

॥ फिर. पृष्ठ, १७४ ओ. २ सें–परंतु मेरी तो सब भाइयोंसे, प्रार्थना है कि–न तो ऐसें पुस्तकें छापो, न छपाओ, क्यौंकि–जैनकी निंदा करनेको तो–अन्यमतावलंबी ही, बहुत हैं, तुम जैनी ही–परस्पर निंदा, क्यौं करते कराते हो ॥

॥ फिर. ओ. १३ से-विधिपूर्वक, धर्म प्रीतिसे, परस्पर मिल-के, शास्त्रार्थ किया करें। मनुष्य जन्मका यहही फल हैकि-सत्या सत्यका,निर्णय करे,इत्यादि। यदि इस पुस्तक के बनानेमें-जानते, अजानते, सूत्र कर्त्ताओ के-अभिप्रायसे, विपरीत लिखा गया हो तो-(मिच्छामि दुक्कडं)

समीक्षा—पाठकवर्ग ! निंदा, जूठ और दुर्वचन, सहित पुस्तक लिखने वालेको, और वांचने वालको-अंतःकरण मलीन होनेसें, पाप लगता है, यह बात तो सत्यही है, परंतु हमको तो इस लेखकी लिखने वाली ही, प्रथमयही कार्य करने वाली दि-खती है, क्यौं कि-जिस जिनेश्वर देवकी-प्रतिमा को, जिनेश्वर सरखी मानके, लाखोभक्त, अपना आत्माका मलीनपणा दूर करने को भक्तिभावसें पूजन कर रहे है, उन सर्व पुरुषों का-अंतःकरण मलीन करनेके वास्ते, इस ढूंढनीने जान बूजके, कई वर्षोंतक, प्रथम अपना ही अंतःकरण महा मलीनरूप बनाके, यह महा पापका थो-था पोथा रूपकी-रचना किई,तो पिछे इनके जैसी ते दूसरी मलीन अंतःकरणवाली कौन ?

अगर जो यह ढूंढनी-महा मलीन अंतःकरण करके जूठा थो-था पोथाकी रचना, करनेकी प्रवृत्ति न करती, तो हमकोभी-हमा-रा तत्वका विचार, और ध्यान समाधिको-छोडकर, इनका पाप, दूर करनेकी-कोईभी आवश्यकता नही रहती, परंतु यह ढूंढनीही पापको ढूंढती है और लोकोंको—उपदेश देके, अपना साध्वीपणा दिखा रही है ॥

अब इनका साध्वीपणा देखोंकि-प्रथम जिनप्रतिमाकोतो-ज-ड, पाषाण, पहाड,-आदि दुर्वचनसे तो, उच्चार करती है। और जिनशासनके आधारभूत महान् महान् आचार्यों कोतो, हिंसाधर्मी

कभीतो मिथ्यावादी । कभीतो कहतीहै कि--अनघटित गपौडे, मा-रनेवाले । और कभीतो–सावद्याचार्य । और कभीतो–स्थिलाचा-री । और कभीतो–लाठापंथी ॥ जो मनमें आवे सोही वकवाद क-रनेको अपना मुखको तो, वंवाही–वनारखा है, और दूसरोंको मूर्ख वनानेका, प्रयत्न करती है । क्या पर्वत तनयाका स्वरूपको धारणकरके, सब दुनीयाका–उद्धार करनेको, जन्मी पडी है ? जो सर्व आचार्योंकोभी, कुछ नही समजके–जो मनमें आवे सोही वक रही है ! अरे ढूंढनी विचार करकें,

जैनशासनके आधारभूत, महान् २ आचार्य ते कौन ? और तूं एक तुच्छ स्त्रीकीजाति मात्र ते कौन ? क्यौं अत्यंत वहकी हुई अपना तुछपणाको प्रगटकर रही है ? तेरी स्त्रीजातिकी बुद्धि ते कितनी ? क्या उन महान् आचार्योंकी–वरोवरी करनेको जाती है? वसकर तेरी चातुरी ।

फिर, लिखती है कि–जैनकी निंदाकरने वालेतो, अन्यमता-वलंवी ही–वहुत है, तुम जैनीही परस्पर–निंदा क्यों–करते, कराते-हो ॥ अगर जो तुम ढूंढकों–अपने आप, जैनरूप समजते होतें तो, प्रथम तो यह पापका पोथाकोही प्रकट करवाते नही, अगर करवा या तोभी–जैनके महा शत्रुभूत वनके,जिस आर्यसमाजियोंने–जैन समीक्षा की पोथी प्रकटकरके, तीर्थंकरोंकी, गणधरोंकी, और महान् आचार्योंकी, निंदा किईथी सो आर्य समाजियों, सरकार मारफते, दंडकापात्र भी वनचूके थें, और उनका पुस्तक भी रद करवाया गयाथा, सो तो जग जाहिरपणे ही जैनके वैरी हो चुके थें उनकी पाससे जूठी प्रशंसापत्रिकाओं लिखवाकर—कवीभी अपनी थोथी पोथीमें, प्रकट करवाते नहीं ? परंतु विना गुरुके तुम

ढूंढकोंको, कोई भी वातकी लज्जाही नही है तो, हम तुमको कहेंगे ही क्या ?

॥ फिर लिखती है कि–विधिपूर्वक परस्पर मिलके, सत्याऽसत्यका निर्णय करें, यह तेरा कहना तो ठीक ही है परंतु जो मनमे आवे सोही, आधार विना, वकवाद करनेको तो, तुमेरा मुख–वंवा रूप वना हुवा है, तो पिछे निर्णय, किस विधसे करसकेंगे ! अगर जो विधाताने—तुमको, सत्यासत्यका विचार करनेको, मति दिई होवें तो, यह हमारी किई हुई, समीक्षासें भी, करसकोंगे ! और यह भी मालूम हो जायगा कि—तुमको सूत्र सिद्धांतका भी कितना ज्ञान है ? परंतु तुमको तो केवल हठ ही प्यारा मालूम होता है ? नही तो गणधरोका वचनसे–विपरीतही, क्यौं लिखते ? ॥

॥ फिर लिखती है कि इस पुस्तकमें,जानते अजानते,सूत्र कर्त्ताओंके अभिप्रायसे–विपरीत लिखा गया हो तो, मिछामि दुकडं ॥ वाहरे तुमेरा मिछामि दुक्कड वाह ! क्या जानके, जो तूने:-१ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, और ४ भाव, यह चार निक्षेप मात्र है–उनका सूत्रके अभिप्राय विना आठ रूपसे लिखा है उनका ? अथवा चैत्य शब्दसे–जिनमंदिर. और जिनप्रतिमाका, साक्षात् पाठ है उनको टीका, टब्बाकारों से भी विपरीत लिखा उनका ? अथवा–द्रौपदी परम श्राविकाको जिन प्रतिमाके स्थानमें–कामदेवकी प्रतिमा पूजनका कलंक दिया उनका ? अथवा महावीर स्वामीके परम श्रावकोका–कयवलि कम्माके पाठसें, जिन मूर्त्तिकी भक्तिको छुडवायके दररोज पितर–दादेयां–भूतादिक मिथ्यात्वी देवोंकी पूजाका कलंक चढाया उनका ? अथवा–अंबड श्रावकका जिन मूर्त्तिके वंदनादिकमें गपड सपड अर्थ करके दिखाया उनका ? अथवा

जंघाचारण मुनियोंकी पाससें शाश्वती जिन पातिमाकी स्तुतिके स्थानमें नंदीश्वर द्वीपादिकमेभी ज्ञानना डेरकी स्तुति करवाई उनका ? अबमिछामि दुक्कडं देती है तो क्या यह जानके किया हुवा सूत्रोंका उत्थापनारूप अघोर पापसे, एक मिछामि दुक्कड मात्रसे छुटसकेगी ! जो लिखती है कि, जानते किया हुवाकाभी मिछामि दुक्कडं ॥

हांजो कोई अजानपणे, दृष्टि दोष हुवा होतो, पश्चात्ताप करने सेभीछुटसके, परंतु तूंतो टीका, टब्बाकार, विगेरे सर्वमहापुरुषोंसे, विपरीतपणे तो लेखलिखनेको तत्पर हुई है, तो पीछे एक मिछामि-दुक्कडदेने मात्रसे कैसे छुटसकेगी ? ॥ और यह तेरा उत्सूत्र प्ररूपण-रूप लेखको, अनुमोदन देनेवालेंभी तेरेहीसाथी क्यौंन होंगे? क्यों-कि सूत्रका एकभी अक्षरका लोपकरने वालोंको, अनंत संसारी कहा हुवा है, ऐसा मुखसें तो तुमभी कहतेहो और तुमतो सैकडें शास्त्रोंका, और सैकडों पृष्टोंपर-मूल सूत्रोंका लेखकोंभी, और हजरो महान् जैनाचार्योंकाभी-अनादर करके, अपना मूढ पंथकी सिद्धि करनेके वास्ते-तत्पर हुयेहो, तो पीछे कल्याणका मार्ग ते कहांसें हाथ लगेगा ? हमने जो यह कहा है सोकुछ-द्वेषभावसें नहीं कहाहै, जो शास्त्रकारोंका अभिप्रायसें मालूम हुवा सोही कहा है ॥ इत्यलमधिकेन ॥

॥ अब ग्रंथकी पूर्णा हूति ॥

॥ किं विघ्नौघपक्षतिक्षमौघमयी किं पुण्यपेटीमयी, किं वात्सल्यमयी किमुत्सवमयी पावित्र्यपिंडीमयी । किं कल्पद्रुमयी मरुन्मणिमयी किं काम दोग्धीमयी, मूर्त्तिस्ते मम नाथ कां हृदि गता धत्ते न रूपश्रियं ॥ १ ॥

अर्थ—हे नाथ यह तुमेरी अलोकिक भव्यस्वरूपकी-शांत मूर्त्ति हैसो, क्या विश्व जे जगतहै उनका उपकार करनेका सामर्थ्यवाली है? अथवा क्या जगतका पुण्यकी रक्षा करनेके वास्ते एक पेटीके स्ववरूपकी है? अथवा क्या जगतकी सर्व प्रकारसें वत्सल्यताके करणेका स्वरूपकी है? अथवा क्या जगतको पवित्रता करनेका एक पिंडके स्वरूपकी है? अथवा क्या जगतका दालिद्र दूर करनेके वास्ते कल्प वृक्षके स्वरूपकी है? अथवा क्या जगत्का चिंतित अर्थकी संपत्तिको देनेके वास्ते चिंतामणि रत्नके स्वरूपकी है? अथवा क्या जगत्को इछित वस्तुकी प्राप्ति करनेके वास्ते कामधेनुके स्वरूपकी है? हे भगवन् मेरा हृदयमें प्रकाशमान हुई किस किस रूपकी लक्ष्मीको धारण नही करती है? अर्थात् जगतमें लोकोंकी कामनाको पूर्ण करनेवाली जो जो सिद्ध वस्तुओं है उनकाही स्वरूपसें प्रगटपणे भासमान हो रही है ॥ १ ॥

॥ इति श्री विजयानंद सूरीश्वर लघुशिष्येन अमरविजयेन सत्यार्थ चंद्रोदयजैनोत्तररूपं, ढूंढक हृदयनेत्रांजनं संयोजितं तस्य प्रथम विभाग स्वरूपं समाप्तं ॥

॥ इति ढूंढक हृदयनेत्रांजनस्य प्रथमो विभागः समाप्तः ॥

॥ अथ ग्रंथका तात्पर्य प्रकाशक दुहा बावनी ॥

लिख्यो लखण निखेपको, फिर लिख्यो है पाठ ।
ढूंढनिने उस पाठमें, किइ हैं नाठा नाठ ॥ १ ॥

तात्पर्य—हमने जो यह—नेत्रांजन ग्रंथ, बनाया है, उसमें प्रथम मंगलाचरण लिखा है । और ग्रंथ करनेका प्रयोजन लिखके, पिछे पृष्ट. २ सें १४ तक—चार निक्षेपका लक्षणके—चार श्लोक, लिखे है । पिछे पृष्ट. १७ सें २६ तक—श्री अनुयोगद्वार सूत्रका पाठ, लिखा है । पिछे पृष्ट. २६ सें ३० तक—ढूंढनीजीके तरफका—लक्षण, और त्रुटक सूत्रका पाठ, लिखा है ॥ १ ॥

अरस परस के मेलसें, किई समीक्षासार ।
जूठ कदाग्रह छोडके, चतुर करोनि विचार ॥ २ ॥

तात्पर्य—ढूंढनीजीका लेख, और सिद्धांतकारोंका लेख, इन दोनोंका अरस परसके मेलसें—पृष्ट. ३१ सें ४१ तक—चार निक्षेपके विषयमें, विचार करके दिखलाया है । उसका विचार-हे चतुर पुरुषो, तुम अपने आप करके देखो, तुमको भी यथा योग्य मालूम हो जायगा ॥ २ ॥

चार निखेप हि सूत्रमें, कहें ढूंढनी आठ ।
केवल किई कुतर्क हैं, नहीं सूत्रमें पाठ ॥ ३ ॥

तात्पर्य—एकैक वस्तुमें, चार चार निक्षेप, सामान्यपणेमें करनेका, सिद्धांत कारोंने कहा है, परंतु उसका परमार्थको—समजे विना, ढूंढनीजीने स्व कल्पनासें, दो दो विभाग करके-आठ वि-

कल्प, खडे किये है। सो केवल कुतर्क ही किई है। परंतु जैन सिद्धांतोमें कोई ऐसा पाठ नहीं है। देखो इनका विचार पृष्ठ. ४१ सें ४७ तक ॥ ३ ॥

तीर्थंकर भगवानमें, काल्पित किया निखेप।
उलट तत्त्व कथने करी, किया कर्मका लेप ॥ ४ ॥

तात्पर्य—ढूंढनीजीने ऋषभदेव भगवानमें भी-चार निक्षेप, कल्पित दिखाके, प्रथमके त्रण निक्षेप-निरर्थक, और उपयोग विना के ही ठहराये है। परंतु चार निक्षेपमेंसें--एक भी निक्षेप निरर्थक नहीं है। यह तो विपरीत लेखको लिखके ढूंढनीजीने—अपना आत्माको, कर्मसें लेपित किया है। देखो इसका विचार. नेत्रां. पृष्ठ. ४७ सें ५२ तक ॥ ४ ॥

मूरतिमेंहि भगवानको, करावे चार निखेप।
वस्तु भिन्न जानें बिना, भया हि चित्त विखेप ॥ ५ ॥

तात्पर्य—ढूंढनीजी भगवानकी, आकृति मात्रमें ही, भगवानके—चारों निक्षेप, हमारी पाससें करानेको चाहती है, परंतु इतना विचार नहीं कर सकी है कि-मूर्त्तिमें, पाषाण रूपकी वस्तु ही-भिन्न प्रकारसें, दिख रही है ॥ तैसें ही इंद्रसें—गूजरका पुत्र रूप वस्तु भी, अलग स्वरूपकी ही है॥ और खानेकी मिशरीसें—कन्यारूप वस्तु भी, अलग है ॥ इस वास्ते इन सब वस्तुओंका—चार चार निक्षेप भी, अलग २ स्वरूपसें ही, किये जाते है। देखो इस बातका विचार, नेत्रां. पृष्ठ. ५३ सें ७१ तक ॥ ५ ॥

मूर्त्ति स्त्रीकी देखके, जगें कामिको काम।
जिन मूर्त्ति स्युं क्यौं नहीं, भक्तको भक्ति ठाम ॥ ६ ॥

तात्पर्य—जब स्त्रीकी मूर्त्तिसें, कामी पुरुषोंको–काम जागता है, तो पिछे—तीर्थंकर देवके भक्तोंको, तीर्थंकरोंकी-मूर्त्तियांको देखके, भक्तिभाव, क्यौं न होगा? अपितु अवश्य मेव होनाही चाहिये। देखो इस बातका विचार नेत्रां. पृष्ठ. ७१ सें ७२ तक ॥६॥

मूर्त्ति स्युं ज्यादा समज, नामसें नहि तादृश।
तो तीर्थंकर मूर्त्तिसें, ढूंढकको क्यौं रीस ॥ ७ ॥

तात्पर्य—ढूंढनीजीने लिखा है कि-नाम सुननेकी अपेक्षा, आकार देखनेसें-ज्यादा, और जल्दी, समज आती है। तो पिछे तीर्थंकरोका-नाम मात्रको श्रवण करनेसें, आनंदित होनेवाले तीर्थंकरोंके भक्तोंको, तीर्थंकरोंकी ही भव्य मूर्त्तियांको देखनेसें, क्यौं रीस आती है?। क्यौं कि-पशु, पंखी भी—आकार देखनेसें, विशेषपणे ही-समजुति, करलेते है। तो पिछे जो मनुष्यरूप होके, समझे नहीं, उनको क्या कहना?। देखो इसका विचार. नेत्रां. पृष्ठ. ७२ सें ७४ तक ॥ ७ ॥

अपनी स्त्रीकी मूर्त्तिसें, लाज्यो मल्लदिन तेह।
जिन मूर्त्तिसें हि ढूंढको, न धरें किंचित नेह ॥ ८ ॥

तात्पर्य—ढूंढनीजीने-लिखा है कि, मल्लदिन कुमारने, चित्रशालीमें मल्लि कुमारीकी मूर्त्तिको देखके लज्जा पाई, और अदब उठाया। तो पिछे वीतराग देवके भक्त होके, जो वीतरागी मूर्त्तिसें-प्रेम, नहीं करते है, और अदबभी नहीं उठाते है, उनको तीर्थंकरों के-भक्त, किस प्रकारसें कहेंगे?। देखो इसका विचार. नेत्रां. पृ. ७४ सें ७६ तक ॥ ८ ॥

मुद्रिकामें जिन मूर्त्तिकु, राखी दरसन काज।
करणी वज्रकरणतणी, ते तो कहैं अकाज ॥ ९ ॥

तात्पर्य—सम्यक्त्व धर्मका पालन करनेके वास्ते—वज्र करण राजा, अपनी अंगूठीमें—बारमा वासु पूज्य स्वामी तीर्थंकरकी, मूर्त्तिको रखके—हमेशां दर्शन करता रहा, उस बातमें ढूंढनीजी कहती है कि—करनेके योग्य नहीं। तो क्या ढूंढनीजीने–पितर, दा देयां, भूत, यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंकी क्रूर मूर्त्तियांकी पूजा कराके, तीर्थंकर देवोंकी—निंद्या करनी, योग्य समजी ?। फिरभी एक कुतर्क कीइ है कि—मूर्त्तिके आगे, मुकद्दमें—नहीं हो सकते है। तो पिछि ढूंढनीजी भगवानका—नाम मात्रके आगे, मुकद्दमें—कैसें चलाती है? । क्या तीर्थंकरोंका नामको जपनेका निरर्थक मानती है ? ॥ देखो. नेत्रां. ७६ सें ७७ तक ॥ ९ ॥

मूर्त्ति मित्रकी देखकर, ढूंढक जनको प्रेम ।
देखी प्रभुकी मूर्त्तिको, क्यौं बंदनमें वेम ॥ १० ॥

तात्पर्य—ढूंढनीजीने लिखा है कि—मित्रकी मूर्त्तिको देखके—प्रेम, जागता है। परंतु भगवानकी—मूर्त्तिको देखके तो, कोइ खुश हो जाय तो हो जाय। परंतु भगवान्‌की पूजा कभी नहीं करनी—देखो. नेत्रां. पृ. ७८ सें ८१ तक ॥ परंतु सत्यार्थ. पृ. १२४ सें १२६ तक—कयब लिकम्मा, के पाठमें, वीर भगवानके परम श्रावकोंकी पाससें—कोइभी प्रकारका लाभ के कारण बिना, तीर्थंकर भगवानके बदलेमें—पितर, भूतादिकोंकी क्रूर मूर्त्तियां पूजानेको तत्पर हुई ॥ और सत्यार्थ. पृ. ७३ में–धन पुत्रादिककी लालच देके, यक्षादिकोंकी—भयंकर मूर्त्तियांको, पूजानेको तत्पर हुई ॥ कैसी कैसी अपूर्व चातुरी प्रगट करके दिखलाती है ? ॥ १० ॥

गौ गौ केहि पुकारसें, मिलावें दुध मलाइ ।
गौकी मूर्त्ति स्युं नहीं, ढूंढनीने कछुपाइ ॥ ११ ॥

तात्पर्य—दुधकी इछा वालेको जैसें पथ्थरकी गौसें, दुध न मिलेगा। तैसें ही–गौ गौ के पुकार करने मात्रसें भी, दुध न मिलेगा। तो पिछे ढूंढनीजी भगवान् २ ऐसें, नाम मात्रका पुकार करनेसें भी–अपना कल्याण, किस प्रकारसें, कर सकेगी ?॥ तर्क– अजी नामके अक्षरोंमें, हमारा–भाव, मिला लेते है। हम पुछते है कि–नामसेंभी विशेषपणे, तीर्थंकरोंके स्वरूपका बोधको करानेवाली, वीतरागी मूर्त्तिमें सें–तुमेरा भाव, कहां भग जाता है? क्या–पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिकोंकी–भयंकर स्वरूपकी मूर्त्तिमें, फस जाता है?। देखो. नेत्रां. पृ. ८१ सें ८४ तक॥ ११॥

मानो किस विध भूलसें, अखरसें हुये ज्ञान।
ढूंढनी हमको कहत है, द्वेषसु वनी वेभान ॥ १२ ॥

तात्पर्य—ढूंढनीजीका मानना यह है कि–साक्षात् स्वरूपका बोधको करानेवाली, तीर्थंकरोंकी तो–मूर्त्तिसें। और ऋषभ देवादिक–नामके अक्षरों सेंभी. तीर्थंकरोंका–बोध, होता नहीं है। तो क्या हमारे ढूंढक भाइयांको–तीर्थंकर भगवान, साक्षात् आके मिलजाते है ?। अथवा एक अपेक्षासें ढूंढनीजीका कथन कुछ सत्यभी मालूम होता है, क्योंकि–गुरुज्ञान विनाके, हमारे ढूंढक भाइयां को– अपने आप जैन सूत्रोंको वाचनेसें, विपरीत ही विपरीत–ज्ञान होता है। देखो. नेत्रां० पृ. ८४ सें ८८ तक॥ १२॥

पंडितोंसें सुन लीई, देखि सूतर माही।
तोभी ढूंढनी कहत है, मूर्त्ति पूजा कछु नाहि ॥ १३ ॥

तात्पर्य—ढूंढनीजीने ही–जिन मूर्त्तिका पूजन, पंडितोंसें सुना। और जैन सिद्धांतोंमें–लिखा हुवा भी, देखा। तोभी ढूंढनीजी

कहती है कि-मूर्त्ति पूजाका, सूत्रों में जिकर ही नहीं । क्या ज्ञानकी खूबी है ? देखो नेत्रां० पृ. ८८ सें ८९ तक ॥ १३ ॥

दो अक्षरके नाममें, दिखें प्रत्यक्ष देव ।
नहीं तिनकी मूर्त्तिमें, कैसी पडी कुटेव ॥ १४ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ५० में-भगवानके दो अक्षरका-नाम मात्रको, गुणा कर्ष कह करके, उसमें ढूंढनीजी-भावको. मिलानेको-कहती है । तो पिछे तीर्थंकरों के स्वरूपका-तादृश बोधको करानेवाली, तीर्थंकरोंकी भव्य स्वरूपकी मूर्त्तियां, लाखोकी गिनतीसें, विद्यमान होतेहुयें भी उनको छोडकरके, ढूंढनीजीका-भाव, मिथ्यात्वी यक्षादिकोंकी-क्रूर स्वभावकी मूर्त्तियांमें क्यौं फसजाता है ? । क्या तीर्थंकरोके साथ, हमारे ढूंढक भाइयां को-कोइ पूर्वभवका वैर जाग्या है ? ॥ १४ ॥

श्रुति मात्र हि जिन मूर्त्तिमें, ढूंढनी करें निषेध ।
यक्षादिकमें आदरे, यही बडा हम खेद ॥ १५ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ६७ में-ढूंढनीजी, मूर्त्तिमें-श्रुति मात्रभी लगानेका, निषेध करती है । और पृष्ट. ७३ में—पूर्णभद्र यक्षादिकोंकी, मूर्त्तिओंका । और पृष्ट. १२६ में—पितर, दादेयां, भूतादिकोंकी—मूर्त्तिओं का, फल फूलादिक—महा आरंभसें, पूजा को कराती हुई, सब कुछ करानेको तत्पर हुई है । ढूंढनीजीका इस लेखमें, हमको यह विचार आता है कि—आजतक हमारे ढूंढकभाइओ, जो जैनधर्मसें, आधेभ्रष्ट हो गये है, उनको सर्वथा प्रकारसें-भ्रष्ट करनेके वास्ते, ढूंढनीजीने—इस लेखको, लिखा है ! क्यौंकि जो पुरुष, जिस देवताकी मूर्त्तिका पूजन करेगा, सो पुरुष उस देवताका—१नामभी जपेगा, और उस २मूर्त्तिमें-अपनी ३श्रुतिभी,

लगावेगा, और साथमें—अपना ४भावभी, मिलावेगा। तबही अपना इच्छित फलको—मिलावेगा, यह बातनो अनुभवसें सिद्ध रूपही है ॥ हमारे ढूंढकभाइओ, जैनधर्मका सनातनपणेका तो दावा करनेको जाते है। और तीर्थंकरोंकी भक्तिको—सर्वथा प्रकारसें छुडवायके, केवल यक्षादिकोंकी ही सर्वप्रकारसें भक्ति करानेको,तत्पर होते है? अहो चिंतामणि रत्न तुल्य, जो वीतराग देवकी भक्ति है, उनको छुडवायके—काच तुल्य जो यक्षादिक देवताओ है, उनोंकी तुछरूप भक्तिमें, फसाकरके, भोले श्रावकोंको—जैन धर्मसें भ्रष्ट करते हैं? यही हमको वडाखेद होता है ॥ १५ ॥

धन पुत्रादिक कारणे, दिखे मूर्त्तिमें देव ॥
दिसें नहीं जिन मूर्त्तिमें. निंदे जिनवर सेव ॥ १६ ॥

तात्पर्य—केवल संसारकी ही, वृद्धिका कारण रूप-जो धन पुत्रादिक है उसको लेनेके वास्ते तो हमारे ढूंढकभाइयोंको—मिथ्यात्वी यक्षादिक देवोंकी, भयंकर स्वरूपकी-मूर्त्तियोंमें, साक्षात्पणे देव दिखपडता है। इस वास्ते तो, उनोंकी पथ्थरकी मूर्त्तियोंकोभी—पूजानेको, तत्पर होजाते है? और वीर भगवानके परम श्रावकोंकी पाससें--पितर, दादेयां, भूतादिकोंकी, मूर्त्तियोंकी—प्रयोजनविनाभी पूजा करानेको, तत्पर होजाते हैं? मात्र वीतरागी ही-मूर्त्तिको देखके, तन मनमे जलते हुये-निंदाही करनेको, तत्पर होजाते है। न-जाने किस प्रकारका, अघोर पापका—उदय, हुवा होगा? ॥ १६ ॥

भक्त वनें अरिहंतके, उसी मूर्त्तिसें द्वेष।
यक्षादिककी पूजना, करत विचार न लेश ॥ १७ ॥

तात्पर्य—हमारे ढूंढकभाइओ, तीर्थंकरोंके तो परम भक्त बन-

नेको जाते हे । और तीर्थंकरोंकीही-मूर्त्तिसें, द्वेषभाव करते हैं। और जो मिथ्यात्वी देवताओंकी क्रूर मूर्त्तियां है, उनकी पूजा-महा आरंभ के साथ, करते हुये, और करावते हुयेंकों, एक लेश मात्र-भी—विचार नहीं आता है । तो अब उनोंको (अर्थात् हमारे ढूं-ढकभाइयांको) किस प्रकारका—विपरीत बोध हुवा, समजना ? सो कुछ समज्या नहीं जाता है ॥

नाम सु मूरतिमें कहैं, ढूंढनी बोध बिशेष ।
भाव मिलावे नाममें, करत मूर्त्तिसें द्वेष ॥ १८ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृष्ठ. ३६ में, ढूंढनीजी लिखती है कि-नाम सुननेकी अपेक्षा, आकार (मूर्त्ति) देखनेसें-ज्यादा, और जल्दी, समज आती है । ऐसा प्रगटपणे लिखके, तीर्थंकरोंका केवल नाम मात्रमें ही भाव मिलाके-नामको, जपाती है । और यक्षादिक मि-थ्यात्वी क्रूर देवताओंका, नामको भी-भाव मिलाके जपाती है ? । और उनोंकी-मूर्त्तियां भी, भावके साथ, पूजाती है ? । और उ-नोंकी-क्रूर मूर्त्तियांमें, श्रुति लगानेका भी—सिद्ध करके दिखलाती है ? । केवल तीर्थंकरोंकी ही—भव्य मूर्त्तियांको, देखके, द्वेषसें-प्रज्व-लित हो जाती है । हमारे ढूंढक भाइयांको, हमने किसके—भक्त, समजने ? ॥ १८ ॥

मूर्त्ति आगे न मुकदमें, कहत ढूंढनी एह ।
नाम मात्रसें मुकदमें, कैसें चलावें तेह ॥ १९ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ४२ में, ढूंढनीजीने, लिखा है कि-मू-र्त्तिके आगे, मुकद्दमें—नहीं हो सकते है । अर्थात् भगवानकी—मू-र्त्तिके आगे, अपना पापादिककी—आ लोचना, नहीं हो सकती है।

तो पिछे हमारें ढूंढकभाइओ, तीर्थंकरोंका नामके—अक्षरोंका, उ-च्चारण मात्रसें—अपने मुकदमें, कैसें चलाते है ? । अर्थात् अपना पापकी आलोचना कैसें करते है ? । जैसें—मूर्त्तिमें, साक्षात् तीर्थं-करो—नहीं है, तैसें ही—नामके दो अक्षर मात्रमें भी, साक्षात्पणे—तीर्थंकरो, नहीं है ? ।

जब नाम मात्रसें—मुकद्दमा चलानेका, सिद्ध होगा । तब तो उनकी—मूर्त्तिके आगे, विशेषपणे ही मुकद्दमा चलानेका, सिद्ध होगा । जैसें ढूंढनीजीने, यक्षादिकोंका नामकी—उपेक्षा करके, उनोंकी मूर्त्तियांकी आगे—प्रार्थना कराके, धन पुत्रा-दिक दिवायाथा । तैसें जिनमूर्त्तिके आगे, विशेषपणे—मुकद्दमा च-लानेका, सिद्ध क्यौं न होगा ? ।

इसमें तो हमारे ढूंढकभाइयांकी—मूढताके शिवाय, दूसरा कुछ भी विशेष नहीं है ।। १९ ।।

यक्षादिकने पूजतां, ढूंढक स्वारथ सिद्ध ।
तीर्थंकरकी पूजना, करतां धर्म विरुद्ध ।। २० ।।

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ७२ में, ढूंढनीजीने लिखा है कि—य-क्षादिकोंकी, जडरूप पथ्थरकी मूर्त्ति पूजासें—स्वार्थकी सिद्धि होती है ।। तो पिछे जिस तीर्थंकरोंके—एक नाम मात्रका, अक्षरोंको उच्चारण करनेसें, हम हमारा—आत्माका, स्वार्थकी सिद्धि, मानते है । उनोंकी मूर्त्ति पूजासें, हमारा आत्माका—स्वार्थकी सिद्धि, क्यौं न होगी ? तर्क—साधु पूजा क्यौं नहीं करते है ? । उत्तर—साधु भी तो सदा भाव पूजा, करते ही है । मात्र—द्रव्यका अ-भाव होनेसें ही, द्रव्य पूजा करनेकी, मना किई गई है ।। २० ।।

मूर्त्तिको मूर्त्ति हम कहैं, नहि करें नमस्कार।
तीर्थंकर तामें नहीं, ढूंढनी कहत विचार ॥ २१ ॥
नामके अक्षर मात्रसु, करत हो नमस्कार।
तीर्थंकर तामें दिसें, किस विध तुमको यार? ॥२२॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ५७ में, ढूंढनीजी लिखती है कि-मूर्त्तिमें, भगवान नहीं है, यह तो अज्ञानीयोंने भगवान् कल्प रखा है, हम तो भगवानका-आकार, कहदेवे, परंतु-नमस्कार तो, नहीं करें, और लडडु पेडे, नहीं धरें ॥ २१ ॥

इसमें हमारा प्रश्न—हे ढूंढकभाइओ! ऋषभादिक नाम मात्रका, उच्चारण करके—तुम भी दररोज ही, नमस्कार करते हो। उस अक्षर मात्रमें—तीर्थंकर भगवान, तुमको-किस प्रकारसें, दिख पडा?।

जब तुमको—नाम मात्रमें ही, देव दिख पडते है, तो पिछे ढूंढनीजीने यक्षादिक देवोंका, नाम मात्रको—पढायके, हमारे ढूंढकभाइयांको-धन पुत्रादिक, क्यौं न दिवाये? किस वास्ते यक्षादिकोंकी पथ्थरकी मूर्त्तियांके आगे, उनोंका मथ्था—वारंवार, घिसाती हुई, और महारंभको करवाती हुई, धन पुत्रादिक लेनेका सिखाती है? ॥ २२ ॥

नमस्कार करें नामसु, तासु मिलावे भाव।
विशेष बोधकी मूर्त्तिसु क्यौं? भगजावे भाव ॥ २३ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ५० । ५१ में, ढूंढनीजी-तीर्थंकरोंका, नाम मात्रमें ही-अपना भाव मिलानेका, कहकर—तीर्थंकरोंको,

नमस्कार—कराती है। और सत्यार्थ. पृ. ३६ में, लिखती है कि हां हां नाम सुननेकी, अपेक्षा-आकार देखनेसें, ज्यादा—और जल्दी, समज आती है।

ऐसा लिखके परमपूज्य तीर्थंकरोंकी भव्य मूर्त्तिके साथ—द्वेष भाव करके, उनोंका केवल—नाम मात्रमें ही, भाव मिलानेको—तत्पर हुई। और यक्षादिक महा मिथ्यात्वी देवोंकी, भयंकर मूर्त्ति है उंसमें ही—हमारे ढूंढकभाइयांको भाव मिलानेका दिखाके, पूजानेको—तत्पर हुई ?। हे ढूंढकभाइओ ? अपना परमपूज्य तीर्थंकर भगवानकी, भव्य मूर्त्तिमेंसें—तुमेरा भाव, क्यौं भग जाता है ? उस बातका थोडासा तो-ख्याल करके, देखो ? ॥ २३ ॥

अनेक वस्तुका होत है, नाम तो एक प्रकार।
स्थिर कहां मन होत है, ताको करो विचार ॥ २४ ॥

तात्पर्य-हे ढूंढक भाइओ, थोडासा एक क्षणभर विचार करो कि—ऋषभ देवादिक—नाम तो, एकही है, और—सत्यार्थ. पृ. १९ में, ढूंढनीजीने—पुरुष, पशु, पंखी, स्थंभ, आदि—अनेक वस्तुओंमे, रखनेका लिखा है। तो अब ऋषभ देवादिक—नाम मात्रका, उच्चारण करनेसें—तुमेरा मन, क्या पुरुषमें जाके, स्थिर होगा ?। अथवा पशुमें, वा, पंखीमें, कहां जाके स्थिर होगा ? उस बातका ख्याल करो ? ॥ २४ ॥

समव सरणमें होत है, भाव तुम्हारा स्थिर।
सोही आकृति मूर्त्तिमें, करो विचार तुम धीर ? ॥ २५ ॥

तात्पर्य—हे धीर पुरुषो ! विचार करो कि, ऋषभ देवादिक—नामका, उच्चारण करनेसें, न तो—तुमेरा मन, पुरुषमें जाके—मिलेगा,

और न तो-पशुमें, न तो-पंखीमें, और न तो-थंभादिकमें, जाके मिलेगा। सो तुमेरा मन है सो तीर्थंकर भगवानकी इछाको करता हुवा तीर्थंकरोंके समवसरणमें ही, जाके मिलेगा। उहांपर तो-जो यह विशेष वोधको करानेवाली, तीर्थंकरोंकी-भव्य मूर्त्तियां है, सो ही तुमको-दिखनेवाली है। परंतु तीर्थंकर भगवान के-नामका जाप करनेसें, तुमको तीर्थंकरोंकी-आकृति के शिवाय, दूसरा कुछ भी तुमेरे दिखनेमें आनेवाला नहीं है। किस वास्ते तीर्थंकरों की-भव्य मूर्त्तिकी भक्तिको छोड के, और-मिथ्यात्वी क्रूर देवताओंकी, भक्ति के वश हो के-अपना आत्माको, अघोर संसारका दुःख में डालते हो? अवी भी क्षणभर सोचो? ॥ २५ ॥

तीर्थंकर के भक्तको, तीर्थंकरका ज्ञान।
नामको सुनते होत है, नहीं म्लेछको भान ॥ २६ ॥

तात्पर्य-देखो कि-ऋषभादिक नामका, श्रवण करनेसे, अथवा उच्चारण करनेसें, जो तीर्थंकरों के भक्त होंगे सोही, समवसरणमें रही हुई आकृतिका, (अर्थात् मूर्त्तिका) ज्ञान करेगा। परंतु म्लेछ होगा सो तो, समवसरणमें रही हुई-तीर्थंकरों की आकृतिका, विचार कबी भी न करेगा। सो तो ढूंढनीजीने दिखाया हुवा -पुरुष, पशु, पंखी, स्थंभादिक-वस्तुओंमेंसें, जिसको जानता होगा, उसीकी ही-आकृतिमें, अपना भाव मिलावेगा? । किस वास्ते तीर्थंकर भगवानकी-भव्य मूर्त्ति के विषयमें, जूठी कुतर्कों करके-अपना नाश, कर लेते हो? ॥ २६ ॥

नाम गोत्रका श्रवणसें, बडाहि लाभकी आश।
भक्त करे भक्तिवसें, तो क्यौं मूर्त्तिसें त्रास ॥ २७ ॥

तात्पर्य—देखो कि, सत्यार्थ. पृ. १५२-१५३ में, ढूंढनीजी-

ने-भगवती आदि अनेक-सूत्रोंकी, साक्षी दे के लिखा है कि-महावीर स्वामिजीका, नाम गौत्र-सुननेसें ही, महा फल है। तो प्रत्यक्ष सेवा भक्ति करनेका जो फल है सो, क्या वर्णन करु. ॥

हे ढूंढकभाइयो, इहांपर थोडासा ख्याल करोकि-तीर्थंकरोंका-जो नाम, और गोत्र हैसो, आजतक लाखो बल्कन करोडोंही-क्षत्रियां के कुलमें दाखल होताही आया है। तोभी तीर्थंकरोंके भक्त है सोतो उनोंका-नाम, और गोत्र, श्रवण मात्रसें ही, तीर्थंकरोंकी-आकृतिमें, भक्तिके वससें लीन होके, आनंदित हुवा-महाफलको ही प्राप्त कर लेता है। तो पिछे साक्षात्पणे-तीर्थंकरोंकी आकृतिका बोधकों कराने वाली, तीर्थंकरोंकीही-भव्य मूर्त्तिसें, हे ढूंढकभाइओं-तुमको किस कारणसें त्रास होता है ?।

तुम कहोंगेकि-फलफूलादिककी पूजा देखके, त्रास होता है। सोभी तुमेरा कथन योग्य नहीं है। क्योंकि-तुमेरी स्वामिनीजी तो-वीर भगवानके परम श्रावकोंकी पाससेंभी, फलफूलादिककी विधिसे-पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिक जो मिथ्यात्वी देवो है, उनोंकी-पथ्थरसें बनी हुई मूर्त्तिका, पूजन-हररोज, कर.नेको तत्पर हुई है। देखो. सत्यार्थ. पृष्ट. १२६ में॥ और-तुमको धन पुत्रादिककी लालचदेके, मोगरपाणी आदि यक्षोंकी-क्रूर मूर्त्तियांकी, फलफूलादिकसें-पूजा करानेको तो, अल्पपणेही-उद्यत हुई है। देखो. सत्यार्थ. पृ. ७३ में॥ ते दोनों प्रकारकी-भयंकर मूर्त्तियांका, पूजन करानेमें, न तो तुमेरी स्वामिनीजीको त्रास हुवा। और न तो तुमको-पूजनेसेंभी त्रास हुवा। तो पिछे-वीतराग देवकी भव्य मूर्त्तिका, पूजनसें तुमको-क्यों त्रास होता है ?। क्या कोइ संसारकी अधिकता रही हुई है ?। थोडासा तो सोच करो ? क्या केवल मूढ बनजाते हो ?॥ २७॥

नामादिकसें वस्तुका, वस्तुहि तत्त्व विचार।
नहीं नामादिक तत्त्वहै, ते तो भिन्न प्रकार ॥ २८ ॥

तात्पर्य–अब हम एक दुहामें, किंचित् तात्पर्य कहते है कि–न तो ऋषभादिक नामोंके, अक्षरोंमें साक्षात्पणे तीर्थंकर भगवान् बैठे है, तोभी इहां परतो ढूंढनीजी-अपना भाव मिलानेका, कहती है। और तीर्थंकरोंका–गुणादिकको याद कराती हुई, नमस्कारादिकभी कराती है।

और जो तीर्थंकरोंका–विशेषपणे बोधको कराने वाली, तीर्थंकरोंकी–भव्य मूर्त्तियां है उहांसें, वीरभगवानके परमश्रावको है-उनोंकाभी भावको हटाती हुई, यह विचार शून्या ढूंढनीजी—जो पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंकी, भयंकर-मूर्त्तियां है, उसमें–भाव मिलानेका, सिद्ध करके दिखलाती है। और तें क्रूर देवताओंको–पूजानेकोभी, तत्पर हूई है ?। और तीर्थंकरोंकी–भव्य मूर्त्तियां में, हमारे ढूंढकभाइयांको- श्रुति मात्रभी लगानेका, निषेध करती है ॥

सारी आलम दूनीया तो–जिस देवताका नाममें, अपना--भाव मिलाकरके, जिसका--नामको, स्मरण करते होंगे, उनोंकीही-मूर्त्तिमें, अपना—भाव मिला करके, पूजन करेंगे। परंतु हमारे ढूंढकभाइओ–नाम तो जपाते है तीर्थंकरोंका, और पूजन कराते है–मिथ्यात्वी देवताओंकी क्रूर मूर्त्तियांका, कैसा अपूर्व धर्मका मार्गको ढूंढ ढूंढ करके निकाला है ? ॥

इहां पर थोडासा ख्यालकरोकि-तीर्थंकररूप वस्तु–जैसें मूर्त्तिमें नहीं है, तैसेंही—उनोंके नाम मात्रमेंभी, नहीं है। तोभी दानोंभी प्रकारमें—तीर्थंकर रूप वस्तुकाही विचारसें, नमस्कारादिक कर-

णा–योग्यपणे सेंही सिद्ध होता है । किस वास्ते तीर्थंकरोंकी–अव-ज्ञाकरके, अपना संसारकी वृद्धि करले ते हो ? ॥ २८ ॥

हित सुख मोक्ष के कारणे, पूजे शाश्वत बिंब ।
व्यवहारिक कर्त्तव्य कही, रोपें कडवा नींब ॥ २९ ॥

तात्पर्य—देवलोकमें, शाश्वती जिन प्रतिमाओंका पूजन, दे-वताओ अपना–हित, सुख, और परंपरासें मोक्षका कारण समज के, सदा करते है । ते देवताओंका–जिन पूजनको, ढूंढनीजी केव-ल–लाभ विनाका, व्यवहारिक कर्म कह करके–कडवा नींबका रोपा लगाती है । परंतु इतना मात्र भी विचार नहीं करती है कि–सम्य-क्क दृष्टि जीवोंकी करनीका लोप, मैं कैसें करती हुं ? देखो. नेत्रां० पृ. ९३ सें ९४ तक ॥ २९ ॥

नमोथ्थुणं के पाठसें, करें वंदना देव ।
तामें कुतर्क करी कहैं, परंपराकी सेव ॥ ३० ॥

तात्पर्य—देवलोकमें, इंद्रादिक देवताओने–जे शाश्वती जिन प्रतिमाओंका पूजन, अरिहंतों की भक्ति के वास्ते, और अपना भवोभवका–हित, सुख, और मोक्षका–लाभ की आशा करके, किया ते । और अरिहंतोंकी–स्तुतिरूप, नमोथ्थुणं, का पाठको पढ्या ते । ढूंढनीजीने–लाभ विनाका, परंपराकी सेवारूप, सिद्ध करके–दिखलाया । और ते देवताओंकी तरां, अपनां भवोभवका कल्याण कर लेने की इच्छावाली हुई–द्रौपदीजी परम श्राविका-ने, अशाश्वती जिन प्रतिमाओंका–पूजन किया । और वही तीर्थंकरोंकी स्तुतिरूप–नमोथ्थुणंका, पाठ तीर्थंकरोंकी मूर्त्तियांके आगे पढा ! उस पवित्र पाठमें–जूठी कुतर्को करके, जिन प्रतिमाको

तो-काम देवकी मूर्त्ति ठहराइ, और तीर्थकरोंकी स्तुतिरूप-नमोत्थुणं, का पाठ, तद्दन अयोग्यपणे-मिथ्यात्वी काम देवकी, मूर्त्तिके आगे-पढानेको तत्पर हुई, ऐसी जगें जगें पर-जूठी कुतर्कों करके, आप नष्ट होते हुये-हमारे ढूंढकभाइओ, दूसरे भव्यजनोंके धर्मका भी नाश करनेको-उद्यत होते है ? कैसें २ निकृष्ट बुद्धिवाले-दूनीयामें, जन्म पडते है ? देवताओंकी समीक्षा. देखो. नेत्रां. पृ. ९५ सें ९९ तक ॥ द्रौपदीजीको-नेत्रां. पृ. ११० सें १४ तक॥३०॥

सैंकड पृष्टोंपर कहैं, सूत्रमें पाठ अधिक ।
गुरु विना समजे कहां, परमारथको ठिक ॥ ३१ ॥

तात्पर्य—ढूंढनीजीने, सत्यार्थ. पृ. ७५ में-लिखा है कि-हम देखतें है कि, सूत्रोंमें ठाम २ जिन पदार्थोंसें, हमारा विशेष करके -आत्मीय स्वार्थ भी, सिद्ध नहीं होता है-उनका विस्तार, सैंकडे पृष्टोंपर [सुधर्म स्वामीजीने] लिख धरा है ।

ऐसा लिखके ज्ञाता सूत्रका, जीवाभिगम सूत्रका, और राय प्रश्नी सूत्रका-सैंकडों पृष्टों तकका, मूल पाठोंको-निरर्थक ठहराया है । परंतु जिस सूत्रमें-एक चकार, अथवा-वकार, मात्र भी, गणधर महापुरुषोंने-रखा हुवा होता है, सो भी सैंकडो अर्थोंके-सूचक, होता है । ऐसें महा गंभीरार्थ-सूत्रोंका, मूल पाठोंको भी-सैंकडो पृष्टों तकका, निरर्थकपणा-ठहराती है ? । परंतु इतना मात्र भी विचार नहीं करती है कि, जिस सूत्रका-एक अक्षर मात्र भी, कोइ पुरुष-आगा पाछा करें तो, उनको-अनंत संसार भ्रमण तकका, प्रायश्चित्त होता है, तो पिछे ऐसें महा गंभीर सूत्रके मूल पाठोंको सैंकडो पृष्टों पर-निरर्थक, कैसें कहे जावेंगे ? । परंतु-गुरु ज्ञान बिनाके हमारे ढूंढकभाइओ, गणधर महापुरुषोंका विचारको-ठीक २ कहांसें समजेंगे ? ॥ ३१ ॥

चैत्यसें जिनप्रतिमा कहैं, जगें२ ग्रंथकार ।
ढूंढनी मन गमतो करें, अर्थ अनेक प्रकार ॥ ३२ ॥

तात्पर्य—चैत्य, पदका अर्थ-जिन प्रतिमा, जैन सिद्धांतकारोंने, जगें जगें पर-वर्णन किया हुवा है । परंतु ढूंढनी पार्वतीजीने, ते चैत्य पदका अर्थ, जैसें मनमें आया तैसें ही-भिन्न २ प्रकारसें, गणधरादिक सर्व सिद्धांतकारोंकी-अवज्ञाके साथ, करके दिखलाया है । सो ही हम क्रमवार सूचना मात्रसें, पाठक वर्गको-याद कराते है, सो ख्याल पूर्वक विचार करतें चले जाना ॥ ३२ ॥

अंबडजीके पाठमें, क्रियो व्रतादिक अर्थ ।
लोपें अर्थ जिन मूर्त्तिका, कितना करें अनर्थ ॥ ३३ ॥

तात्पर्य—अबंड श्रावकजीके अधिकारमें-अरिहंत चेइय, पाठका अर्थ—आरिहंत भगवानकी मूर्त्तिका, सर्व जैन सिद्धांतकारोंने जगें जगें पर किया हुवा है । और ते अर्थ योग्यपणे ही होता है क्योंकि—अरिहंत, कहनेसें तीर्थंकर भगवान, और—चैत्य, कहनेसें—प्रतिमा, अर्थात् अरिहंतकी प्रतिमा । इसका अर्थ ढूंढनीजीने सत्यार्थ. पृ. ७८ सें ८६ तक, लंव लंबाय मान—सम्यक् ज्ञान, सम्यक्त्व व्रत, वा अनुव्रतादिक, वे संबंधका करके दिखाया । देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ १०४ सें, पृ. १०८ तक ॥ ३३ ॥

रुचक नंदीश्वर द्वीपमें, मूर्त्ति वादे सु पेर ।
जंघा चारण मुनिवरा, दिखावें ज्ञानकोढेर ॥३४॥

तात्पर्य—जंघा चारण विद्याचरणकी-लब्धि, जिस मुनियोंको हो जाती है, ते मुनिओ-रुच द्वीपमें, नंदीश्वर द्वीपमें जाके—चेइ-

याइं, वंदइ, अर्थात् उहांपर रही हुई-शाश्वती जिन प्रतिमाओं-को, वंदना करते हैं।

पिछे इस भरत क्षेत्रमें आके-वडे वडे तीर्थोंमें रहीहुई, अशाश्वती जिन प्रतिमाओंको-वांदते है। इस विषयमें ढूंढनीजी-सत्यार्थ. पृ. १०१ सें १०६ तकमें, अनेक प्रकारकी जूठी कुतर्कों करके, और पृ. १०२ में-रुचकादिक द्वीपमें रही हुई, शाश्वती जिन प्रतिमा-ओंको-मान्य करके भी, छेवटमें उहांपर-ज्ञानका ढेरकी स्तुति कर-नेका, बतलाती है। ढूंढनीजीको-वीतरागीमूर्त्तिसें, कितना द्वेषभाव हो गया है। देखो. नेत्रां. पृ. ११७ सें २१ तक॥ ३४॥

चमरेंद्रके पाठमें, लिखा अरिहंत चैत।
पद विशेष जोडी कहे, चैत्यपद यह विपरीत॥ ३५॥

तात्पर्य—चमरेंद्र उर्द्ध लोकमें गया, तव शक्रेंद्रने विचार किया कि-१ अरिहंतकी, २ अरिहंतकी प्रतिमाका, अथवा ३ कोइ महा-त्माका।

इस तीन शरणमेंसें-एकाद् शरण लेके, देवता उर्द्धलोकमें आस-कता है, ऐसा सक्रेंद्रने विचार किया है, इसमें दूसरा शरण-अरिहंत चेइयाणि, अरिहंत सो तो तीर्थंकर भगवान, और चैत्य कहनेसें-प्रतिमा, अर्थात् अरिहंतकी प्रतिमाका, शरण लेनेका विचारा है। और अंबड श्रावकका पाठकीतरां, सर्व जैनाचर्योंने-एकही अर्थ करके दिखलाया है। तोभी ढूंढनीजी-सत्यार्थ. पृ. १०९ सें १३ तकमें, अनेक-जूठी कुतर्कों करके, और पद शब्दको, विशेषपणे जोडके-अरिहंत पद, का अर्थ करके दिखलाती है। अब ख्याल करोकि-इस अरिहंत चेइयाइं, का अर्थ, अंबडजीके अधिकारमें

–सम्यक् ज्ञानादिकका करके दिखलाया। और इस चमरेंद्रके वि-षयमें–चैत्य पद, करके दिखलाया। ढूंढनीजी वीतराग देवकी वैरिणी होके, जो मनमें आता है सो ही लिख मारती है या नहीं ? देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १२१ से १२५ तक ॥ ३५ ॥

वहवे अरिहंत चैतमें, पाठांतरसु विशेष।
सिद्धि जिन प्रतिमा तणी, नहीं मीनने मेष ॥३६॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. ७७ में, ढूंढनीजीने, लिखा है कि–उ-वाईजी सूत्रके आदहीमें, चंपापुरीके वर्णनमें (वहवे अरिहंत चेइय) ऐसा पाठ है, अर्थात् चंपापुरीमें बहुत जिनमंदिर है ॥ इसके उ-त्तरमें लिखती है कि–यदि किसी २ प्रतिमें, यह पूर्वोक्त पाठ है भी, तो वहां ऐसा लिखा है कि–[1]पाठांतरे ॥ ऐसा लिखके ते पाठको लोप करनेका प्रयत्न किया है। परंतु वहां–आयारवंत चेइय, का दूसरा पाठमें भी–चैत्य शब्दसे, स्पष्टपणे–जिनमंदिरों-की सिद्धि होती है! तोभी ढूंढनीजीने–अंबडजीके विषयमें, इसी चैत्य शब्दका अर्थ–सम्यक् ज्ञानादिक करके दिखलाया। और चम-रेंद्रके विषयमें–चैत्य पद, अर्थ करके दिखलाया। और इहांपर स-र्वथा प्रकारसें–लोप करनेको, तत्पर होती है ?।

परंतु चैत्यशब्दसें–जिनप्रतिमाकी सिद्धिमें, मीनराशिकी–मेष राशि होने वाली नहीं है। किस वास्ते वीतराग देवकी–आशातना

१ पाठांतरका अर्थ यह है कि, इसी अर्थका प्रकाशक, दूसरा पाठसें, स्पष्ट करना ॥ जैसें सत्यार्थ. पृ. १ ले में, निक्षेपने (करने) । पृ. ७८ में. स्मश्रु (दाडी मुछ) इत्यादिक देखो, विशेष प्रकाशक है कि–लोपक है ? ॥

करके, अघोर कर्मका वंधन करते हो ? देखो. नेत्रां. पृ. १०३ से ४ तक ॥ २६ ॥

आनंदके अधिकारमें, पाठ छिपावें अबुज्ज ।
गुरुविना समजे नहीं, जिनमारगका गुज्ज ॥ ३७ ॥

तात्पर्य—आनंद श्रावकजीके अधिकारमें, ढूंढनीजीनें—सं. ११८६ के शालकी जूनीपरतमें, ऐसा देखाकिं—(अण्ण उत्थिय परिग्गहियाइ चेइया) परंतु (अरिहंत चेइयाइं) ऐसा नहीं देखा, ऐसा सत्यार्थ. पृ. ८९ में, लिखा ॥ और पृ. ८८ में, इसी पाठको—प्रक्षेपरूप, ठहराया । परंतु जो हमारे ढूंढकभाइओं किंचित् विचार करेंगेतो, इस आनंद श्रावकजीके—सर्व प्रकारेके पाठोंमें, सर्व जगोंपर—चेइय शब्द आनेसें, उनका अर्थ—जिनप्रतिमाकाही होगा ?। तोभी ढूंढनीजीने, अनेक प्रकारकी जूठी कुतर्को करके, ते पाठका सर्वथा प्रकारसें—लोपकरने काही, विचार किया । जब ढूंढनीजी, इतना सामान्य मात्रका विषयकोही—नहीं समजी सकती है, तोपि छे जैन मार्गका—विशेष गुज्जको, क्या समजने वाली है ? ॥ देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १०८ सें ९ तक ॥ ३७ ॥

जिनपडिमाकी पूजना, द्रौपदीकेरी खास ।
नमोथ्थुणं के पाठसें, करी कुतर्क करें नाश ॥ ३८ ॥

तात्पर्य—द्रौपदीजी परम श्राविकाने, खास जिनपडिमाको पूजी। और भक्तिके वस होके—धूपदीपादिकभी किया । और छेवटमें तीर्थंकरोंकी स्तुतिरूप—नमोथ्थुणं, का पाठभी पढया । और विधि सहित सत्तर प्रकारका भेदसे—शाश्वती जिनप्रतिमाओंका पूजन करने वाला, जो समकित दृष्टि—सूरयाभ देवता है, उनकी उपमाभी दीई

है। तोभी ढूंढनीजीने, सत्यार्थ. पृ. ९० सें ९९ तक—अनेक प्रकारकी जूठी कुतर्कों करके, रूपका निधान, सोल सतीयांमें प्रधान, ऐसी राजवर कन्या द्रौपदीजी परम श्राविकाको, वर नहीं मिलता था? सो प्राप्त करा देनेके वास्ते, ढूंढनीजी, मिथ्यात्वी—काम देवकी पथ्थरकी मूर्त्ति पूजा करायके, प्राप्त करादेनेको तत्पर हुई है?। और वीतराग देवकी स्तुतिरूप—नमोथ्थुणं, का पाठभी—काम देवकी मूर्त्तिके आगे, पढानेको तत्पर होती है?। परंतु ढूंढनीजी, इतनामात्र भी विचार नहीं करसकती है कि—कहां तो, वीतराग देव, और कहां तो-मिथ्यात्वी कामदेव, उनके आगे तदन अयोग्य पणे—नमोथ्थुणं,का पाठ, मैं कैसें पढाती हुं? परंतु क्षुद्र बुद्धिवालोंको, योग्यायोग्य का-विचारभी, कहांसें आवेगा? ॥ देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. ११० सें ११४ तक ॥ ३८ ॥

तीन निक्षेप नहि कामके, ढूंढनी कहैं प्रत्यक्ष।
मूर्त्ति छुडावें जिनतणी, मूढ पूजावें यक्ष ॥ ३९ ॥

तात्पर्य—वीतराग देवकी वैरिणी ढूंढनीजी, तीर्थंकर देवके-प्रथमके तीन निक्षेप, निरर्थक, और उपयोग विनाके-ठहरानेंके लिये, सत्यार्थ. पृ. ८ सें-प्रथम इंद्रका, स्थापना निक्षेप रूप—मूर्त्तिको, सर्वथा प्रकारसें—निरर्थक, ठहराई। और उनकी पूजा करके-धन पुत्रादिक मागनेवालोंको, और उनका-मेला, महोत्सव, करनेवालोंको, अज्ञानी ठहरायके, पृ. १७ तकमें-जूठे जूठ लिखके, प्रथमके-तीन निक्षेप, निरर्थक, और-उपयोग विनाके लिखके, सिद्ध करके दिखलाया॥

हम पुंछते है कि-जब प्रथमके तीन निक्षेप, सर्वथा प्रकारसें-निरर्थक दिखलाती है, तो पिछे सत्यार्थ. पृ. ७३ में-यक्षादिकोंको,

मूर्त्तिकी स्थापना निक्षेपरूप, जड स्वरूपकी पूजा कराती हुई। और पूजा करनेवालोंको-धन पुत्रादिक, दिवावती हुई। ते निरर्थकरूप दूसरा निक्षेपसें-स्वार्थकी सिद्धि करानेको, क्यौं तत्पर हुई ?।

जब स्वार्थकी सिद्धि कराती है तो पिछे-स्थापना निक्षेपरूप मूर्त्ति, निरर्थ क्यूं ?। इहांपर-यक्षादिकोंकी मूर्त्ति पूजासें, धनपुत्रादिक-दिवाती हुई। और अपना भवोभवका कल्याणके वास्ते-पूजा करनेवाली, परमश्राविका द्रौपदीजीके-जिन प्रतिमाका पूजनको छुडवायके, काम देवकी मूर्त्ति पूजाको कराती हुई। स्वार्थकी सिद्धि करानेको तत्पर होती है ?।

और जिस तीर्थंकरोंके नामसें-पेट भराई करती है, उनोंकी भव्य मूर्त्तियांको-पथ्थर, पहाड करके, निंदती है ?। ऐसें निकृष्ट बुद्धिवाले ते दूसरे कौन होंगे ?। और हम भी कहांतक शिक्षा देवेंगे ?॥ ३९॥

कयबलिकम्मा पाठमें, पितर दादेयां भूत।
तीर्थंकरके भक्तको, नितपूजावें कपुत ॥ ४० ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. १२४ में, कयबलिकम्मा, का पाठ-ढूंढनीजीने लिखा है, और इस पाठके संकेतसें, वीर भगवानके परम श्रावकोंकी-जिन मूर्त्तिपूजा, दररोज करनेका-मतलब, सर्व जैनाचार्योंने-दिखाया हुवा है। उस विषयमें ढूंढनीजी, अनेक प्रकारकी जूठी कुतर्कों करती हुई। और तीर्थंकरोंकी-भव्य मूर्त्तिका, सर्वथा प्रकारसें-लोप करती हुई। ते परम श्रावकोंकी पाससें, सत्यार्थ. पृ. १२६ में-पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिक-मिथ्यात्वी देवताओंकी, भयंकर मूर्त्तियांको-दररोज पूजानेको, तत्पर हुई है ?. कैसें २ जैन-

शासनमें-कपुत्त, पेदा हुये है ? । कदाच ते कपुत्तो-तीर्थंकरोंका उपकार, दूसरा प्रकारका न मानते, परंतु उनके नामसें रोटी खाते है, इतना मात्र तो उपकार मानते ?। और तीर्थंकरोंकी शांत मूर्त्तिकी पूजासें हटाके, यक्ष भूतादिकोंकी क्रूर मूर्त्तियांको तो न पूजाते ?। तो भी कुछ योग्यपणा रहता, परंतु तद्न कपुत्तोंको हम कहांतक शिक्षा देते रहेंगे ? ॥ देखो इनकी समीक्षा, नेत्रां पृ. १३३ सें १३७ तक ॥ ४० ॥

भेजी अभय कुमारने, मूर्त्ति श्रीजिनराज ।
देखी आद्रकुमारने, पायो आतम राज ॥ ४१ ॥

तात्पर्य—सूयगडांग सूत्रकी टीकामें लिखा है कि-अनार्य देशवासी आद्र कुमारथा, उसने अभय कुमारकी साथ-मैत्रीभाव करनेकी इछासें, कुछ भेट भेजाई, ते भेट लिये बाद अभयकुमारने, बुद्धिबलसें विचार करके, उनको बोध करानेके वास्ते, भेटनेमें तीर्थंकर देवकी मूर्त्ति भेजाई, और एकांत स्थलमें खोलनेकी सूचना किई, ते देखके उहापोहकरनेसें जाति समरण ज्ञान प्राप्त हुवा, छेवटमें दीक्षा ले के अपना आत्माका राज्यभी प्राप्त करलिया ॥ ऐसें अनेक भव्य प्राणियोंने, तीर्थंकरोंकी मूर्त्तियांके दर्शनसें अपना कल्याण किया हुवा है । इस वास्ते तीर्थंकरोंकी भव्य मूर्त्तियां-निंदनिक, नहीं है ॥ यह प्रसंगिक बात लिखके दिखाई है ॥ ४१ ॥

शासन नायक मुनिवरा, ज्ञान तणा भंडार ।
निंदी ढूंढनी कहत है, ते सावद्याचार ॥ ४२ ॥
निर्युक्ति ढूंढनी बनी, बनी आपहि भाष्य ।
टीकाभी ढूंढनी बनी, करें सब ग्रंथका नाश ॥ ४३ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. १२९ सें—१४० तकमें, ढूंढनीजीने—पूर्वके महान् २ सर्व जैनाचार्योंकी, और उनके बनाये हुये—सब ग्रंथोंकी, पेट भरकेही निंदा किई हुई है! कभी तो लिखती है कि—सावद्या चार्य। कभी तो लिखती है कि—भोले लोकोंको बहका कर, माल खानेको—मन मानें गपौडे लिखके धरने वाले। कभी तो लिखती है कि—उत्तम दयां, क्षमा रूप, धर्मको—हानि पुहचाने वाले। कमी तो लिखती है कि—अन घटित कहानियेसें—पोथेको भरनेवाले। कभी तो लिखती है कि—जड पदार्थमें, परमेश्वरकी—बुद्धिको कराने वाले। इत्यादिक जैसा मनमें आया, तैसें ही निंदा करती हुई चली गई है ॥४८॥ और—निर्युक्तिभी, ढूंढनी अपने आप बन बैठी। और—भाष्य है सोभी ढूंढनीही अपने आप बन बैठी। और टीका सोभी, ढूंढनीजी कहती है कि—मैं हुं, ऐसा लिखके अपना गर्वको हृदयमें नहीं धारण कर सकती हुई, सत्यार्थकी जाहीरातमें प्रगटपणे लिखके दिखाती है कि—पीतांबर धारियों के, नवीन—मार्गका मूल सूत्रों, माननीय जैन ऋषियोंके मंतव्यो, तथा प्रबल युक्तियोंसें—खंडन किया है। और युक्तियें भी ऐसी प्रबल दीहैं कि—जिनको जैनधर्मारूढ, नवीन मतावलंबियोंके सिवाय, अन्य सांप्रदायिकभी—खंडन नहीं कर सकते। बरंच वडे २ विद्वानोंनेभी, श्लाघा (प्रसंसा) कीहै। इस पुस्तकमें विशेष करके, श्री आत्माराम आनंद विजय संवेगी कृत—जैन मार्ग प्रदर्शक, नवीन कपोल कल्पित ग्रंथोकी—पूर्ण आंदोलना कीहै ॥

इसका विशेष विचार प्रस्तावनामेंसें देख लेना। इहांपर हम विशेष कुछ नहीं लिखते है ॥

परंतु जैन तत्त्वरूप अगाध समुद्रका मार्गकी दिशा मात्रकाभी श्रवण किये विना, इस ढूंढनीजीने, एक गंदी खालकी भेडी (देडकी)

की तरां, गर्व कितना किया है, यही हमको आश्चर्य होता है। हे ढूंढनीजी !

जैनतत्वके विषयमें आगे बहुत ही कुछ देखनेका रहा हुवा है, परंतु बुद्धिकी प्रबलता होते हुये भी, परंपराका योग्य गुरुकी सेवामें तत्पर हुये विना, एक दिशा मात्रका भी भान होना बडाही दुर्घट है, किस वास्ते इतना जूठा गर्वको करती है?॥ देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १३८ सें १४७ तक ॥ ४२ । ४३ ॥

निषेध दिखावुं पाठसें, मूर्त्ति पजाके खास।
कहें ढूंढनी सिद्धिमें, फुकट करो क्यों आश ॥ ४४ ॥

तात्पर्य—इहां तक ढूंढनीजी, यक्ष, भूतादिक–मिथ्यात्वी देवताओंकी, भक्तानी होके, उनोंकी मूर्त्तियांका–पूजन,ढूंढक श्रावकोंको सिद्धि करके दिखलाती हुई। और तीर्थंकर देवकी वैरिणी होके, तीर्थंकरोंकी–परम पवित्र, मूर्त्तिपूजाके–पाठोंका, अर्थको–जूठे जूठ लिखती हुई। और जैन धर्मके धुरंधर–सर्व महान् २ आचार्योंकी, निंद्याको करती हुई। और जैन धर्मके मंडनरूप, तत्वके ग्रंथोंका लोपको, करती हुई। सत्यार्थ पृ. १४२ मे, लिखती है कि–जिन मूर्त्ति पूजाका पाठ, कोइ भी जैन सूत्रमें नहीं है। परंतु तुमेरे ही ग्रंथोंके पाठसें, जिनमूर्त्तिकी पूजाका–निषेधरूप पाठको, दिखलाती हुं ॥ ऐसा उन्मत्तपणा करके, और महापुरुषोंके लेखका आशयको समजे विना, और अपनी जूठी पंडिताइके छाकमें आइ हुई, जैन सिद्धांतोंसें–सर्वथा प्रकारसें, जिन मूर्त्ति पूजाको निषेध करने रूप, पाठ दिखानेको तत्पर होती है?। ऐसें निकृष्ट बुद्धिवालोंको, हम कहांतक समजावेंगे?। देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १४८ सें १५१ तक ॥ ४४ ॥

यूं कही पंचम स्वप्नका, करें अर्थ विपरीत ।
लोभसें करनेकीमना, न समजे अवनीत ॥ ४५ ॥

तात्पर्य—प्रथम ढूंढनीजीने यूं कहाथाकि, जिनमूर्त्ति पूजाका निषेध, पांठसें दिखावुंगी । अब ते विषयमें प्रथम--पंचम स्वप्नका पाठ लिखके, अपनी अज्ञानता प्रगट की है । क्यौंकि—ते पंचम स्वप्नके पाठमें, ऐसा लिखा है कि—दव्वा हारिणा मुनी भविस्सइ, लोभेन माला रोहणा देवल उवहाणादि, ककी, प्रकाश करेंगे । और ऐसें बहुतेक साधु पतित होके, अविधि पंथमें पड जावेंगे । इस लेखमें साधु मात्रको-लोभके वश होके, करनेका निषेध किया गया है । परंतु सर्वथा प्रकारसें करनेका अभाव नहीं दिखाया है । तो भी गुरुज्ञान विनाकी ढूंढनीजी, सर्वथा प्रकारसें-मंदिर मूर्त्तिका, निषेध करके दखलाती है ? परंतु एक बच्चे जितना भी विचार नहीं करती है कि—जगजाहिर, जिन मंदिर मूर्त्तिका—पूजन, सर्वथा प्रकारसें निषेध मैं कैसें करती हुं ? और ऐसी मेरी मूढता कैसी चलेगी ? परंतु तुछ हृदयवालोंको विचार रहता नहीं है । देखो सत्यार्थ. पृ. १४२ सें १४४ तक ॥ देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १५१ सें १५५ तक ॥ ४५ ॥

महानिशीथमें साधुको, द्रव्य पूजा नहि शुध ।
सर्व निरवद्य मार्गका, लोप करें नहि बुध ॥ ४६ ॥

अरिहंत भगवंत पाठसु, किया मूर्त्तिका बोध ।
इसी सूत्रके पाठमें, तेरा लिखा तूं सोध ॥ ४७ ॥

तात्पर्य—पंच महाव्रतको अंगीकार करनेवाले, द्रव्य रहित साधुको—द्रव्य पूजा करनी सो शुद्ध नहीं है । क्यौंकि—साधु हुये

बाद, श्रावक धर्मकी करनीरूप-द्रव्य पूजा करें तो, सर्वथा प्रकार-
सें जो निर्वद्यका मार्ग है, उसका लोप करनेसें, महा प्रायश्चितका
पात्र होता है । इस वास्ते बुद्धिमान पुरुषो, ते सर्व सावद्यके त्याग
रूप-मार्गका लोप, कभी न करें इस । वास्ते साधु पुरुषोंको ही-
द्रव्य पूजा करनेका, निषेध किया है । परंतु श्रावकोंको तो-
कयबलिकम्मादिक, पाठोंसें, अनेक जगेंपर-जिन मूर्त्तिकी पूजा
करनेकी, हमेसां आज्ञाही दिखाई हुई है । किस वास्ते तीर्थंकरोंकी
अवज्ञा करके, अनंत संसार भ्रमणका बोजाको उठाते हो ? ॥४६॥

अब इसीही सूत्रके पाठमें, थोडासा ख्याल करके देखोकि-
अरिहंताणं भगवंताणं, कह करके ही, तीर्थंकरोंकी-अलौकिक
परमशांत मूर्त्तिका बोध, गणधर महा पुरुषोंने कराया है । परंतु
इस पाठमें-प्रतिमाका बोधको कराने वाला, नतो कोई-चैत्य, शब्द
रखा हुवा है । और नतो कोई-प्रतिमा, शब्द भी लिखा हुवा है ।
केवल-अरिहंत भगवंत के ही पाठसें, तीर्थंकरोंकी-मूर्त्तिका बोध,
कराया हुवा है । और ढूंढनीजीने भी-प्रतिमाका ही अर्थ, किया
हुवा है । तो इहांपर थोडासा विचार करो कि-जिन प्रतिमा, जिन
सारखी होती है या नहीं ? । और जिन प्रतिमाकी-अवज्ञा करने
वाले, तीर्थंकरोंके वैरी है या नहीं ? । और जिन मूर्त्तिको-पथ्थर,
पहाड, कहने वालोंका चित्त, पथ्थर पहाडरूप है या नहीं ? ।
और तीर्थंकरोंकी-अवज्ञा करके, अनंत संसाररूप, महा समुद्रमें-
झंपापात, करते है या नहीं ? । और अपनी कीई हुई-सर्व कष्ट
क्रियाको, निष्फलरूप ठहराते हैं या नहीं ? । और पंडित नाम
धरायके-अपनी चतुराइमें, धूड गेरते है या नहीं ? । इस वास्ते
थोडासा ख्याल करके, पिछे योग्य मारगका विचार करो ? ।

देखो. सत्यार्थ. पृ. १४४ से १४६ तक-ढूंढनीजीका लेख ॥ पिछे इनकी समीक्षा देखो. नेत्रां. पृ. १५५ से १६२ तक ॥ ४७ ॥ इहांतक ढूंढनीजीने दूसरा पाठसें जो जिन मूर्त्तिका-निषेध दिखाया था ? उनका विचार किया गया ॥

॥ अब ढूंढनीजीके तिसरा पाठका विचार करते है ॥

तीनों चोवीसी तणी, कही प्रतिमा बहुतेर ।
वंदन पूजन भी कहा, तोभी करें अंधेर ॥ ४८ ॥

तात्पर्य—नंदी सूत्रमें, मूल सूत्रोंकी नोंध दिखाइ है, उस नोंधकी गिनतीमें आया हुवा, यह विवाह चूलियाका पाठ—सत्यार्थ. पृ. १४७ सें, ढूंढनीजीने लिखा है। उसमें ऋषभ आदि (७२) तीर्थंकरोंकी प्रतिमा आदि होनेका गौतम स्वामीजीने प्रश्न किया है, उसका उत्तरमें, वीर भगवंतने कहा है कि- सर्व देवताओंकी प्रतिमा होती है । फिर गौतम स्वामीजीने, केवल तीर्थंकरोंकी ही—प्रतिमाओंका, वंदन, पूजन,—करनेके विषयमें, प्रश्न किया है । इस दूसरा प्रश्नके उत्तरमें भी, वीर भगवानने यही कहा कि—हा गौतम, तीर्थंकरोंकी प्रतिमाओंको, वांदे भी, और पूजे भी ।

और ढूंढनीजीने भी, सत्यार्थ. पृ. १४८ में—यही अर्थ लिखा हुवा है । परंतु आगे तिसरा प्रश्नोत्तरमें, महा नीशीथका पाठकी तरां, साधु पुरुषोंको ही—द्रव्य पूजन करनेके निषेधका, परमार्थको नहीं समजती हुई, और दूसरा प्रश्नोत्तरमें दिखाया हुवा, जिन मूर्त्तियांका—वंदन, पूजनरूप, वीर भगवानके उपदेशका भी—लोपको करती हुई, और तीर्थंकरोंकी भक्तिसें जिन मूर्त्तिकी पूजा करने वाले, भव्य प्राणियोंको—मिथ्यात्वी, अनंत संसारी, जूठे जूठ लिख मारती है ? । और वीर भगवानको भी साथमें कलंकित करती

है । और इस विवाह चूलिया सूत्रका पाठमें दिखाई हुई, यक्ष, भूतादिकोंकी-प्रतिमाओंको, वंदन करनेका, और पूजन करनेका-आदेश, वीर भगवानने नहीं दिखाया है । तोभी ढूंढनीजी अपने ग्रंथमें जगें जगेंपर उनोंकी प्रतिमाओंका, वंदन, और पूजन भी, करनेकी सिद्धि करके दिखलाती है । इतना ही मात्र नहीं, परंतु जैनके-सर्व आचार्योंको, और जैनके-सर्व ग्रंथोंको भी, मथ्था खुल्ला करके निंदती है ! । और ढूंढनीजी अपने आप जैन धर्मसें भ्रष्ट होती हुई, दूसरे भव्य प्राणियांको भी, जैन धर्मसें भ्रष्ट करनेका-उद्यम कर रही है । और अपना साध्वीपणा भी दिखाती है ! । एसें मूढोंको, हम कहांतक शिक्षा देते रहेंगे ? । देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. १६२ सें १६७ तक ॥ ४८ ॥

पडिसोयगामी साधु है, द्रव्य रहित विशुद्ध ।
फलफूलादिक द्रव्यसें, पूजा सूत्र विरुध ॥ ४९ ॥

तात्पर्य-संसारिक सुखोंसें विमुख, सो पडिसोय गामी, साधु पुरुषो कहे जाते है । सो सर्व प्रकारका द्रव्यसें रहित होनेसें, उनोंको-फलफूलादिक द्रव्योंसें, द्रव्य पूजा करनी सो सूत्रसें विरुद्ध है । क्योंकि-द्रव्य रहित पुरुषोंको, द्रव्य पूजा करनीसो, कवीभी उचित न गीनीजायगी । इसवास्ते-साधु पुरुषोंको, तीर्थंकरोंकी जो दूसरी-भाव पूजा है, सोही करनी उचित है । इसवातका परमार्थको समजे विना, गुरु विनाकी ढूंढनीजी, सर्वथा प्रकारसें-जिनप्रतिमाका पूजनको निषेधकरके, वीरभगवानके-परम श्रावकोंकोभी, पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिक-मिथ्यात्वी देवताओंकी, क्रूर मूर्त्तियां-पूजानेको, तत्पर होती है ? । ओर द्रौपदी श्राविका की पास, कामदेवकी-जड मूर्त्ति, पूजानेको. तत्पर होती है ? । परंतु इतनाभी वि-

चार, नहीं करती है कि-जिस जिनदत्त सूरिजी महाराजाने, अनेक जिनमंदिरोंकी प्रतिष्ठाओ-अपने हाथसें, कराई हुई है। और ते मंदिरो, अबींभी विद्यमान है। उनकी झूठी साक्षी मैं देती हुं सो कैसें चलेगी ?। परंतु तदन क्षुद्र बुद्धिवालोंको-इतनाभी विचार कहां ?। देखो इनकी समीक्षा. नेत्रां. पृ. १६७ सें १७१ तक ॥ ४९ ॥

तप जप संयम मुनिक्रिया, भाव पूजा लहिसार।
नहीं तीनको द्रव्य है, गृहीकों दोनों प्रकार ॥ ५० ॥

तात्पर्य—जिस महापुरुषने, धन पुत्रादिक सर्व संगका त्याग करके, तप जप संयमादिक, मुनिक्रियारूप भावपूजा करनेका-अंगीकार कर लिया है। उनके पास-नतो द्रव्य है, और न द्रव्य पूजा करनेकी-आज्ञा है। अगर साधुपणालेके द्रव्यपूजा करें तो, द्रव्य संग्रहादिकसें, विपरीत मार्गको-चलाने वाला, सिद्ध होता है। इस वास्ते साधु पुरुषोंको, द्रव्य पूजा करनेका-निषेध, किया है। परंतु गृहस्थ पुरुषोंने, धनादिकका त्याग-नहीं किया है, और सर्वप्रकारका-आरंभकाभी, त्याग नहीं किया है। इसी वास्ते द्रव्यधर्मके साथही, भावधर्मका अधिकारी, श्रावकोंको दिखलाया है। और साधु है सोतो-केवल भावधर्मकाही, अधिकारी है ॥ देखोकि—श्रावको है सो, अपना भाव धर्मकी प्राप्ति करलेनेके वास्ते १ ढूंढक साधुओंको रहनेके वास्ते-स्थानक बंधवावते है ?। २ [1]दीक्षा महोत्सव करते है ?। और ३ साधुओंका [2]मरण महोत्सव भी, श्रावको ही करते है ?। और संथारी साधुको-वंदना करनेको, गाडी घोडे

[1] दीक्षा महोत्सव। [2] मरण महोत्सव। यह दोनो प्रकारकी जो श्रावक भक्ति करते है सो-साधुका द्रव्य निक्षेपकी ही भक्ति है॥

दोडावते हुये, श्रावको दूर दूरतक जाते है ? और संघ निकाल करके, ढूंढक साधुओंकी एक नवीन प्रकारसें, यात्रा करनेको- निकलते है ? इत्यादिक अनेक प्रकारके-धर्मके कार्यमें, जिमना, जिमावना, आदि-महा आरंभका कार्य, तुमेरे ढूंढक श्रावको, किस हेतुके वास्ते करते है ? तुम छेवटमें-कहोंगे कि, संसार खाता। हम पुछते है कि, इसमें तुमेरा मन कल्पित, संसार खाताका-क्या संबंध है ? । क्या लडके ल- लडकीका-विवाह करनेको प्रवृत्त मान होते हो ? । जो संसार खाता कह देते हो ? । अथवा मिथ्यात्वी यक्षादिक देवोंकी, पथ्थ- रकी मूर्त्तिकी पास जैसें धन पुत्रादिक लेनेके वास्ते, ढूंढनीजीने भे- जेथे, तैसें क्या धनपुत्रादिक लेनेके वास्ते पूर्वमें दिखाये हुये सर्व कार्य कराते हो ? ।

और वीरभगवानके-परमश्रावकोंके, दररोजका जिनमूर्त्तिका पूजनको छुडवायके, कयबलि कम्मा, के पाठसें-पितर, दादेयां, भूतादिक-मिथ्यात्वी देवताओंकी मूर्त्तियां दररोज, विना कारण- पूजानेको तत्पर होते हो ? । तुमेरा यह संसार खाता है सो क्या चिज है ? । तुमेरा संसार खाताका-स्वरूप, द्वितीय भागमें, मालूम हो जायगा । किस वास्ते जैन कुलमें-अंगारारूप बनके, तीर्थंकरों- की भी आशातना करते हो ? हमने तो तुमेरा हितके वास्ते लिखा है, आगे जैसी तुमेरी भवितव्यता । अगर तुमेरे कर्मके योगसें, दूसरा विशेष धर्मकार्य न बन सके, तोभी-तीर्थंकर, गणधरोंकी, निंदा मात्रसें तो बचो ? । हम भी कहांतक तुमको समजावेंगे ? । और जे जे ढूंढनीजीने, मूर्त्तिपूजा निषेधके पाठो-दिखाये है, सो सो सर्व साधु पुरुषोंके-द्रव्य पूजनका; निषेधके-वास्तेंही लिखे गये है। परंतु गृहस्थोका तो-दररोजके षट् कर्मरूप, द्रव्य धर्मसें-भाव धर्म

का, परम आलंबन स्वरूप काहा है। इसी वास्तेही-कयबलि कम्मा, का पाठके संकेतसें, श्रावकोंके वर्णनमें-जिन मूर्त्तिपूजारूप द्रव्य धर्म दिखाया गया है। नहीं के मिथ्यात्वी-भूत, यक्षादिक, देवताओंकी-भक्तिकरानेके वास्ते, लिखके दिखाये है। किस वास्ते-दया दयाका, जूठा पोकार करके, जैन धर्मसें-सर्वथा प्रकारसें, भ्रष्ट होते हो? ॥ ५० ॥

द्रव्य रहित श्रावक नहीं, ताते द्रव्यने भाव।
पूजा करणि गृहस्थको, भर दरियेंमें नाव ॥ ५१ ॥

तात्पर्य-श्रावक है सो, साधुकी तरां-द्रव्यविनाका नहीं है। और सर्व सावद्यका-त्यागीभी, नहीं है। सोतो सदाही महा आरंभमें फसा हुवा है। और साधुकी-वीस विश्वा दयाकी अपेक्षासें, मात्र-सवा विश्वा दया काही, पात्र है।इस वास्ते द्रव्य पूजाकी साथ ही, भाव पूजाका-अधिकारी दिखाया गया है। इसी वास्तेही वीरभगवानके श्रावकों, प्रथम-तीर्थंकरोंकी मूर्त्ति पूजाको करके, पीछेसें भगवानकोभी-वंदना करनेको, गये है। और उस पूजाका वर्णन-कयबलि कम्मा, का पाठके संकेतसें, जगें जगें पर-जैन सिद्धांतकारोंने, लिखा हुवा है। नहींके सत्यार्थ. पृ- १२६ में, ढूंढनीजीने दिखाये हुये, मिथ्यात्वी-पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिकोंकी भयंकर मूर्त्तियांको दररोज पूजानेके, वास्ते पाठको दिखाया है। यह वीतराग देवकी भक्तिकी करणि है सो तो, सदा आरंभमें वैठे हुये, संसारी प्राणियोंको, भर दरियेमें-महा नवाजरूप है, नहींके संसारमें डुबाने वाली है। यह तो सद्गुरुका पंजाविनाके, हमारे ढूंढक भाइयोंकी-मतिकाही, विपर्यासपणा हुवा है ॥ ५१ ॥

जूठ बोलना पाप है, नहीं जूठका अंत ।
निंद्या करें सब संतकी, आपही आप महंत ॥ ५२ ॥

तात्पर्य—सत्यार्थ. पृ. १७२ में, जूठ बोलना पाप है, ऐसा लिखके—पृ. १७५ तक, सम्यक्त्व शल्योद्धारादिक ग्रंथ कर्ताओंकी निंद्या करके, अपना बडा ही साध्वीपणा दिखाया है। परंतु ढूंढनीजीने, अपना ग्रंथका नाम—सत्यार्थ चंद्रोदय, रखके भी, प्रायें एक बात भी सत्य नहीं लिखी है। क्यौंकि ग्रंथका सब पाया ही उंधा रचा है, तो पिछे ढूंढनीका लेखमें सत्यपणा ते कहांसे—आने वाला है ? इस बातको पाठक वर्ग तो, हमारा पूर्वका लेखसें, अछीतरांसें समज भी लेवेंगें, तो भी उनोंकों—विचार करनेका, बोजा कमी होजाने के वास्ते, थोडिसी सूचनाओं करके—फिर भी याद दिलाता हुं, सो प्रथम ढूंढनीजीका सत्यार्थसें ही—विचार करलेना। पिछे मरजी होवे तो, फिरसें हमारा नेत्रांजनमें भी, आप लोकोंने निघाको फिराना।

(१) देखो सत्यार्थ. पृ. ६ में—पिछली तीन नयोंको, सत्यरूप ठहरायके, प्रथमकी—[१]चार नयोंको, असत्यरूप, ठहरानेका प्रयत्न किया। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ १ ॥

(२) पृ, ९ मे—नाम, स्थापना, यह दोनों निक्षेप, अवस्तु ठहराया। और पृ. ७२ में—पूर्ण भद्रादिक यक्षोंकी, स्थापनारूप—मूर्त्तियांसें, धन पुत्रादिककी प्राप्ति होनेका दिखाया। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २ ॥

(४) और पृ. ९० सें, द्रौपदीजीके विषयमें—अनेक प्रकारकी

१. जो प्रथमकी चार नयोंको—असत्य ठहरावेंतो, साधु श्रावककी जितनी उत्तम करनी है, उनको सबको—असत्य ठहरानेका, महा प्रायश्चित होता है ॥ देखो, नेत्रां. पृ. २१ । २५ में ॥

जूठी कुतर्कों करके, पृ. ९८ में–जिन प्रतिमाके बदलेमें, कामदेवकी स्थापनारूप मूर्त्तिसें, वरकी प्राप्ति करानेको तत्पर हुई ?। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ ३ ॥

(४) और. पृ. १२४ में–कयबलिकम्मा, के पाठमें–अनेक प्रकारकी जूठी कुतर्कों करके, वीर भगवानके भक्त श्रावकोंका, जिन पूजनको छुडवायके, पृ. १२६ में–मिथ्यात्वी, पितर, भूतादि-कोंका–स्थापना निक्षेपरूप, मूर्त्तियांको, दररोज पूजानेको तत्पर हुई?। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ?। जब मूर्त्तियां, कुछ वस्तु रूपकी ही नहीं है, तो पिछे ढूंढनीजी इनोंकी सबकी मूर्त्तियांको पूजानेको क्यों तत्पर हुई ? ॥ ४ ॥

(५) निक्षेप चार (४) जैनसिद्धांतोमें–वर्णन किये है, तो भी पृ. ११ में–आठ करके बतलाया ?। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ ५ ॥

(६) भगवानकी मूर्त्तिमें–एक स्थापना निक्षेप, प्रसिद्धरूप है। तो भी पृ. २८ में–एक मूर्त्तिमें ही चारों निक्षेप हमारी पास मनानेको तत्पर हुई ?। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥६ ॥

(७) जब पृ. २८ सें–भगवानकी मूर्त्तिमें ही, भगवानके चारों निक्षेप, हमारी पास–कबूल करानेको तत्पर हुई है, तब तो ढूंढनीजीने भूत, यक्ष, काम देवादिकोंकी–मूर्त्तियांमें भी, भूतादिकोका चारों निक्षेप, अवश्य ही माने होंगे ? जब तो हृदयसें भूतादिकोंकी भक्ता-नी बनके, उनोंकी मूर्त्तियांको, पूजानेको तत्पर होती है, और उपरसें तीर्थंकरोंका–भक्तानी पणा दिखाती है। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ प्रपंच नहीं है ?

(८) पृ. ४० में–वज्र करण राजाने, अंगूठीमें–जिन मूर्त्तिको

दर्शन करनेके वास्ते रखी, उसका-गपड सपड, अर्थ लिखके दिखाया ?। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ ८ ॥

(९) पृ. ४९ में, शास्त्र बहुका दृष्टांतसें-मूर्त्ति मात्रको, पाषण ही ठहराया। तो भी पृ. ९३ में-पूर्ण भद्र यक्षादिकोंकी, पाषाणकी मूर्त्तिसें-धन पुत्रादिक, दिवानेको तत्पर हुई ?। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ ९ ॥

(१०) और द्रौपदीजीके विषयमें, प्रगट रूप जिनमूर्त्तिका अर्थको छोड करके, पृ. ९८ में, कामदेवकी-पाषाणकी मूर्त्तिसें, द्रौपजीको-वरकी प्राप्ति करानेको, तत्पर हुई ?। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ १० ॥

जब मूर्त्ति मात्रको, जड पाषाणरूप समजते हो, तो पिछे-तुम बडे ज्ञानी होके, धन पुत्रादिक लेनेको क्यौं दोडते हो ? क्या वीतरागी परमशांत मूर्त्ति ही, तुमेरे नेत्रोंमें खुप रही है ? तब तो यह हमारा अंजन, बरोबर-करते रहोंगे तो, तुमेरे नेत्रोंमें-आगेको मैल न रहेगा।

(११) पृ ९१ मे-ढूंढनीजीने लिखाकि, अक्षरोंको देखके ज्ञान होता नहीं। तोभी तुम लोक जूठे जूठ अक्षरोंको लिखके, लोकोंको-ज्ञान प्राप्त करानेके वास्ते, पोथीयां छपवाते हो ?। क्या यह तुमेरे ढूंढकोंका जूठ नहीं है ? ॥ ११ ॥

(१२) पृ. ३४ में-ढूंढनीजीने स्त्रीकी मूर्त्तिसें, काम जगाया। पृ. ४२ में, मित्रकी मूर्त्तिसें-प्रेम जगाया। और पृ. २६ में. आकार देखनेसें—ज्यादा, और जल्दी, समज होनेका दिखाया। और पृ. ६७ मे, भगवानकी मूर्त्तिमें, श्रुतिमात्रभी—लगानेका, निषेध करके दिखाया ?। क्या यह तुमेरे ढूंढकोंका, जूठ नहीं है ? ॥ १२ ॥

(१३) पृ. ५७ में—[1]आकार, वा नाम, धरके, उसको—वंदने, पूजनेसें—लाभ नहीं होवे। एसा लिखके, पृ. ७३ में, पूर्णभद्रादिकोंका—आकार, और नामसें-धन पुत्रादिकका लाभ होनेका, दिखाया ?। और पृ. ९८ में, काम देवका—आकार, और नामसें—द्रौपदीजीको, वरका लाभ दिवानेको तत्पर हुई ?। क्या यह तुमेरे ढूंढकोंका जूठ नहीं है ? ॥१३॥

(१४) पृ. ६९ में—सम्यक् दृष्टि, मिथ्या दृष्टि, यह दोनों प्रकारका देवताओंकी पास, शाश्वतीजिन प्रतिमाओंको, व्यवहारिक कर्त्तव्यसें पूजाई। और पृ. ७० में, उवाई सूत्रसें—महावीर स्वामीजीके, चुंचुवेंका वर्णन विना, शिखासें नखतकका वर्णन कबूल किया। और राय प्रश्नीजीसें, जिन पडिमाका—दाढी मुछां के विना, नखसें शिखा तकका, वर्णन तूंने दिखा, तोभी पृ. ६७ में, ढूंढनीजी लिखती है कि—सूत्रोंमें तो—मूर्त्तिपूजा, कहीं नहीं लिखी है। यदि लिखी है तो हमें भी दिखाओ ?।क्या ढूंढनीजीका यह लिखना जूठ नहीं है ? ॥ १४ ॥

(१५) पृ. ६१ में—मूर्त्तिपूजा, पंडीतोसें तो—ढूंढनीजीने ही सुनी, और शास्त्रोंमें भी लिखी हुई देखी, तोभी पृ. १४२ में, लिखती है कि-सूत्रोंमें, मूर्त्तिपूजाका—जिकरही नहीं। परंतु इतना मात्रसें भी, संतोषको नहीं होती हुई, उलटपणे ते मूर्त्ति पूजाके पाठोंका अर्थ, जूठे जूठ लिखके—निषेध करनेको, तत्पर

---

[1] देखो, सत्यार्थ. पृ. १९ में, ढूंढनीजी,मूर्त्तिमें—नाम निक्षेप मान्य करकें, पिछेसें हमारी पासभी—मान्य करानेको तत्पर हुई है ? मूर्त्तिमेंभी चारों निक्षेपकी मान्यताके अभिप्रायसेंही, ढूंढनीजीने यह लेख लिखा है ॥

होती है ? । क्या यह जूठे जूठ, ढूंढनीजीके वेढंगापणाका, धांधल नहीं है ? ॥ १५ ॥

(१६) पृ. ७५ में, ढूंढनीजीने लिखाके, सुधर्मा स्वामीजी का लेख सैंकडो पृष्ठों तकका ऐसा है कि, जिससे हमारा आत्माका स्वार्थकी सिद्धि नहीं होती है, तो क्या हमारे ढूंढक भाइओ, अपना जूठे जूठ—गंदा लेखोंसें, अपना आत्माका स्वार्थकी सिद्ध, मानने को तत्पर हुये है ?। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ १६॥

(१७) पृ. ७७ में—ढूंढनीजीने, बहुत्रे अरिहंत चेइय, के पाठसें, जिन मंदिरोंका अर्थको मान्य करकें, दूसरा (आयारवंत चेइय) का, पाठांतरका पाठको—प्रक्षेपरूप, ठहरानेका—प्रयत्न किया ?। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ १७ ॥

(१८) पृ. ७८ में—ढूंढनीजीने अंवडजीका, पाठ लिखा है । और पृ. ७९ मे, अरिहंत चेइय, पाठका अर्थसम्यकज्ञान, महाव्रत, अनुव्रतादिकरूप, करके दिखलाया है ? ॥ १८ ॥

(१९) और पृ. ८७ में, आनंद श्रावकका अधिकारमें, इसी ही—अरिहंत चेइय, का पाठ, प्रगटपणे लिखके भी–सर्वथा प्रकारसें लोप करनेका, प्रयत्न किया है ॥ १९ ॥

(२०) और. पृ. १०९ में, चमरेंद्रके पाठार्थमें, इसी ही–अरिहंत चेइय, के पाठमें, पद शब्दको, अपना घरमेंसें–जोड करके, केवली छद्मस्थका अर्थ करके दिखलाया है ? ॥ २० ॥

इस प्रकारसें–तीनों स्थानमें, अरिहंत चेइय, का एक ही पाठसें, जिन मूर्त्तिका प्रसिद्ध अर्थको–छोड करके, मनः कल्पनासें भिन्न भिन्न प्रकारसें, अर्थ करके–दिखलाया है । क्या यह ढूंढनी-जीका जूठे जूठ नहीं हैं ? ॥

(२१) और चैत्य शब्दका अर्थ, दोचार प्रकारका ही-कोशोंमें प्रसिद्ध है। तो भी ढूंढनजीने, पृ. १०६ सें-११२ अर्थ, जूठे जूठ लिखके दिखाया,। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ?।।२१॥

(२२) पृ. १२१ में, महा निशीथकी गाथाके-जिन मंदिरोंका अर्थको, उपमावाची करके दिखाया ?। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २२ ॥

जो कबी जिनेश्वर देवके, मंदिरों ही दूनीयामें विद्यमान न होते तो, ढूंढनीजी-उपमा हीं, किसकी करके दिखलाती ? ॥

(२३) पृ. १२९ सें १४० तक, सब आचार्योंकी निंदा, और सब जैन ग्रंथोंको भी निंदा, करके-टीका, चूर्णि, भाष्य, ढूंढनीजी अपने आप बन बैठी ? ।सो क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २३ ॥

(२४) पृ. १४२ में, साधु पुरुषोंके-अयोग्य वर्त्तनका निषेधरूप, पंचम स्वप्नके पाठसें, सर्वथा प्रकारसें-जिनमंदिरादिकोंका निषेध करके, ढूंढनीजीने दिखलाया ? । सो क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २४ ॥

(२५) पृ. १४४ में, महा निशीथके पाठमें भी, साधु पुरुषोंकी-पूजाका हि, निषेध किया गया है। तो भी ढूंढनीजी, सर्वथा प्रकारसें, जिनमूर्त्ति पूजाका-निषेध करके, दिखलाती है ?। और दूसरी जगेंपर, मिथ्यात्वी मूर्त्तियांका, पूजनकी-सिद्धि करके, दिखलाती है ?। सो क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥ २५ ॥

(२६) पृ. १४७ सें, विवाह चूलियाका पाठमें, ७२ तीर्थंकरोंकी प्रतिमाका-वंदन भी, और पूजन भी, करनेका-वीर भगवानने ही दिखलाया है, और पिछेसें तीसरा प्रश्नमें साधुकी पूजाका,

निषेध किया है। उसका सर्वथा प्रकारसें–निषेध करके, और दूसरा प्रश्नमें मूर्त्ति पूजाकी आज्ञाको देनेवाले वीरभगवानको भी, कलंकित करके–दिखाया। क्या ढूंढनीजीका यह जूठ नहीं है ? ॥२६॥

(२७) जिनदत्त सूरिजी महाराजने, अपने हाथसे, अनेक मंदिरोंकी—प्रतिष्ठाओ, कराई है। परतु अपना लेखमें साधुकी पूजाका निषेध करके दिखलाया, उस साधुकी पूजाका निषेधके बदलमें–पृ. १५० सें, ढूंढनीजीने, सर्वथा प्रकारसें—निषेधकरके दिखलाया। क्या यह ढूंढनीका जूठ नहीं है ? ॥ २७ ॥

पाठक वर्ग ! यह सतावीस कलमके नमुनेसें, ढूंढनीजीका कितना सत्यपणा है सो, इसरा मात्रसें दिखाया है ?। इनकी दिशाके अनुसारसें, आपलोकोने—विचार करलेना, क्योंकि सर्वथा प्रकारके जूठा लेखकों–किस किस प्रकारसें, हम लिखके दिखावेंगे ?। ढूंढनीजीने हद उपरांतका जूठ लिखके, जो अपना—साध्वीजीपणा दिखाया है सोतो, भोले जीवोंको भ्रमानेके वास्तेही लिखा है, बाकी तो सब ग्रंथ, जूठे जूठ लिखके, जैन धर्मके तत्त्वोंसें—भ्रष्ट होती हुई ढूंढनीजी, दूसरे भव्य प्राणियोंकोभी, जैनधर्मके तत्त्वोंसें भ्रष्ट करनेकाही—उद्यमकर रही है। तें सिवाय नतो ढूंढनीजीके लेखमें कोई तत्त्व है, और न तो कोई सारभी है ॥ तोभी ढूंढनीजीके पक्षकार, विचार चतुर, जैन समाचारके अधिपति वाडीलाल शाह, ढूंढनीजीका लेखकी–बडी प्रसंसाकरके, सत्यतामें अपनी सहानुभूति देते रहे ? न जाने ऐसें प्रसिद्ध पत्रकार होके, ढूंढनीजीके लेखका विचार किस प्रकारसें किया होगा?। सो कुछ हम समज–सकते नहीं है ॥ और जैन समाचारके अधिपतिनेभी–सम्यक्त्व, अथवा धर्मनो दरवाजो, इस नामसें गूजराती भाषामें, एक ग्रंथ

प्रसिद्ध कियाथा। उसग्रंथ बनानेमें दो तीन ढूंढक पंडितो सहाय भूतभी हुयेथे, तोभी सब जूठही जूंठ लिख माराथा। उसकाभी उत्तर हमारे तरफसें दिया गया है, सो पाठक वर्ग मंगवायके देख लेवे। हमारे ढूंढकभाइओ, किसकिस प्रकारकी जूठी पंडिताई करके दिखाते है सो मालूम हो जायगा.

॥ इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति श्री विजयानंद सूरीश्वर, लघुशिष्येन अमर विजयेन, ढूंढक हृदय नेत्रांजन प्रथम भाग, तात्पर्य प्रकाशक दुहाबावनी संयोजिता, सा समाप्ता ॥

॥ मूढ पुरुषोंमें सिद्धांतके वचनोंकी निष्फलता ॥

॥ विचारसारा अपि शास्त्रवाचो, मूढे गृहिता विफलीभवंति ।
मितंपचग्राम्यदरिद्रदाशः, कुर्वंत्युदारा अपि किं सुजात्यः॥१॥

अर्थ—शास्त्रके वचनो होते है सो तो, विचार करनेको, सदा साररूप ही होते है। परंतु मूढ पुरुषो–ते वचनोंको ग्रहण करते हुये, निष्फलरूप ही कर देते है। जैसें कि–सुजातिकी स्त्रियो, वडी उदार भी होवे, परंतु गामडाओका–दालिद्र और कृपण पुरुषोंके घरमें गई हुई, ते उत्तम उदार स्त्रियां, उहांपर विशेष क्या कर सकतीयां है? अपितु विशेष कुछभी नहीं कर सकतीयां है ॥ तैसें-ही—शास्त्रके वचन, वडे गंभीर, और वडे उदार, और अर्थसें भरे हूयेभी होते है। तोभी ते मूढ पुरुषोंके हाथमे गये हुये, कभीभी सफलताको प्राप्त नहीं होते है। किंतु ते [1]मूढ पुरुषो–शास्त्रके गंभीर वचनोंका, अर्थको नाश करते हुये, अपनाभी साथमें नाश ही कर लेते है. ॥ इति काव्यार्थ ॥ १ ॥

अब इसकाव्यका, कुछ थोडासा तात्पर्य लिखते है, सो तात्पर्य

---

१ जैसेंकि–श्रीअनुयोग द्वार सूत्रके वचनोंका नाश, सत्यार्थ चंद्रोदयमें, ढूंढनी पार्वतीजीनें किया–देखो इनका विचार–नेत्रांजनमें ॥ और–धर्मना दरवाजा, नामका ग्रंथमें–शाह वाडीलालने किया। देखो इनका विचार–धर्मना दरवाजाने जोवानी दिशा, नामका ग्रंथमें ॥ इन दोनोने कितनी मूढताकीई है सो मालूम होजायगा ॥

यह है कि—जैन सिद्धांतोंके वचन सहस्र धारा रूप, अथवा लक्ष धारा रूप, महा गंभीर स्वरूपसें—गणधर महा पुरुषोंने, गूंथन किये हुये है। और—उस महा गंभीर वचनोंमें, रह्या हुवा अति सूक्ष्म विचार, कोइ २ महा पुरुष, सद्गुरुकी कृपाका पात्र, और विचार चतु र्मुख, होते है सोही—अपनी अपनी योग्यता मुजब, बारिक दृष्टिसें देख लेते हुये। ते महा पुरुषो उस सिद्धांतोंका वचनके अनुसारसें, भव्य प्राणियोंके हितके लिये—योग्य अर्थ, निर्युक्तियांमें, और भाष्योंमें, और आगे उनकी टीकाओ आदि प्रकरण ग्रंथोंमें, लिखके दिखला गये है। और छेवटमें—ते महा पुरुषोभी कह ते गये है कि, एकैक सूत्रमें—अनंत अनंत अर्थ, रह्या हुवा है। हम कहांतक लिख लिखके दिखावेंगे ? ॥

इस वास्ते—नतो निर्युक्तियां, निरर्थक है। और नतो—भाष्यों, निरर्थक स्वरूपकी है। और नतो सिद्धांतोंकी—टीकाओ, निरर्थक है। और नतो जैन के—प्रकरण ग्रंथो, निरर्थक रूपके है। महा पुरुषोंके किये हुये—ग्रंथोंमेंसें, एक भी ग्रंथ निरर्थक नहीं है ॥

और जो दूसरे साधारण मत वाले है उसमें भी—यह वात, प्रसिद्ध है कि— टीका गुरूणा गुरुः। अर्थात् टीका है सो—गुरुका भी गुरु है। उस टीका के विना, आज कलके—साधारण बोध वालेसे, कबी भी योग्य अर्थ नहीं हो सकता है। प्रथम देखो आज तक तुमेरे ढूंढकोंके ग्रंथोमें, कितनी सत्यता आइ है? तो पिछे उनके उपदेशमें सत्यता कहांसें आने वाली है? सो प्रथमसें विचार करते चले आवो, पिछे महा पुरुषोंको दूषित करो ?। नाहक आप भवचक्रमें डूबते हुये, दूसरे भव्य प्राणियांको—किस वास्ते डोबते

हो ?। प्रथम देखो- समकत्व शल्योद्धार, ढूंढक जेठमलजीके समकित सारका लेखमें, कितनी सत्यता आई है ?॥

फिर देखो— गप्पदीपिका समीर । ढूंढनी पार्वतीजीकी ज्ञान दीपिकामें, कितनी सत्यता आई हुई है ?॥

फिर देखो—धर्मना दरवाजाने जोवानी दिशा, तुमेरे दोतीन-बडे बडे पंडितोने मिलकर, बनाया हुवा-धर्मना दरवाजा, नामका ग्रंथमें, कितनी सत्यता आई हुई है ?॥

फिर देखो, यह-ढूंढक हृदय नेत्रांजन, ढूंढनी पार्वतीजी-का-सत्यार्थ चंद्रोदयमें, कितनी सत्यता आई हुई है ?॥

और श्री अनुयोग द्वार सूत्रके-मूल पाठका अर्थको, किस प्रकारसें विपरीतपणे समज्या है ?। और ढूंढनीजीके जूठा गर्वकी सीमा, कहांतक पुहची है, सो अछीतरांसें ख्याल करो ?। केवल-तीर्थंकरोंकी निंद्या, गणधर महा पुरुषोंकी भी निंद्या, और जैन धर्मकी रक्षा करने वाले-सर्व जैनाचार्योंकी भी निंद्या, के सिवाय तुमेरे ढूंढकों के-हाथमें, कौनसा विशेष धर्म आया है ?॥

और-जो दया दयाका जूठा पुकार करके, तीर्थंकरोंके सदृश तीर्थंकरोंकी भव्य मूर्त्तियांकी, अवज्ञा करनेको तत्पर हो जाते हो सोतो, तुमेरी एक जातकी, मूढता हैं। परंतु वास्तविक प्रकारकी-दया नहीं है ?॥

क्योंकि जब तक-सम्यक् ज्ञान पूर्वक, दया धर्ममें-प्रवृत्ति न-कीई जावे, तब तक-दया धर्म, वास्तविक नहीं कहा जावेगा। किंतु-दया मूढता ही, कही जावेगी। क्योंकि-दीक्षा महोत्सव, मरण महोत्सव, साधुकी संघ यात्रादि, साधुके निमित्ते-आरंभवाले

कार्योंमें, तुमको तुमेरी दया माताका—ध्यान भी नहीं आता है। मात्र तीर्थंकर देवकी भक्तिके वखतमें ही, तुमेरी जूठी कल्पी हुई दया माता—तुमको आके सताती है, और वीतराग देवकी भक्तिसें भ्रष्ट करती है। और तीर्थंकरोंकी भक्तिके सिवाय—दूसरी जगेंपर, ते जूठी कल्पी हुई तुमेरी दया माता—तुमको कुछ भी आके कहती ही नहीं है. ॥

तो इहांपर—थोडासा विचार करोकि, यह दया मूढता कही जावेगी कि, वास्तविक प्रकारकी—दया कही जावेगी ?। हमने जो शास्त्रोंमें अनेक प्रकारका, मूढताके भेद देखे है, उसमेंका यह भी एक भेद ही मालूम होता है। नहीं तो इतना विपरीतपणा—जगें जगेंपर, हमारे ढूंढकभाइयांका क्यौं आता ?। अर्थात् कवी भी नहीं आता। यह तो कोइ—एक प्रकारका, अघोर कर्मकी ही विचित्रता, मालूम होती है। अगर जो ऐसा न होता तो—तीर्थंकरोंकी परम शांत मूर्त्तियांकी पूजाके स्थानमें, परम श्रावकोंकी पास—पितर, दादेयां, भूत, यक्षादिकोंकी—भयंकर मूर्त्तियां, दररोज पूजानेको—क्यौं तत्पर होते ? ॥

और यह—मूढता, कोइ ऐसी महा पापिनी है कि, जिसने पूर्व कालमें भी—अनेक प्रकारसें, अनेक प्राणिओंको, फ़साये है। और इस लोक परलोकका स्वार्थसें भी, भ्रष्ट ही किये है। परंतु सारा सारका—विचार करनेको, अवकाश नहीं दिया है.

॥ जैसेंकि—दुहा.

साराऽसार विचार विन, भोग इंद्रिमें लुब्ध।
कागदकी हथनी विषें, फसें हाथी हुय बुद्ध ॥ १ ॥
साराऽसार विचार विन, रसन विषयमें मूढ।

धीवर केरी जालमें, फसें मच्छ जड़ गूढ ॥ २ ॥
साराऽसार विचार विन, घ्राण विषयमें मस्त ।
फसें भमर ही कमलमें, सूर्य होय जब अस्त ॥ ३ ॥
साराऽसार विचार विन, चक्षु विषयमें अंध ।
पडें पतंग जड़ दीपमें, सवल करमका बंध ॥ ४ ॥
साराऽसार विचार विन, श्रोत्र विषयमें लीन ।
पापी जनके हाथसुं, मोत विन मरें हरिण ॥ ५ ॥
मानवशें रावण थयो, कयों न सार विचार ।
अंते मरी नरके गयो, लोकें कह्यो गमार ॥ ६ ॥
मूढ बनी दुर्योधनें, पांडवपर कियो क्रोध ।
सर्वनाश अपनो कियो, लियो न कृष्णासु बोध ॥ ७ ॥
लुटे धन और धरमको, मनके महा मलीन ।
लिखें वकें जूटुं सदा, जाणो चतुर परवीण ॥ ८ ॥
सहज वस्तुको निंदतां, बंधें पातक घोर ।
जिन मूरतिकी निंदना, सो संसार अघोर ॥ ९ ॥
दया मूढ के योगसें, मत निंदो जिन राज ।
मूरति भव समुद्रमें, पार उतारण जाज ॥ १० ॥
मित्र मूढ योगी हुवो, न कियो सार विचार ।
कंकण पीतलका लिया, किई ठगाई सुनार ॥ ११ ॥

वैसेंही-वीतरागी मूर्त्तिकी भक्तिसें भडकने वाळे, हमारे ढूंढक भाइओंके पंथमें, घामाणिक दया माताका राज्य तो नहीं है, किंतु

दया मूढताका ही राज्यकी प्रबलता मालूम होती है ?। नहितर हमारा परमोपकारी तीर्थंकरोंकी, परमशांत मूर्त्तिकी पूजाको–छुड-वायके, मिथ्यात्वी जो पितरादिक है, उनोंकी–क्रूर मूर्त्तियांकी, दररोज पूजा करानेको क्यौं तत्पर होते ?।

इस वास्ते मालूम होता है कि, हमारे ढूंढक भाइयोंके अंतःक-रणमें, कोइ एक प्रकारकी मूढताका राज्यकी ही—प्रबलता हुई होगी ?।

इसी कारणसें ही, हमारे ढूंढक भाइयांके हृदयमें–सारा सारका विचार नहीं आता होगा ?।

और इसी ही कारणसें, गणधरादिक सर्व जैन सिद्धांत कारों-का लेखसें भी, विपरीतपणे लेख लिखते है। हे ढूंढक भाइओ ! तुम दया दयाका जूठा पोकार करके, और वीतराग देवकी भव्य मूर्त्तियांकी पूजाको छुडवायके, मिथ्यात्वी देवोकी–भयंकर मूर्त्तियां, पूजानेको तत्पर होते हो

परंतु–थोडासा मध्यस्थ भावसें ख्याल करोंकि, जैन तत्त्वके विषयमें, आजतक दोनों तरफका लेख, जितना वहार आया है, उसमेंसें एक लेखभी, तुमेरे तरफका सत्य स्वरूपसें प्रगट हुवा है ?। तुम अपने आप जैन सिद्धांतोसें मिलाके देखो, मालूम हो जायगा। किस वास्ते–जैन धर्मके निर्मल तत्त्वोंका, विगाडा करके, अपने आप जैन धर्मसें भ्रष्ट होते हो ?।

हमने यह लेख तुमेरा हितके वास्ते लिखा है। तुमनें कोरा कष्ट वहुत भी किया, तोभी जैन तत्त्वका विमुखपणासें, और तीर्थंकरोंकी भव्य मूर्तिकी निंदासें, और जैन धर्मके सर्व सद्गुरु-ओकी निंदासें, और जैन धर्मके सर्व तत्त्व ग्रंथोंकी निंदासें, तुमेरा

कष्टसें क्या सिद्धि होने वाली है ? इस वातका अछीतरासें विचार करो ।

इसी वास्ते हम कहते है कि,यह तुमेरी दयामाता, विचारवाली नहीं है, किंतु दया मूढता ही है । इस प्रकारकी—दया मूढतासें, न तो तुम अपना कल्याण करसकोंगे, और न तो दूसरेका भी कल्याण कर सकोंगे, इसमें एक साधारण—उदाहरण, देके मैं मेरा लेखकी भी समाप्ति करता हुं ।जैसें कि—कोइ एक पुरुषथा, सो धर्म करनेकी तीव्र इछावाला होके, तापस व्रतको अंगीकार नकिया । उसने किसीसें श्रवण करके धर्मके स्वरूपका निश्चय किया अंते दया मूलो हि धर्मः । परंतु-ते नवीन तापस, सारा सारका मूढ व नहीं कर सकताथा । एकादिन भिक्षादिक कार्यके वास्ते, सर्वनाश तापस वस्तिमें जाते हुये, शीतज्वरसें पीडित एक तापसकी लुंटे धन रनेके वास्ते इस नवीन तापसको छोड गये । और कहते लिखें बताते हैं । कि, इसको आहार, पानी, आदि कुछ देना नहीं । हम

सहज अब ते शीत ज्वरीने, दीनपणा धारण करके, शीतल जल जिन मू उस नवीन तापसने—विचार कियाकि, अरेरे—दया मूलोहि दया मू एसा विचार करके, ते शीत ज्वरीको शीतल जल दीया ।

मूरति :अब ते ज्वरी, जल पीनेकी साथ—त्रिदोषमें आके, तरफडाट मित्र को लगा । इतनेमें दूसरे तापसों भी आ गये । माहिन होके कैकाण चाप करते हुये, कहने लगेकि—अरे अज्ञानिनः किं न तें ति । अर्थात् अज्ञानी पुरुषों क्या क्या अनर्थ नहीं करते है । भाइओ अब इस वचनको भी, ते नवीन तापसने धारण करके, वि-

चार कियाकि-हुं अज्ञानी होगा ? वास्ते कुछ ज्ञान प्राप्त करना। फिर किसीसें सुनाकि-तपसा ज्ञाना वाप्तिः। अब इस वचनको भी धारण करके, चले तपसा करके ज्ञानकी प्राप्ति करनेको पहाड उपर।

अब दूसरे तापसो थे सो, ढूंढते ढूंढते दिन पंद्रा वीसमें, पुहुचे पहाड उपर-देखा भूष तृषासें पीडित,मरण तुल्य दिशामें। ज्ञानतो क्या प्राप्त होनेवाला था ? लेकिन ते तापसो, मरण दशाकी प्राप्तिसें छुडायके अपना मठमें लेकर आगये।

फिर किसीसें सुनाकि-समाधि मूलोहि धर्मः। अर्थात् सबकी समाधि करना सोही धर्म है। अब-ते नवीन तापस, चला समाधि करनेको,चलते २ एक भाविक गाममें,वैठे समाधि लगायके। और धर्मका स्वरूप पुछनेवाले लोकोंको भी, कहता रहाकि-समाधि मूलोहि धर्मः। लोक पूजासें कुछ धनकी भी प्राप्ति हुई। परंतु-धुर्त्तोंको,धनप्राप्तिको खबर पडनेसें,भक्तिपूर्वक ते धूर्त्त लोको भी धर्मका स्वरूप, पुछनेको लगे। अब सारा सारका विचार शून्य, ते नवीन तापसने—दिखाया समाधि मूलक धर्म। धन लेनेका प्रपंचके वास्ते, ते धुर्त्तोंने भेजी वेश्याको, जाके कहनेलगी, स्वामीनाथ मेरा कामज्वरकी समाधि करो ?।

इधर स्वामीजी गये समाधि करनेको, उधरसें धूर्त्तोंथे सो धनको ले गये, गामवाले लोकोंको मालूम होनेसें, स्वामीजीको-गामसें निकाल दिये। इस वास्ते-सारा सारका विचार विना के स्वामीजीको, नतो—दया मुलक धर्मसें, कुछ कार्य सिद्ध हुवा। और स्वामीजीको, न तो तपसामें भी कुछ ज्ञानकी प्राप्ति हुई। और समाधि मूलक धर्मसें तो स्वामीजीका, दोनों भवका समाधा: नही हो गया॥

इस उदाहरणसें-विचार करोकि, जो पुरुष, साधारण मात्रका वचनमें भी,सारा सारका विचार—नहीं करता है सो, नतो इस लोकका-कार्यकी सिद्धि, कर सकता है, और नतो परलोकका भी--कार्यकी सिद्धि, कर सकता है। तो पिछे जो जैन तत्त्वका मूल सिद्धांत १ सात नयोसें गर्भित। २ चार निक्षेपादिकसें गर्भित। ३ प्रत्यक्ष परोक्ष वे मूलके प्रमाणसें गर्भित। ४ उत्सर्ग अपवादादिक षट् भंगसें भी गर्भित है। उसका तत्त्व गुरुके विना मूल मात्रसें कैसें समजा जावेगा? कबी भी न समजा जावेगा। इसी कारणसें इसमेंसें एकैक विषयके साथ, नव तत्त्वादिक स्वरूप हजारो श्लोकोंमें लिखके,महापुरुषो दिखा गये है। और ते ग्रंथो विद्यमान पणे भी है। अगर कोइ महापुरुष फिरसें भी लाखो श्लोकोंमें, लिखके दिखलावे, तो भी आगे काल विशेषसें, और पुरुष विशेषके योगसें, समजनेकी, और समजावनेकी—अपेक्षा ही बनी रहती है! इसी वास्ते कारण पायके-महापुरुषोंको, ग्रंथों बनानेकी आवश्यकता पड जाती है।

परंतु--निर्युक्तिकार, भाष्यकार, और टीकाकार महापुरुषोंका-आश्रयको अंगीकार किये बिना, और परंपराका सद्गुरुके पास पढे बिना, हमारे जैसें आजकालके जन्मे हुये अल्प बुद्धिवालोंको, जैन धर्मके तत्त्वके विषयमें--एक दिशा मात्रका भी भान होना बडा दुर्घट है। तो पिछे उस महापुरुषोंकी अवज्ञा करके, और गुरु द्रोहीपणाका महा प्रायश्चित्तका बोजा, शिरपर उठायके, और मूल सूत्र मात्रका--जूठा हठ पकडके, जो कुछ--जैन तत्त्वके विषयमें लिखेंगे, और दूसरोंको उपदेश देवेंगे, सो सभी जूठही जूठके शिवाय, नतो सत्य स्वरूपका लेखको लिख सकेंगे, और नतो दूसरोंको सत्य स्वरूपसें समजा सकेंगे ॥

इस बातको—अनुभवसें सिद्धपणे, देखलो दोनों तरफका लेखको मिलायके, यथा योग्य मालूम हो जायगा। हाथमें कंगण, तो पिछे—आरसाका, क्या काम है ? ॥

प्रथम देखो—सूत्रोंकी पारगामिनी, पंडिता ढूंढनी पार्वतीजीको एक दया मूढताके योगसें, सारा सारका—विचार, कितना कर सकी है ? ।

तुमको—विचार करनेका, बोजा कभी हो जानेके वास्ते—इसारा मात्रसें, मैं भी दिखाता हुं। सो उनके अनुसारसें विचार करते चलेजाना, यथा योग्य मालूम हो जायगा ॥

देखोकि—ढूंढनी पार्वतीजीने, सत्यार्थ. पृ. १७२ में, लिखाथाकि—जूठ बोलना पाप है, इसलेखके विषयमें, हमने हमारा तरफका बावनमा [५२] दुहामें, सूचना किईथीके—नहीं जूठका अंत, ऐसा लिखके, जो सतावीश कलमसें, ढूंढनीजीके जूठ पणेका, इसारा करके—दिखायाथा, वह सभीही कलमके साथ, यथा योग्य पणे दयामूढताको जोडकरके, विचार करना। ढूंढनीजीका लेख, दया वाला है कि—दया मूढताका है ? यथा योग्य मालूम हो जायगा ॥ जैसेंकि [१] ढूंढनीजीने—पिछली तीन नयोंको, सत्यरूप ठहरायके, प्रथमकी चार नयोंको, असत्यरूप ठहरानेका—प्रयत्न किया। सो ढूंढनीजीने—भव्य जीवोंके उपर दयाकीई है कि,दया मूढता ? ॥१॥

[२] १ नाम, २ स्थापना, यह दोनों निक्षेप—अवस्तु ठहराया। और—पूर्णभद्र यक्षादिकोंकी, स्थापना रूप—मूर्त्तिकी पूजासें, धन पुत्रादिककी प्राप्ति होनेका दिखाया। यह ढूंढनीजीने—भव्य जीवोंके उपर, दया कीई है कि—दया मूढता ? ॥ २ ॥

[३] द्रौपदीजीके विषयमें, अनेक प्रकारकी जूठी कुतर्कों

करके, जिनप्रतिमाके वर्द्दलेंपे-अवस्तुरूप काम देवकी, स्थापना रूप-मूर्त्तिसें, वरकी प्राप्ति करानेको-तत्पर हुई ? सो ढूंढनीजीने, भव्य जीवोंके उपर दया कीई है कि-दया मूढता ? ॥ ३ ॥

हमारा इस लेखके अनुसारसें, सतावीसें कलमकी साथ, ढूंढनीजीकी-दया, और दया मूढताका-विचार, करते चले जाना ॥ मैं अवज्यादा कुछ नहीं लिखता हुं, मात्र इतनाही कहता हुं कि-महा पुरुषोंकी अवज्ञा करनेसें, न तो इसलोकमें कल्याणके पात्र बनेंगे, और न तो परलोकमें भी कल्याणके पात्र बनेंगे, यह बात तो निसंशय पणे सेंही सिद्ध है ॥ इत्यलं अतिविस्तरेण.

॥ इति काव्यका तात्पर्यार्थ ॥

॥ मूढ पुरुषो तत्त्व देखनेका उत्साह मात्र भी नहीं धरते है ॥

॥ केचिन्मूलानुकूलाः कतिचिदपिपुनः स्कंधसंबंधभाजः
छाया मायांति केचित् प्रतिपद मपरे पल्लवानुल्लवंति ।
पाणौ पुष्पाणि केचिद्दधति तदऽपरे गंधमात्रस्य पात्रं,
वागूवल्लेः किंतुमूढाः फल महह नहि द्रष्टु मप्युत्सहंते ॥ १ ॥

अर्थ—कितनेक मूढ पुरुषो हैसो, वाणीरूपी वेलडीका परमार्थको समजे विना, मूल मात्रकोही—अनुकूल होके, अपनी पंडिताईको प्रगट करते है। कितनेक पुरुषो हैसो, ते वेलडीका, एकाद स्कंधरूप, (अर्थात् एकाद विभागरूप) पढ करके, उनका परमार्थको समजे बिनाही—अपनी पंडिताईको दूनीयामें प्रगट करते है। और कितनेक पुरुषो हैसो, ते वेलडीकी छाया मात्रका आश्रयको अंगीकार करते हुये, अपनी पंडिताईको प्रगट करते है। और कितनेक पुरुष हैसो, ते वेलडीका पल्लवोंको—उच्चारण करते हुये, (अर्थात् किसी जगेंका श्लोक तो, कीसी जगेंकी गाथा, छंद, दुहादिकका—उच्चारण करते हुये) अपनी पंडिताईको दूनीयामें प्रगट करते है। और कितनेक पुरुष हैसो, ते वेलडीके—पुष्पोंको, अपने हाथमें धारण करते हुये, (अर्थात् बडे २ पोथे अपने हाथ मेंलेके बैठते हुये) अपनीं पंडिताईको दूनीयामें प्रगट करते है। और कितनेक पुरुष हैसो, ते वेलडीका गंध मात्रकाही पात्र बनते

है, (अर्थात् ग्रंथको उपर उपरसें ही देख लेते है) और अपनी पंडिताईको प्रगट करते है । परंतु ते वाणीरूपी वेलडीका—तात्पर्य-रूप फल क्या है, उसकी तरफ देखनेका भी उत्साह, ते मूढ पुरुषो नहीं धारण करते है ॥ १ ॥ इति काव्यार्थः संपूर्णः ॥

इस काव्यमें तात्पर्य यह कहा गया हैकि—जो जो तत्त्वके मूल सिद्धांतो है, उनकी व्याख्यारूप निर्युक्तियां, भाष्यों, टीकाओ, प्रकरण आदि ग्रंथो है, सोभी गुरु मुखसें पढ करके, उनका अर्थ मिलाया हुवा है, तोभी जब तक विशेष विचारमें नहीं उतरता है, तब तक ते ग्रंथोंके—तत्त्वका रहस्य, कभी भी नहीं मिला सकता है । तो पिछे टीका कारादिक सर्व महा पुरुषोंकी अवज्ञा करने वाले, ते मूढ पुरुषो, गुरुज्ञान विनाके, मूल मात्रका सिद्धांतोंसें—तत्त्वका रहस्य, कहांसें मिला सकने वाले है ? । अपितु तीन कालमें भी न मिला सकेंगे ॥

॥ इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति श्रीमद्विजानंद सूरीश्वर शिष्येन मुनिनाऽमर विजयेन ढूंढक हृदय नेत्रांजन प्रथम विभागे, विचार सार विवेको दर्शितः स समाप्तः ॥

श्री

ढूंढक हृदय नेत्रांजनस्य शाद्धि पत्रमिदम्.

अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.
निपाद्विचार-	निषद्विचार	१	२
युक्तोवै-	युक्तोहिवै	६	२३
विशष-	विशेष	१२	२४
भावस्तु-	भाववस्तु	१४	१
अस्था-	अवस्था	१५	३
संर्व-	सर्व	१५	६
कितु-	किन्तु	१६	३
निक्षेपर्से-	निक्षेपसें	१६	७
शिघ्र-	शीघ्र	१६	१५
क्षासात्पणे-	साक्षात्पणे	२०	११
वैठा नही-	वैठा नहीं	२०	११
तात्पर्योर्थ-	तात्पर्यार्थ	२०	१६
भ्रुत-	भूत	२५	११
लोकत्तरिक,	लोकोत्तरिक	२६	६
पलवितेन-	पल्लवितेन	२६	१७
पड-	पढ	२९	१९
शुन्य-	शून्य	३२	५
भूमि-	भूमि	३२	२२
		४०	१८
सबंध-	संबंध	४०	१८
बुद्धिकैसे-	बुद्धिकैसी	४१	१२
मिशरपिणेका-	मिशरीपणेका	४५	१५
सौ-	सो	४६	८
ढूंढनी-	ढूंढनीजीको	४७	२२
विंव-	विंव	४८	१२
निंक्षेप-	निक्षेप	४९	२०
कुभ-	कुंभ	४९	२१
शास्त्रा-	शास्त्र	५०	१
संका-	शंका	५७	१९
योगिक-	यौगिक	५८	११, १५, १६
बोधकी-	वोधकी	५९	१
निक्षेप-	निक्षेप	५९	२१
अस्था-	अवस्था	५९	२३
भाव-	भाव	६०	२२
जौ-	जो	६१	१०
भावकी-	भावकी	६१	१५
मूर्त्ति-	मूर्त्तिं	६२	१६
हेमका-	हमको	६२	२५
		६३	१९

अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.
धका-	धक्का	६४	१०	वैठना-	वैठना	,,	१०
वस्तके-	वस्तुके	६४	१३	ढंढंनी-	ढूंढनी	८९	२
वेशा-	वैसा	६४	१४	तरे-	तेरे	,,	१४
वत-	वत	६४	१९	मर्त्तिपर-	मूर्त्तिपर	,,	१४
वने-	वने	६७	१	आरिहंत-	अरिहंते	९०	१७
दूसरेका-	दूसरेका	६८	१५	देवलाक-	देवलोक	९३	११
सहि-	साहित	६९	११	मूर्त्तियें हैं-	मूर्त्तिये है	९५	१८
मिठीका-	मिट्टिका	६९	१५	मूर्त्तिका-	मूर्त्तिका	,,	२१
		७२	२०	समद्रायके-	संमदायके	९७	१२
सुत्रमें-	सूत्रमें	७५	१	पंडिमाणं-	पडिमाणं	९८	४
पुजा-	पूजा	,,	७	पूर्णमद्र-	पूर्णभद्र	९९	१५
मुर्त्ति-	मूर्त्ति	,,	८	इसं-	इस	१००	१
इस्यादि-	इत्यादि	,,	१९	आदिकी-	आदिकी	,,	५
सास्त्रोमें-	शास्त्रोमें	७६	८	वीतरग-	वीतराग	१०४	१०
हढनो-	हठतो	७६	१९			१०२	२५
पुजन-	पूजन	,,	२०	परिव्रजाक,	परिव्राजक	१०६	१०
करनके-	करनेके	,,	२१	अम्य-	अन्य	१०९	३
कुतर्कका	कुतर्कका	,,	१०	तुह्मारे-	तुह्मारे	११०	१४
मुकद्दमें	मुकद्दमें	७७	१४	श्रून्य-	शून्य	११३	१२
वहुत	,,	७८	१०	थोर्यी-	थोथी	,,	१३
होगा-	होगी	७९	५	ढूढनी-	ढूंढनी	११४	१
वंदनाय-	वंदनीय	,,	१०	मर्तिमा-	मतिमा	११५	४
श्रृंगारादि-	श्रृंगारादि	८०	८	मूर्तिका-	मूर्त्तिका	११६	४
मूर्त्तिका-	मूर्त्तिका	८१	१	मूर्तियां-	मूर्त्तियां	११९	२५

अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ठ.	पंक्ति.
स्त्रनामोचार,	स्त्रनामोचार	१२०	१०
सह्ल्योद्धार,	शह्ल्योद्धार	१२५	३
मूर्त्ति-	मूर्त्ति	१३१	२६
जीवपणको,	जीवपणेको	१३१	२२
हाम-	हम	१३२	१८
पलवितेन-	पल्लवितेन	१३३	१८
कत्रयलि-	कयवलि	,,	२०
तुमरे-	तुमेरे	१३५	२१
भुत-	भूत	१३५	३
है सुमातिनी-	हे सुमातिनि	,,	८
राराओ-	राजाओ	१३६	१६
श्रूर	शून्य	१४२	२३
प्रमाणिक,	प्रामाणिक	१४४	१६
दोखये-	देखिये	१४९	३
लिखत हुिई-	लिखती हुई	१४९	२
भद्र भाहु-	भद्रबाहु	१५१	७
ढंढकोमें-	ढूंढकोमें	१५३	२
तुम्हार-	तुम्हारे	१५५	१
इत्थलम-	इत्यलम्	,,	४
उलंघन-	उल्लंघन	१५९	१६।१७
अयोग-	अयोग्य	१६	१९
सूत्रोंमें,	सूत्रेमें	१६४	३
भें-	में	१६५	९
ययाच-	यथाच		१७
सम्यक दर्शन,	सम्यक् दर्शन		१८
हसेंभी-	इसमेंभी-	१६६	५
दूढनी-	ढूंढनी	१६९	२२
सद्धो-	सुद्धो	१६८	१७
भावित व्यत	भावित व्यता	१७१	२१
इत्पलं-	इत्यलं	१७२	२
जैन धर्मसे,	जैन धर्मसें	१७७	१०
क्था-	क्या	१७९	१९
कृश्नजीने,	कृष्णजीने	१८१	१९
श्रृंग-	श्रृंग	१८९	२४
वस्त्र-	वस्त्रं	१८७	१६
समन्वित,	समन्वितं	१९४	४
हस्त-	हस्ते	१९४	५
			६
दके-	देके	१९५	७
मयीं-	मयी	१९९	२१
स्ववरूपकी,	स्वरूपकी	२००	४

॥ ढूंढक हृदय नेत्रांजन भाग द्वितीय प्रारंभ ॥

॥ अथ १ हेय, २ ज्ञेय, और ३ उपादेयके, स्वरूपसें—चार निक्षेपोंका विचार लिख दिखावते है ॥

॥ अब भव्य पुरुषोंके हितके लिये—चार निक्षेपके विषयमें, किंचित् दूसरा प्रकारसें. समजूति करके दिखावते है ॥

॥ इस दूनीयामें—वस्तु, अर्थात् पदार्थ, सामान्यपणेसें, तीन प्रकारके कहे जाते है। कितनेक पदार्थ—हेय रूप होते है, अर्थात् त्याग करनेके योग्य होते है १ ॥ और कितनेक पदार्थ—ज्ञेय रूप होते है, अर्थात् ज्ञान प्राप्त करनेके योग्य होते है २ ॥ और कितनेक पदार्थ—उपादेय रूप होते है, अर्थात् अंगीकार करनेके योग्य होते है ३ ॥

॥ जो पदार्थ—हेय तरीके होते है, उनके चारों निक्षेप भी, हेय रूप ही होते है १। और जो पदार्थ—ज्ञेय तरीके होते है, उनके चारों निक्षेप भी, ज्ञेय रूप ही होते है २। और जो पदार्थ—उपादेय तरीके होते है, उनके—चारों निक्षेपभी—उपादेय रूप ही होते है ३ ॥

॥ यह तीनों प्रकारके पदार्थमें, मत मतांतरकी विचित्रतासें, अथवा जीवोंके कर्मकी विचित्रतासें, अथवा समाजकी प्रवृत्तिकी विचित्रतासें, हेय, ज्ञेय, और उपादेय, यह तीनों पदार्थमें, सा-

मान्य विशेषपणा भी देखनेमें आता है। और–हेय, ज्ञेयादिकमें, उलट पलट भी देखनेमें आता है॥ जैसेंके, किसीको सामान्यपणे हेय, ज्ञेय, और उपादेय रूप है, तो किसीको विशेष रूपसे भी हेय, ज्ञेयादि रूप है, । और किसीको एक पदार्थ–हेय रूप है, तो दूसरेको–ज्ञेय रूप भी, होजाता है। अथवा उपादेय रूप भी, हो जाता है। सो मतांतरादिककी विचित्रतासें, एक ही पदार्थमें, उलट पलटपणे, अनेक प्रकारकी भावनाओ दिखनेमें आती है॥

॥ परंतु जिसने जो पदार्थको–हेय तरीके मान्या है, सोतो उस पदार्थका–चारों निक्षेपको, हेय तरीके ही, अंगीकार करता है १। और–ज्ञेय पदार्थका चारों निक्षेपको, ज्ञेय रूप ही, अंगीकार करता है २। और–उपादेय पदार्थका–चारों निक्षेपको, उपादेय तरीके ही, अंगीकार करता है ३। जैसेंके, शिवोपाशक है सो, शिवका ही–नाम, स्मरण करते है यह तो–नाम निक्षेप १। पूजन भी शिवकी–मूर्त्तिका ही, करते है यह–स्थापना निक्षेप २। और शिवकी ही पूर्वाऽपर अवस्थाको बडी प्रियपणे, मान्य रखते है यह–द्रव्य निक्षेप ३। इस वास्ते परमोपादेय शिवजीको समजके, उनके–चारों निक्षेपको भी, उपादेयपणे, मान्य ही करले ते है ४॥

इसी प्रकारसे अब विष्णु भक्त है सो, विष्णुका ही–नाम, स्मरण करते है सो–नाम निक्षेप १। पूजन भी, विष्णुकी मूर्त्तिका ही करते है सो–स्थापना निक्षेप २। और विष्णुकी ही, पूर्वाऽपर अवस्थाको बडी प्रियतापणे, मान्य रखते ही है सो–द्रव्य निक्षेप ३। इस वास्ते परमोपादेय–विष्णुको ही समजके, उनके–चारों निक्षेपको भी उपादेयपणे, मान्य ही कर लेते है, ४॥

अब मुसलमान हैं सो, अल्लाकाही-नाम, स्मरण करते है यह तो-नाम निक्षेप १। और महज्जिदोंमें गोखका आकाररूपे, असद्भावसें स्थापनाको स्थापित करके, विनयादिकभी करतेही हैं यह-स्थापना निक्षेप २। और, अल्लाकी, पूर्वाऽपर अवस्थाको, याद करके, अनेक प्रकारका पश्चात्तापभी करतेही है,यह-द्रव्य नि-क्षेपका विषय हैं ३। इस वास्ते परमोपादेय अल्लाको समजके उ-नके-चारों निक्षेपकोभी-उपादेयपणे, मान्यही कर लेते हैं ४॥

॥ अब क्रिश्चन है सो, इसुकाही-नाम, स्मरण करते है, यह भी-नाम निक्षेपही है १। गिरजागर बनाके, असद् भावसे स्था-पनाकोभी स्थापित करके, उहांपर अनेक प्रकारका विनयके साथ, भजन वंदगीभी करते हैं, अथवा कितनेक गिरजा घरमें, साक्षात्-पणे इसुकी, शांत मूर्त्तिको स्थापित करके भी, अदवके साथ भजन वंदगी भी करते है यह-स्थापना निक्षेपका ही विषय है २॥ और इसुकी पूर्वाऽपर अवस्थाको स्मरण करके, वडा विलापभी करते है यह उनका-द्रव्य निक्षेपका, विषय हैं ३॥ इस वास्ते इसुको-परमो-पादेय समजके उनके, चारों निक्षेपकोभी, उपादेयपणे मान्यही र-खते है ४॥

इसमें विशेष यह है के, मतांतरके कारणसें, और भावनाका फरक होनेसें, जो कोइ एकाद वस्तु एक पुरुषको-उपादेय है, तो दूसरेको-हेयरूप, अथवा ज्ञेयरूप, भी होजाता है। इसवास्ते चारं निक्षेपोंमेंभी, हेय, ज्ञेय और उपादेयपणा, उलट पलटपणे होजाता है

॥ इति उपादेयादिक-वस्तुके, चार चार-निक्षेप ॥

॥ अब साधारणपणे-हेय रूप वस्तुको, दृष्टांतसें समर्थन करते हैं. जैसेंके, स्त्री, अथवा पुरुषका, शरीररूप-एक वस्तु हैं, अर्थात्

पदार्थ है। अब स्त्रीमें-माता, भगिनी, वेटी, वधू, आदिकी भावना, समाजकी प्रवृत्तिकी विचित्रतासें, होती है। एक कल्पनामें-भक्ति रागकी भावना, तो दूसरी कल्पनामें-प्रीति रागकी भावना, रहती है। परंतु समाजकी प्रवृत्तिको छोडके जो साधु पदको अंगीकार करता है, सो तो-स्त्रीरूप वस्तु मात्रका, त्याग ही करके, व्रतको अंगीकार करता है. इस वास्ते स्त्रीरूप वस्तुका-चारों निक्षेपको भी त्याग ही करता है ॥

अब देखोकि-स्त्रीरूप-वस्तुका, भावनिक्षेप-योवनत्व, अवस्थामें कियाजाता है। क्योंकि, कामी पुरुषको, शीघ्रपणे कामविकारकी प्राप्तिकरानेवाली अवस्था वही है,। सो स्त्री, साधु-पुरुषोंको, सर्वथा प्रकारसे त्यागने के ही योग्य है। और उत्तम संन्यासी साधु, सामीनारायण के साधु, जैनके साधु, विगेरे सर्व साधुओं प्रत्यक्षपणे त्यागभी कर रहे है, ओर इस स्त्रीका-योवनत्वरूप, भावनिक्षेपका त्याग होनेसें उनका १ नाम निक्षेप। २ स्थापना निक्षेप। और ३ द्रव्यनिक्षेप काभी-त्याग करनेका, शास्त्रोंमें प्रसिद्धही है ॥ जैसेंकि-साधु पुरुषोंने, स्त्रीकी शृंगार कथादिक करके, स्त्रीका वारंवार स्मरण, नहीं करना, यह निषेधकरनेसे-नाम निक्षेपका स्मरण, करना निषेध किया गया है १। और स्त्री आदिकी चित्रशालामें साधु पुरुषोंको रहनेका निषेध होनेसें, स्त्रीके-स्थापना निक्षेप काभी, त्याग करनाही दिखाया है, और इस स्थापना निक्षेपका त्याग करानेके वास्ते, सिद्धांतमेंभी प्रगटपणे पाठभी कहा है, देखो दश वैकालिकका अष्ठमाध्ययनकी ५५ मी गाथा, यथा.

॥चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलंकिअं
भक्खरं पिव दट्ठूणं, दिट्ठिं पडि समाहरे ५५ ॥

अर्थ—इससें प्रथमकी गाथामें एसा कहाथाकि, साधुओंको मृतक स्त्रीका, कलेवरसेभी भयहैं, इस वास्ते चित्रमें चित्रीहुई स्त्रीको, वा, अलंकारवाली स्त्रीको, अथवा अलंकारविनाकी स्त्रीकोभी, ध्यानपूर्वक देखें नही, अगर, स्वभावसे दृष्टि पडजावे तो, सूर्यकी प्रति पडीहुई दृष्टिकीतरां संहारण करलेवे ९९,

इसगाथामें, चित्रकी स्त्रीकोभी, देखनेका, निषेध करनेसें, स्त्रीका-स्थापना निक्षेपकाभी, त्याग करणा ही दिखाया है २ ।अब साधु पुरुषोंको स्त्रीका-द्रव्य निक्षेपभी, त्याग करने रूपही सिद्ध होता है, जैसेंकि, स्त्रीत्वभावकी पूर्व अवस्था, बालिकारूपका, संघट्टन करना, निषेध किया है, तैसें स्त्रीकी अपर अवस्थारूप, मृतक देहसेंभी, साधु पुरुषोंको, भयही दिखाया है, इसवास्ते स्त्रीका-द्रव्यनिक्षेपभी, त्याग करनाही योग्य हुवा ३ ॥ इस लेखसें यही सिद्ध हुवाके, साधु पुरुषोंको-स्त्रीरूप हेय वस्तुका, चारोंनिक्षेपभी हेयरूपही है । तैसें साध्वीको, पुरुषरूप वस्तुकाभी, चारोंनिक्षेप त्यागहीकरना सिद्ध है.इसवास्ते हेयरूप वस्तुका,चारोनिक्षेपभी, त्याग करनेकेही योग्य है

इति हेयरूप वस्तुका-चारोंनिक्षेप, त्याग करणेरूप प्रथमोधिकार ॥

अब ज्ञेयरूप वस्तुका, चारनिक्षेपसें, ज्ञानप्राप्ति करनेरूप, द्वितीय अधिकार लिख दिखावते है—जैसेकि—मेरुपर्वत, जंबूद्वीप, नदी द्रह, कुंड, भरतादिक्षेत्र, सिंह, हंस, भारंडपंखी, हाथी, घोडा, हिंदुस्थान, जडी, बुटी, विगेरे नाना प्रकारकी ज्ञेय वस्तुका, नामदेके,

बच्चांको (वालकोंको) समजाना, सो ज्ञेयरूप वस्तुका, नामनिक्षेपसें, ज्ञानकी प्राप्ति, समजनी.

और उन पदार्थोंकी, आकृति खेंचके, उनके स्वरुपका–ज्ञानकी प्राप्ति करानी, अथवा जिस जिस दिशामें पदार्थ रहे हुवे है उसउस दिशाका–ज्ञानकी प्राप्ति करावनी, सो ज्ञेयरूप पदार्थका–स्थापना निक्षेपसें, ज्ञानकी प्राप्ति, हुई समजनी ॥ २ ॥

और उस ज्ञेयपदार्थोंकी, पूर्वरूप अवस्था,अथवा अपरकालकी अवस्थाका, भिन्न भिन्नपणे समजूति करके दिखावना, सो ज्ञेयरूप वस्तुका–द्रव्य निक्षेपसे, ज्ञानकी प्राप्ति, हुई समजनी ॥ ३ ॥

॥ अब, जे जे ज्ञेय पदार्थका–१ नाम निक्षेपसें, २ स्थापना निक्षेपसें, और ३ द्रव्य निक्षेपसें, वालकोंको ज्ञानकी प्राप्ति कराईथी, सो सो पदार्थ, प्रत्यक्षपणे हाजर होनेपर, इसारा करके दिखाना के, यह वस्तु क्या है, इतना कहने मात्रसें, ते चतुर बालक, कहदेवेगा कि, यह सिंहादिकका स्वरूप है। क्योंकि जिसको प्रथमके तीन निक्षेपोंका, यथावत् ज्ञानहोजायगा, उनको चोथा–भाव निक्षेपका, ज्ञानकी प्राप्ति होनेमें, किंचित् मात्रभी देर न लगेगी। इस वास्ते वस्तुके चारों निक्षेपभी, सार्थक रूपही है, परंतु निरर्थकरूप कभी न होंगे। हां विशेषमें इतना है के, १ हेय वस्तुके चारों निक्षेप हेय, और २ ज्ञेय वस्तुके चारों निक्षेप ज्ञेय, और ३ उपादेय वस्तुके चारों निक्षेप उपादेय, रूपे अंगीकार करने योग्य होते है। इसवास्ते वस्तुके–चारों निक्षेप ही, सार्थक रूप है, परंतु निरर्थक रूप तीन कालमें भी न होवेंगे ॥ इति ज्ञेयरूप वस्तुका, चारों निक्षेपसें–ज्ञान प्राप्ति करणेरूप, द्वितीयोऽधिकारः

॥ अब जैनोंको, परमोपादेय जो तीर्थंकरों है, उनके चारों

निक्षेप भी, परमोपादेयस्वरूपके ही है । उनका विचार करके दिखावते हैं ॥

जैसें कि--वर्त्तमानकालके तीर्थंकरोंका, जन्म हुये बाद,उनके माता पितादिकने, अनादि सिद्ध शब्दोंमेंसे, अनेक गुणोंको जनाने-वालें--ऋषभ आदि शब्दोंको लेके महावीर पर्यंत, जो नामका निक्षेप किया है, सो जैनी नामधारी मात्र भी, उनका-स्मरण, भ-जन, सदा सर्वकालमें करते ही है,इस वास्ते यह तीर्थंकरोंका, नाम निक्षेप भी, परमोपादेय रूप ही है १ ॥

॥ और अपना परम पवित्र रूप शरीरमें निरपेक्ष होके, ना-सिकाका अग्रभागमें दृष्टिका आरोप करके, परम वैराग्य मुद्रायुक्त, प-रमध्याना रूढमें रहें हुयें, तीर्थंकरोंकी, आकृतिका उतारा रुप, जिन मूर्त्ति है सोभी, स्थापना निक्षेपका विषय स्वरुपकी, भक्तजनोंको परम उपादेय रुप ही होगी २ ।

और जिस जिनेश्वर देवकी--बालकपणेके स्वरुपकी--पूर्व अ-वस्थाको,और मृतकशरीररूप-अपर अवस्थाको,इंद्रादिकोंनेभी,परम-सत्कारादिक किया है सो-द्रव्य निक्षेपका विषयभी, हमारेजैसें अ-ल्पपुण्यात्माको तो, अवश्यमेव परम उपादेयरूप हीहै ॥ ३

और साक्षात् जो तीर्थंकरहै सो, भावनिक्षेपका स्वरूप है, सो-भावनिक्षेप पूज्यरूप होनेसें, उनके-तीनोनिक्षेपभी,अवश्यमेव पूज्यबु द्धिको उत्पन्न करानेवालेहीहै ॥ ४

॥ इति परमोपादेय, तीर्थंकरोंका, चार निक्षेपका स्वरूप. ॥

॥ अथ ढूंढनी पार्वतीजीका लेख ॥

श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें आदिहीमें-वस्तुके, स्वरुपके समज-नेके लिए-वस्तुके सामान्य प्रकारसें-चार निक्षेप, निक्षेपने, (करने)

कहे है ॥ यथा–नाम निक्षेप १ । स्थापना निक्षेप २ । द्रव्य निक्षेप ३ । भाव निक्षेप ४ ॥ अस्यार्थः–नाम निक्षेप–सो, वस्तुका–आकार और गुण रहित–नाम सो–नामनिक्षेप १ ॥ स्थापना निक्षेप–सो–वस्तुका–आकार. और नाम सहित, गुण रहित सो–स्थापना निक्षेप २ ॥ द्रव्यनिक्षेप–सो–वस्तुका वर्त्तमान गुण रहित, अतीत अथवा अनागत गुण सहित, और आकार नामभी सहित, सो–द्रव्य निक्षेप ३ ॥ भाव निक्षेप–सो–वस्तुका नाम, आकार, और वर्त्तमान गुण सहित, सो–भावनिक्षेप ४ ॥

॥ यह चार निक्षेपका लक्षण–ढुंढनी पार्वतीजीने–सिद्धांतसें निरपेक्ष होके, सत्यार्थ चंद्रोदय पृष्ट पहिलेमेंहि, लिख दिखाया है, सो इहांपर फिरभी–पाठकगणको विचार करनेको, लिख दिखाया है ॥

॥ इति ढूंढनीजीका लेख ॥

पाठकगण ? हम ढूंढनीजीके—निक्षेपके विषयमें, बहुत कुछ कह करके भी आये है, तो भी इहांपर किंचित् सूचना करके दिखावते है ॥

यह ढूंढनीजी—सिद्धांतसें–वस्तुका–१ नाम निक्षेप । २ स्थापना निक्षेप । ३ द्रव्य निक्षेप । और ४ भाव निक्षेप । अलग अलग लिखती है । और अपना किया हुवा–नाम निक्षेपके अर्थमें–वस्तुको–आकार, और गुण रहितपणा, दिखलाती है, परंतु आकार, और गुण विनाकी, वस्तुही कैसें होगी ? १. ॥

और वस्तुका—स्थापना निक्षेपके अर्थमें—वस्तुको—गुण रहितपणा कहकर, नाम निक्षेपको भी—गूसडती है, सो यह कैसें बनेगा ? २ ॥

और वस्तुका-द्रव्य निक्षेपके अर्थमें-वस्तुको वर्त्तमानमें गुण रहितपणा दिखाके, फिर-नाम निक्षेपको, और स्थापना निक्षेपको भी, मिलाती है ॥ ३

और वस्तुका-भाव निक्षेपके अर्थमे-वर्त्तमानमें गुण सहितपणा दिखाके, फिर वही-नाम निक्षेप, और स्थापना निक्षेपको भी साथमें ही-वर्णन करके दिखलाती है। सो क्या जरुरथी? सो तो अलगपणे ही कहे गये हुये है। जब वस्तुका-द्रव्य निक्षेपके विषयमें-वर्त्तमानमें गुण ही, नहींथा, तो पिछे अतीत अनागतमें भी, कहांसे प्राप्त होगा? ४ ॥

यह ढूंढनीजीका लिखना ही-अगडं बगडं रूप है, क्यौं कि वस्तु तो गुणविनाकी तीनोंकालमें-कभी रहती ही नहीं है ॥

॥ इति-चार निक्षेप विषये, ढूंढनीजीका विपरीत ज्ञानका, विचार ॥

॥ अब हम जेन सिद्धांतका किंचित् स्वरुप, कहते है ॥

किया है जिनेश्वर देवके-तत्त्वोंका, अंत, जिसमें सो-जैन सिद्धात ॥ अब सूत्र-अल्प अक्षरोंसेंभी-किया है बहुत अर्थोंका वेष्टन जिसमें सो-सूत्र, कहते है ॥ तिस ही सूत्रोंमें-एक अनुयोग द्वार नामका भी सूत्र है, उसका अर्थ यह है कि-अनु जे किंचित् मात्र सूत्र, उनकी साथ-महान् अर्थका योग, सो अनुयोग। जिस अनुयोगद्वार सूत्रमें-सर्व सिद्धांतकी कुंचिकारूप, चार अनुयोगकी, व्याख्या किई गई है।इसी कारणसें महा गंभीरार्थ रूपमें होगया है, सो सद्गुरुके पास पढे विना, कोइभी वाचालता करेगा, सो, हास्य पदका पात्र बनेगा। हम अनुमान करते है कि-इस ढूंढनी पार्वती-

जीने, इस अनुयोगद्वार सूत्रके पिछे, बहुत कालतक ही परिश्रम उठाया होगा, परंतु सद्गुरुके वचनरूप-तात्पर्य रसायन मिलाये विना, वृथा ही क्लेश उठाया है। परंतु हमारे ढूंढक भाइयोंकी अनुकंपाके लिये, जो हमने परम सद्गुरु श्री मदानंद विजय सूरीश्वरजी महाराजके-वचनरूप रसायन कुंपिकासें, प्राप्त किया है रसायनका बुंद, सो उनोंके मनरूप लोह रसको, सुवर्णरूप बना देनेकी इछासें, जो-चार महा अनुयोग है, उसमेंसें-केवल एक निक्षेप नामका ही अनुयोगकी, सामान्य मात्रसें व्याख्या भी-महापुरुषोंको आश्रित होके ही, में फिर भी करनेकी प्रवृत्ति करता हुं, सो सज्जन पुरुषों-अवश्य ही योग्यऽयोग्यका विचार करेंगे ॥

॥ इति जैन सिद्धांत स्वरूपका विचार ॥

॥ सूत्र, और लक्षण कारके मतसें-चार निक्षेपका लक्षण ॥

जो क्रिया गुण वाचक-वर्ण, समुदाय है, उस वर्ण समुदाय मात्रका, अथवा अपनी इछा पूर्वक-वर्ण समुदायका, जीव, अजीव, आदि वस्तुमें-आरोप करना, अर्थात्-संज्ञा करलेनी, उसका नाम-नाम निक्षेप है १।

और उसीही-नामका निक्षेपवाली, जीवादिक वस्तुकी, सूत्रकारने दिखाई हुई दश प्रकारकी वस्तुमेंसे, किसीभी प्रकारकी वस्तुसें आकृति, अनाकृतिके स्वरूपसें, स्थापित करना, उसका नाम-स्थापना निक्षेप है २॥ और उसीही-नामका निक्षेपवाली वस्तुका, पूर्वकालमें, अथवा अपरकालमें, जो कारणरूप द्रव्यहै, उसमेंही (अर्थात् कारण रूप द्रव्यमें ही) उसका-आरोप करना, उसका नाम-द्रव्य निक्षेप है ३॥ उसीही नामका निक्षेप वाली जीवादिक वस्तु-

की-क्रियाका और उनके गुणोंका, जब अपना स्वरूपमें वर्त्तन होता होवें, अथवा वस्तु है सो-अपना स्वभावमें-स्थित होवें, तब उस वस्तुका नाम-भाव निक्षेप, कहते है ४ ॥

॥ इति चार निक्षेपका-लक्षण स्वरूप ॥

॥ अब चार निक्षेपके विषयमें-किंचित् समजूति, लिखते है ॥

दूनीयामें अछी या बुरी जे जे वस्तु (अर्थात् पदार्थ) है, उसका कुछने कुछ-नाम, रखा हुवा होता है । सो-वस्तु, अपना अपना प्रसिद्ध-नामसें ही, अपना अपना-स्वरूपका पिछान, संकेतके जानने वाले पुरुषोंको, करादेते है, सोही नाम-नाम निक्षेपका विषय है ॥ १ ॥

फिर वही-नामका पदार्थकी-(अर्थात् वस्तुकी) आकृति [अथात् मूर्त्ति] है सोभी, उसी वस्तुका बोधको करानेमें, विशेषपणे, कारणरूपे हो जाती है, सोही स्थापना-स्थापना निक्षेपका विषय है २ ॥ और वही नाम, और आकृति के, स्वरूपका वस्तुकीपूर्वकालकी अवस्था, अथवा अपरकालकी अवस्था है सोभी, उसी वस्तुका ही बोधको करानेमें कारणरुपे होजाती है, सोही द्रव्य-द्रव्य निक्षेपका; विषय है ३ ॥ जब वही-नामकी, और आकृतिकी, और पूर्व अपर अवस्थाका स्वरूपकी 'वस्तु' [अर्थात् पदार्थ] साक्षात्पणे लोको देख लेते है, अथवा ज्ञान करलेते है तब उस, वस्तुका-यथावत् पिछान करलेते है कि-जिस वस्तुका नाम, सुनाथा, पिछे उनकी-आकृति भी देखीथी, और पूर्व अपर अवस्थाका गुण या दोष सुनाथा, सोही वस्तु यह है ४ ॥ इस विषयका विचारको

जैन शास्त्रकारोने-चार निक्षेपके स्वरूपसें-वर्णन किये है। इनका विशेष विचार गुरु गमतासें-समजनेकी जरुर है ॥

॥ इति चार निक्षेपकी समजूति ॥

चार निक्षेपके विषयमें दूसरा प्रकारकी-समजूति लक्षण द्वारा करा देते है.

जिस वस्तुका-बोध, जिस १ वचनसें, २ आकृतिसें, ३ गुणादिकके स्वरूपसें, श्रवण, नयन, मनः द्वारा, आत्माको होजावे, सो नामादिक-चारों निक्षेप, उसी वस्तुकाही है, वैसा समजना.

उदाहरण-जैसेंकि वर्ण समुदायरूप-नाम मात्रका, उच्चारणके शब्दो, श्रवण द्वारा हृदयमें प्रवेश होके, और पिछे मनकी तरंगोंको उत्पन्न करके, जो-नाम, जिस वस्तुका बोध, आत्माको करादेवे, सो नाम उस वस्तुका-नाम निक्षेप, समजना १ ॥

अब जो आकृति अनाकृतिके स्वरूपसें (अर्थात् मूर्त्ति अमूर्त्तिके स्वरूपसें) नेत्रद्वारा होके, और पिछे अनेक प्रकारकी मनकी तरंगोंको उत्पन्न करके, जिसवस्तुका बोध, आत्माको होजावे सो आकृति १अनाकृति रूप, वस्तुकी स्थापना-स्थापना निक्षेप, समजना ॥ २

अब जो वस्तु-पूर्वकालमें, अथवा अपर कालमें, कारण स्वरूपमें रही हुईहै, उनका गुण दोषादिक श्रवणसे, अथवा तिनके

---

१ ज्ञान, दर्शन, चारित्रात्मक 'वस्तु' (अर्थात् पदार्थ) अमूर्त्त स्वरूपकेभी है तोभी संकेतीत अक्षरोसें-नेत्रद्वाराहि, बोधके देनेवाले होते हैं। सोभी 'स्थापना निक्षेप'के स्वरूपकेही है. ॥

संबंधी वस्तुका दर्शनसें, पिछे अनेक प्रकारकी मनमें तरांगां उत्पन्न होंके, जब वही-कार्य स्वरूप, भाव वस्तुका बोध, आत्माको करादेवें तब सो कारणरूप द्रव्य वस्तु-द्रव्य निक्षेप, समजना ॥ ३

अब वहीतोहै-१नाम, और वहीतोहै-२आकृति, (मूर्त्ति)। और पूर्वकालमें-श्रावण कियेहुयें गुण दोषादिक स्वरूपकी ३ 'वस्तु' (अर्थात् दृश्य पदार्थ) श्रवणद्वारा, अथवा नयनद्वारा, मनका विचित्र परिणामको प्राप्त करके-साक्षात्पणे आत्माको-बोध, करादेवे, तब ते साक्षात् स्वरूप भावकी वस्तुको-भाव निक्षेप, समजना. ४॥

इति दूसरा प्रकारसें-लक्षणद्वारा-चार निक्षेपका स्वरूपकी-समजूति ॥

सूचना—इसमें सूचना यह है कि-यह चार निक्षेपके विषयमें-जे जे हमनें विशेष प्रकारसें, समजूति करके दिखाई है, उसमें किसीभी स्थानमें, किसीभी प्रकारका, यत्किंचित् फरक मालूम होजावें, तब हमारा विचारको त्याग करके, लक्षणकारके लक्षणसें ही-उसवस्तुका-चार निक्षेप, करनेका निर्वाह करलेना, परंतु हमारा दर्शाया हुवा विचारपर, आग्रह नही करना। महापुरुषोंकी गंभीरताको, हम नहीं पुहंच सकतेंहै ॥ इति ॥

अब चार निक्षेपके विषयमें-सार्थकता निरर्थकताका,

विचार, लिखते है ॥

पाठकगण ? दूनीयामें जितनी-वस्तु, भिन्न भिन्न है [अर्थात् भिन्न भिन्न पदार्थ है] सो-अपना नाम १ । अपनी आकृति २ ।

अपना संपूर्ण गुण दोष प्राप्तिकी-पूर्व अपर अवस्थाका स्वरूप; अर्थात् कारणरूप द्रव्य ३। और ते पदार्थका साक्षात्कार स्वरूप; भाव ४। [अर्थात् साक्षात् स्वरूप पदार्थ] है सो, अपना अपना स्वरूपका-पिछान कराणेमें, [अर्थात् ते-चार प्रकार, निज निज स्वरूपका पिछान कराणेमें] परम उपयोगी स्वरूपके ही है। इसी कारणसें जैन सिद्धांतकारोने-ते चारो प्रकारको-चार निक्षेपकी, संज्ञासें-वर्णन करके, दिखलाये है। उनका विचार-श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें, महागंभीर आशयवाले गणधर महाराजाओंने-सूचना तरीके दिखलाया हुवा है। परंतु गुरुज्ञान विनाकी ढूंढनी पार्वतीजीने-गणधर महाराजाओंका आशयको, समजे विना, प्रथमके-त्रण निक्षेप, निरर्थक, और उपयोग विनाके, क्यौं कि कार्य साधक नहीं ऐसा जूठा हेतुके साथ-विपरीतपणे, लिख दिखाया है। और यह ढूंढनी जगें जगें विपरीतपणा करके—जैन धर्मके मूल तत्त्वोका, नाश करणेको, प्रवृत्त हुई है। जबसें हमारे ढुंढकोने यह पंथ पकडा है, तबसें जो कुछ जैन तत्त्वके विषयमें उनको दिखा है सो-विभंग ज्ञानीयोंकी तरह—विपरीत ही विपरीत, दिखता है। परंतु हम भार देके कहेते है कि-जो वस्तुका [अर्थात् पदार्थका] चार निक्षेप है, उसमेंसे-एकभी निक्षेप, निरर्थक, अथवा उपयोग विनाका, नहीं है। किंतु कार्य साधकमें-परम उपयोगी स्वरूपके ही है ॥

क्यौं कि-जिस पदार्थका, [अर्थात् वस्तुका] अपनेको-पिछान करनेकी इछा होगी, उस वस्तुका प्रथम-नामसें ही पिछान करनेकी जरुर पडेगी, इसी-नामको, शास्त्रकारोंने-नाम निक्षेपके स्वरूपसें माना है १॥

और उस पदार्थका विशेष ज्ञानकी प्राप्तिकी इछासें-उनकी

आकृति [मूर्त्ति] भी, देखनेकी-खास जरुर ही पडती है । यह उस पदार्थका दूसरा—स्थापना निक्षेपका विषय है २ ॥

फिरभी उस पदार्थका विशेष ज्ञानकी प्राप्ति केलिये-गुण दोष रूप प्राप्तिके स्वरूपकी-पूर्व अवस्था, या अपर अवस्था है, उनसेंभी इस वस्तुका-बोध-प्राप्त करनेकी आवश्यकता ही है, और उसी पूर्व अपर अवस्थाका स्वरूपको, शास्त्रकारोंने-द्रव्य निक्षेपके स्वरूपसें, माना है ३ ॥

अब देखो कि-वर्णन किये हुये जो-त्रण निक्षेप है, उस त्रण निक्षेपके स्वरूपका भी बोध, अपनेमें करानेवाला जो साक्षात् स्वरूप पदार्थ (अर्थात् वस्तु) है, उस पदार्थको शास्त्रकारोंने-भाव निक्षेपका विषय भूत माना है. ४ ॥

अब इस-चार निक्षेपके विषयमें, विचार यह है कि-जब कोईभी पुरुष-वह भाव निक्षेपका विषय भूत साक्षात् पदार्थको-देखेंगे अथवा उसने देखा हुवा होगा, तबभी पूर्वोक्त-त्रण निक्षेपका, ज्ञान पूर्वकही, उस भावनिक्षेपका विषयभूत साक्षात् पदार्थकाभी-ज्ञान होगा, परंतु प्रथम के-त्रण निक्षेपके स्वरूपको जाने विना, केवल उस भाव वस्तुको देखने मात्रसें, कभीभी उनका यथावत् ज्ञान न होगा, और उनका आदर भी न कर सकेगा ॥ क्योंकि हम जंगलमें फिरते है, और उहांपर रही हुई-अमूल्य अमूल्य वनस्पतियां कि जो-भाव निक्षेपका विषय भूत हैं, उनको साक्षात्पणे देखतेभी होंगे, परंतु उस-पदार्थोंका, प्रथमके-त्रण निक्षेप विषयका, यथावत् ज्ञान, मिलाये विना, उनोंका कुछभी गौरव नहीं कर सकते है । कारण उनोंका प्रथमके-त्रण निक्षेप विषयका, हमको ज्ञान ही नहीं है, तो पिछे वह-भाव निक्षेपका विषयभूत साक्षात् पदार्थोंका, आदर कैसें

करेंगे ? अर्थात् कभीभी आदर न कर सकेंगे ॥

इस वास्ते पदार्थोंका जो प्रथमके-त्रण निक्षेप है, सोही, कार्य्यकी सिद्धि करानेमें-साधक, और परम उपयोग स्वरूपकेही है। परंतु ढूंढकोंने दिखाये हुये निरर्थक स्वरूपके नही है। इस विषयमें ढूंढनी पार्वतीजीकी, और ढूंढक वाडीलाल शाहकी, मतिही विपरीत पणे हो गई है ॥ फिरभी देखोकि-जिसको पदार्थोंका प्रथमके-त्रण निक्षेपके विषयका, यथार्थ ज्ञान नहीं होता है उसका-भाव निक्षेपका विषयकोभी-विपरीतपणेही ग्रहण करनेको लग जाता है। जैसेकि-भाव निक्षेपका विषयभूत, साक्षात्-जेरी, वस्तु है, परंतु उनका प्रथमके-त्रण निक्षेपका, विषयको-नहीं जाननेवाला बालक है सो, उसी वखत उस-जेरी वस्तुको, मुखमें-डालनेको जाता है। और भावनिक्षेपका विषयभूत साक्षात्-जेरी सर्प, वस्तु है, उनको-पकडनेकोभी जाता है। इसवास्ते दूनीयामें जो जो पदार्थों है, उनका प्रथमके-त्रण निक्षेप विषयका ही-बोध लेनेकी जरुरी है। और वह त्रण निक्षेप ही, कार्यके-साधक, बाधकमें, परमोपयोगी स्वरूपके है। तो भी ढूंढक, और ढूंढनीजीने-त्रण निक्षेपको-निरर्थक, और उपयोग विनाके, लिख मारे है। इतनी मूढता करके भी-संतोषको नहीं प्राप्त हुयें है, किंतु सर्व गणधर महाराजाओंको, और सर्व आचार्य महाराजाओंकोभी-निंदित कर दिये है। ऐसें सर्वथा प्रकारसें विपरीत विचारवालोंको-हम कहां तक शिक्षा देवेंगे ॥

इत्यलं विस्तरेण.

॥ इति । चार निक्षेपकी-सार्थकता, निरर्थकताका, विचार ॥

॥ अब ढूंढकोंके पुस्तकोंसें-चार निक्षेपका, विचार ॥

समकित-सार, यह दो पदसें मिश्रित-नाम है। और समकित गुण, चेतनका है, उनका सार भी उहांपर ही-मिलना, चाहिये ? परंतु जेठमलजी ढूंढकने-जूठका पुंज, लिखके, उस पुस्तकका यह-समकित सार-नाम, रखा है । सो ढूंढक, और ढूंढनीजी-के-मतसे भी, नाम निक्षेप, ही होगा ! और उनोंने-नाम निक्षेप है सो, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक, और-उपयोग विनाका ही, माना है । हमतो उस जूठको पुंजका-नाम समकित सार, निरर्थक ही, मानते है । परंतु ढूंढकोंकी मान्यता मुजब-ढूंढकोंको भी, उस पुस्तकका नाम--समकितसार, निरर्थक, और--समकितका कार्यकी, सिद्धिमें-उपयोग विनाका ही, हुवा है ॥ इस वास्ते जेठमलजीके पुस्तकमेंसें-समकितकासार, तीनकालमें भी, किसीको-नही मिलनेवाला है ॥

॥ इति जेठमलजीके पुस्तकका, निरर्थक रूप-नाम निक्षेपके, स्वरूपका विचार ॥

॥ अब जेठमलजीके पुस्तकका-स्थापना निक्षेपका, स्वरूपको विचारते है ॥

अब देखिये-समकित सार-वस्तुका, स्थापना निक्षेपका स्वरूप-ज्ञान वस्तुका स्थापना निक्षेप-काष्ट पै लिखा, पोथी पै लिखा, आदि दश प्रकारसें करनेका सिद्धांतमें कहा है। सो तीर्थंकरोंके वचनानुसार-सत्य लेख रूप होवे, तब ही आदर करनेके योग्य होवे । परंतु ढूंढक जेठमलजीनें-अक्षरोंकी जुडाई, जूठ-जूठ करके, समकितसें भ्रष्ट करनेका-लेखको, लिखा है । और ढूंढक, ढूंढनीजीने-यह अक्षरकी जुडाई रूप---स्थापना निक्षेपको, समकितका कार्यकी सि-

द्धिमें—निरर्थक, और उपयोग विनाका, मान्या है। और सम्यक्त्व ज्ञानयोंको तो जेठमलजीके पुस्तकके, अक्षरोंकी संकलना-विपरीत ही दिखलाई देती है, उनके वास्ते तो निरर्थक है, उसमें तो कोई आश्चर्यकी वात ही नहीं है, परंतु ढूंढकोंके मंतव्य मुजब—ढूंढकोंको भी-समकितसार वस्तुका-कार्यकी सिद्धि, तीनकालमें भी होनेवाली नहीं है। क्योंकि यह अक्षरोंकी जुडाइ रूप—स्थापना निक्षेपको, कार्यकी सिद्धिमें—निरर्थक, और उपयोग विनाका, मान्या है। तो पिछे कागद उपर लिखा हुवा, जेठमल ढूंढकजीका, जूंठा लेखसें—समकितका सार, कहांसें मिलानेवाले है ?॥

॥ इति ढूंढक जेठमलजीके—पुस्तकका, निरर्थकरूप दूसरा—स्थापना निक्षेपका, स्वरूप ॥

अब जेठमलजीके—पुस्तकका, तिसरा—द्रव्य निक्षेपके, स्वरूपका विचार, करके दिखावते हे ॥

अब देखिये—समकितसार, वस्तुका, तिसरा—द्रव्यनिक्षेप।प्रथम ढूंढनीजीने—सत्यार्थ पृष्ट. ५ में—द्रव्य आवश्यकके २ भेद, यथा—षट् अध्ययन आवश्यक सूत्र १। आवश्यकके पढनेवाला २ आदि। लिखके तीर्थंकर-भाषित,सिद्धांतकाभी—तिसरा द्रव्यनिक्षेप, कार्यकी सिद्धिमें—निरर्थक,और उपयोग विनाके, ठहरायके, पिछे तीर्थंकरोंका प्रथमके त्रण निक्षेपभी, कार्यकी सिद्धिमें—निरर्थक, और उपयोग विनाके, लिख दिखायेथे। और शाह वाडीलालने गणधर भाषित—सूत्रके—चार निक्षेप, करती वखते-त्रण निक्षेप, निरर्थक-ठहरानेके लिये-" धर्मना दरवाजाना पृष्ठ. ६४ मे-श्री अनुयोगद्वार सूत्रकी—साक्षी देके, लिखा है, कि—पेहला त्रण निक्षेप—अवथ्थु, एटले उ-

पयोग विनाना, छेल्लो चोथोज आ लोकमां उपयोगी " ऐसा लिखके ज्ञान वस्तुका-त्रंण निक्षेप, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक, और उपयोग विना के, ठहरायके, तीर्थंकरके-त्रण निक्षेपभी, निरर्थक, और उपयोग विनाके ही-लिख मारे है ॥ अब इसमें विचार करनेका यह हैं कि-जब तीर्थंकरोंका-ज्ञान वस्तु स्वरूप पुस्तक पांनांका । और साक्षात् स्वरूप तीर्थंकर भगवानका-त्रण निक्षेप, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक, और उपयोग विनाके-होजायगे, तब जेठमल ढूंढकजीने-लिखा हुवा, जूठका पुंजरूप-समकितसार नामज्ञान वस्तुका, संपूर्ण पुस्तककि जो-द्रव्य निक्षेपके विषय स्वरूपका हैं सो, सम्यक्क ज्ञानीयोंके लिये-निरर्थक, और उपयोग विनाका, होजावे उसमें तो-कोइ आश्चर्यकी वात ही नहीं है, परंतु ढूंढक, ढूंढनीजीके, मंतव्य मुजब तो ढूंढकोंकोभी-समकित सार वस्तुकी, कार्यकी सिद्धिमें-निरर्थक, और उपयोग विनाकाही, हुवा है । इस वास्ते जेठमलका रचित-समकितसार नामका, संपूर्ण पुस्तककि-जो द्रव्य निक्षपके स्वरूपका है, उसमेंसें-हमारे ढूंढकोंकोभी-समकितसारकी वस्तु, तीन कालमेंभी न मिल सकेगी ॥

॥ इति ढूंढक जेठमलजीके-पुस्तकका-निरर्थक रूप, तिसरा द्रव्य निक्षेपका, स्वरूप ॥

॥ अब जेठमलजी के पुस्तकका, चतुर्थ ' भावनिक्षेपका ' स्वरूप-दिखावते है ॥

अब देखिये-समकितसार वस्तुका, चतुर्थ-भाव निक्षेप, ढूंढक जेठमलजीने-जो समकितगुण चेतनकाथा,उस-नामका निक्षेप,अपना लिखा हुवा-जड स्वरूप पुस्तकमें, किया है, सोतो ढूंढक, ढूंढनीजीके-मंतव्य मुजब-निरर्थक है ॥१॥

अब समकितसार वस्तुको--जनानेके लिये, जो उस पुस्तक में--स्थापना निक्षेपका विषय स्वरूपकी--अक्षरोंकी खुदाई है, सोभी, जेठमलजीके पुस्तककी--निरर्थक, रूपही है। क्योंकि--ढूंढक, ढूंढनीजीने--दूसरा स्थापना निक्षेपभी, निरर्थक, और कार्यकी सिद्धि-में--उपयोग विनाका मान्या हुवा है ॥ २ ॥

अब देखो--समकितसार-वस्तुका, तिसरा द्रव्य निक्षेप--पुस्तक पानांके स्वरूपसें है, सोभी ढूंढक, ढूंढनीजीने--निरर्थक, और कार्यकी सिद्धिमें--उपयोग विनाके, मानेहुये है। तो अब, हे भव्य पुरुषो--विचार करोकि, समकित सार वस्तुका, प्रथमके--त्रण निक्षेप निरर्थक, और समकितसार वस्तुका, कार्यकी सिद्धिमें--उपयोगविना के हुये, तो पिछे जेठमलका दिखाया हुवा-द्रव्य निक्षेपका विषयरूप पुस्तकसें, भावनिक्षेपका विषयभूत--समकितसार वस्तुको, कहांसें मिलावोंगे ?। हमतो यही कहतेहैंकि--भावनिक्षेपका विषयभूत जो--वस्तु है, उनकी--सिद्धिकरानेमें, प्रथमके--त्रण निक्षेपही, परमोपयोगी है ॥ यहबात--ढूंढक, ढूंढनीजीके--लेखसेंही, हम सिद्ध करके दिखलाते है ॥

देखोकि---सत्यार्थ पृष्ठ. १७ में--तीर्थंकरका--भावनिक्षेपके, विषयमें-ढूंढनीजी लिखती है कि-शरीर स्थित, पूर्वोक्त चतुष्टय गुण सहित, आत्मा, सो-भावनिक्षेप है, यहभी कार्यसाधक है ॥

अबदेखो--धर्मना दरवाजा-पृष्ठ. ६२--६३ में-वाडीलालका लेख··केवलज्ञानादि सहितवर्त्तें छे ते--भावअरिहंत, खरेखरा-अरिहंततो तेज, अने-वंदनिक पण तेज, वाकीतो अरिहंत नामनो-माणस के, पथ्थर, कोईनुं-काल्याण, करी सके नही ॥

अब पृष्ठ. ६३ में, सूत्रका भावनिक्षेपमें-सूत्रमांनां तत्त्वो (वां-

चनार ग्रहण करे छे ते) ॥

अब हम प्रथम ढूंढनीजीको पुछते है कि–अरूपी गुणवाला, तीर्थंकरका अरूपी आत्मा, तूंने किस विधिसें देख लिया ? क्यौं कि अरूपी आत्माको तो,केवल ज्ञानी विना,दूसरा पुरुष देख सकता ही नही है ? हे ढूंढनी तूं इतना मात्र ही कह सकेगी कि–जैनके सिद्धांतसें हम–जान सकते है, तबतो जो तूंने सर्व पदार्थके प्रथमके–त्रण निक्षेप, निरर्थक, और कार्यकी सिद्धिमें—उपयोग विनाके, मानेथे, उसमेंसें जैनसिद्धांतका जो प्रथमके–त्रण निक्षेप है, सो ही तीर्थंकरका–अरूपी आत्माका, और सर्व पदार्थ मात्रका, ज्ञान प्राप्त करानेमें--परमोपयोगी स्वरूपके ही हुये है । तो पिछे तूंने, और तेरा ढूंढकने--जैन तत्त्वोंको, और लोकोको, भ्रष्ट करनेके वास्ते यह क्या पथ्थर फेंक मारा ? कि वस्तुके प्रथमका–त्रण निक्षेप, निरर्थक, और कार्यकी सिद्धिमें–उपयोग विनाके ? तुमको इतनी अज्ञता कहांसें प्राप्त हो गइ कि–जैनमार्गका सर्व तत्त्वोंको, विपरीत ही विपरीतपणे देखते हो ? ॥

हम भार देके कहते है कि—जब यह अनुयोगका विषय, तुमेरे ढूंढकोंको—दिशावलोकनका स्वरूप मात्रसें भी–यथा योग्य दिखनेको लगेगा, तब तुमको तीर्थंकरकी ' मूर्त्तिका ' और सर्व आचार्योंकी ' निंदा ' करनेका–प्रसंग ही, काहेको रहेगा ? परंतु गुरु द्रोही पणासें–जबरजस्त अज्ञानने, तुमको घेर लिये है । सो इसमें किसीका–उपाय नहीं है ॥ इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति ढूंढक जेठमलजीके पुस्तकका—निरर्थक रूप चतुर्थ-- भाव निक्षेपका, स्वरूप ॥

अब हम ढूंढनी पार्वतीजीकी ' ज्ञान दीपिकाके, चार नि-क्षेप ' सामान्य मात्रका स्वरूपसें—दिखलावते है ॥

ज्ञान—दीपिका-यह दो शब्दोका, मिश्रण करके, अपना पु-स्तकमें, ढूंढनीजीने-नामका निक्षेप, किया है। ज्ञान है सो तो चे-तन गुण है, और-दीपिका है सो, जड चेतन स्वरूपकी है ॥

यह दूसरी वस्तुओंका-नाम है सो, ढूंढनीजीने-अपनी रची हुइ पुस्तकमें, निरर्थक, और ज्ञानकी दीपिकारूप-कार्यकी सिद्धिमें, उपयोग विनाका, यह-नामनिक्षेप, माना है। तो अब विचार क-रो कि-यह ढूंढनीजीका पुस्तकको वांचने वाले है उनोंको-ज्ञान दी-पक, कैसें जगेगा ? अपितु तीन कालमेंभी-ज्ञानदीपक, जगनेवाला नहीं है। यह तो ढूंढनीजीका-नाम निक्षेपका विषय ॥ १ ॥

अब देखोकि, ढूंढनीजीने-अपनी थोथी पोथीमें, जो जूठे जूठ अक्षरोकी जुडाई किई है, सो-स्थापना निक्षेपका, विषय है, सो स्थापना निक्षेप—निरर्थक, और कार्यकी सिद्धिमें—उपयोग विनाका, माना है, वास्ते ऐसी जूठी अक्षरोंकी जुडाईसें-वांचने वालेको, तीन कालमेंभी-ज्ञान दीपक, न जगेगा। यह तो ढूंढनीजीका दूसरा स्थापना निक्षेपका, विषय २ ॥

अब देखोकि-ज्ञान दीपिका, ऐसा-नाम निक्षेप १। अक्षरों की जुडाईरूप, दूसरा-स्थापना निक्षेप २। यह दोनो निक्षेप-निरथक, और उपयोग विनाके, मानके-द्रव्य निक्षेपका, विषय रू-प-संपूर्ण पुस्तक भी, गप्प दीपिका समीर ने तो-निरर्थक, और उपयोग विनाका, करके ही दिखायाथा, परंतु ढूंढनीजीने अपने आप-निरर्थक, और उपयोग विनाकाही, मान लिया है। यहतो ढूंढनीजीका, तिसरा-द्रव्य निक्षेप ३। अब देखोकि-ढूंढनीजीने जो

ज्ञान दीपिका जगानेका-भाव, मनमें धारण कियाथा, सो-भाव-निक्षेपका विषय भूत-ज्ञानदीपिका, तीन कालमेभी-किसीके हृदयमें, न जगेगी ४ ॥

॥ इति ढूंढनीजीकी-ज्ञानदीपिकाके-चार निक्षेपका, स्वरूप. ॥

अवश्य-ज्यादा उदाहरण देनेकावंश करके, यह कहते है कि-जो जैन सिद्धांतकारोंने-वस्तुके चार निक्षेप, मानेहै सोतो-सत्य स्वरूपसेंही माने है, परंतु-निरर्थक, अथवा कार्यसिद्धिमें उपयोग विनाके, नहीं माने है। देखो इस वातमें-ठाणांग सूत्रका, चोथा ठाणा, छापेकी पोथीके पृ. २६८ में-तथाच.

१नामसच्चे । २ठवणासच्चे । ३दव्वसच्चे । ४ भावसच्चे।

अर्थ—पदार्थोंका-१नाम है। सो,सत्य है २स्थापना है सोभी, सत्य है। ३द्रव्य है सोभी, सत्यही है । ४और भाव है सोभी, सत्यही है। यह सत्यरूप चार निक्षेपका, विषयको नही समजते हुये, हमारे ढूंढकभाईओ, जो मनमें आता है सोही-वकवादकर उठते है ? परंतु उनोंकी दयाकी खातर-दूसरी प्रकारके उदाहरणों सेभी, हम-हमारे ढूंढकभाईओंको-समजूति करके दिखावते है ॥ सो हमारे दियेहुये दृष्टांतमेंसें-न्यायपूर्वक बोध, ग्रहण करना, परंतु-विपरीत विचारमें, नहीं उतरणा ॥

॥ त्रण पार्वतीके-चारचार निक्षेप ॥

अब देखियेकि—१शिवस्त्री । २वेश्या । और ३ ढूंढनीजी । यह तीन-'पार्वती' और तीनोंके-तीन भक्तके, उदाहरणसें-चार

चार निक्षेपका स्वरूप, दिखावतेंहै । जैसेंकि--महादेवजीकी स्त्रीका नाम है-पार्वती,सो ढूंढनीजीके मंतव्य मुजब--नाम, होगा । और जैनसिद्धांतानु सारसे तो--नाम निक्षेपही होगा । पंरंतु दूसारीस्त्री में दिया।हुवा यह-पार्वतीजीका-नामतो,ढूंढनीजीके-मंतव्य मुजबभी-नाम निक्षेप ही,होगा। और यह पार्वतीजीका-नाम,हजारो स्त्रीयोंका देखने· में भी आता है,तो भी एक-दो-स्त्रीयोंका,मुख्यत्वपणा करके,समजाते है ।जैसें कि-कोई खुब सुरतकी वेश्या है,उसमें-नामका निक्षेप,किया है-पार्वती । और एक ढूंढनी साध्वीजीमें भी वही-नामका निक्षेप, किया गया है-पार्वती । अब-एक पुरुष है, महादेवजीका भक्त १। और दूसरा-एक पुरुष है, सो-केवल कामका विकारी २ । और तिसरा-एक पुरुष है, सो ढूंढक धर्मकी ही प्रीतिवाला. ३ ।

॥ शिवभक्त आश्रित--त्रणें पार्वतीजीका, स्वरूप. ॥

इस विषयमें प्रथम--शिवका भक्त, आश्रित--त्रणें पार्वतीजीका, चार चार निक्षेप १ हेय, २ ज्ञेय, और ३ उपादेयके, स्वरूपसें--विचार करके, दिखलावते है ।

अब जो महादेवजीका--भक्त, है सोतो-वेश्या पार्वतीका-नाम निक्षेपको, केवल--१ हेय, रूपही जानता है । और--वेश्या पार्वती, एसा--नाम, सुनके, कबीभी उसकी तरफ ध्यान नही देता है ॥ और दूसरा ढूंढनी पार्वतीजीका--नाम निक्षेपको, सुनके, उनको--२ ज्ञेय, रूपसें, समजता है । और--साध्वी पार्वतीजी ऐसा नाम सुनके-नतो प्रीति धारण करता है, और न तो अप्रीति करता है । मात्र इतना ही विचार करता है कि, यह-पार्वतीजी भी कोई एक वस्तु रूपसें होंगी ? ॥

और शिवजीकी-पार्वतीजीका-नाम निक्षेपको, ३ उपादेयके स्वरूपसें—मानता है । और अपना सुख दुःखादिकके प्रसंगमें-उसी ही पार्वतीजीका-नामको, स्मरण करता है । और मुखसें उच्चारण भी करता है कि-हे पार्वतीजी, हे पार्वतीजी, इत्यादि

और कुछ भी अपनी—शांति, मानता है । जैसें कि-कोइ पुरुष अपनी-जनेताका प्रेमी, माताकी-घेर हाजारीमें, अथवा सर्वथा प्रकारके अभावमें, सुख दुःखादिकके प्रसंगमें-हे अम्मा २ ऐसा तो-पंजावी । हे मा २ ऐसा-गूजराती, अथवा मारवाडी । और हे आई २ ऐसा तो-दक्षिणी, उच्चारण करके, अपना दुःखादिकके प्रसंगमें-विश्रांति, मानता है । तैसें ही सो शिवजीका-भक्त, ईश्वर पार्वतीजीका—नाम निक्षेपको, उच्चारण करके, अपना दुःखादिककी कुछभी—विश्रांति, मान रहा है । सो केवल नाम निक्षेपका, विषयसें ही, मान रहा है । इति शिव भक्त, आश्रित त्रणें पार्वतीका, प्रथम—नाम निक्षिपका, स्वरूप ॥

अब इस ही शिव—भक्त, आश्रित-त्रणें पार्वतीजीका, दूसरा स्थापना निक्षेपका, स्वरूप दिखावते है—

सो ही शिवजीका भक्तने—शोळें श्रृंगारसें सज्ज किई हुई, और अखीयांके चालाका देखाव है जिसमें, ऐसी—वेश्या-पार्वतीकी, आकृति (अर्थात् मूर्त्ति) को-देखके, अपनी मुख नाशिकाका-विभत्स पणा करके, कहता है कि-ऐसी पापिणीयां, जगतमें क्यौं जन्म लेतीयां होगी ? ऐसा कहकर, उस-मूर्त्तिकी, अपभ्राजना ही करता है । और फिर उनकी तरफ—दृष्टिभी नही देता है, क्यौं कि—उनको कामके तरफ—बिलकुल, लक्षही नहीं है । केवल शिवपार्वतीजीके, भजनमें ही-प्रीति लग रही है । इस वास्ते

उस वेश्या पार्वतीकी—मूर्त्तिको, केवल हेय रूप समजके, निंद निक ही मानता है ॥

और मुख उपर-मुहपत्तिका, चिन्ह चढाया हुवा है जिसने, ऐसी—ढूंढनी पार्वतीजीकी, दूसरी—मूर्त्तिको, देखके, सो शिव भक्त—नतो हर्षित होके, प्रीतिको, दिखावता है, और नतो मुख नाशिकाको चढायके—अपभ्राजना, करता है। मात्र इतना ही मनमें ख्याल कर रहा है कि-ऐसा भी एक नवीन प्रकारका रूप, दूनीयांमें—होता है। केवल २ ज्ञेय रूपसें—समजता है ॥

और शिव पार्वतीजीकी—मूर्त्तिको, देखके—बडा हर्षित होके, अपनी रोम राजी तो करलेता है विकस्वर, और अपनी मुख नाशिकाका दर्शाव तो कर लिया है-भव्य स्वरूप, और अपने नेत्रोंसें अमृत भावको वर्षावता हुवा, वारंवार-तृप्त निघासें देखके, औ अपनी परम ३ उपादेय वस्तुकी-मूर्त्ति (आकृति) समजकर, अपना मस्तकको—झुका, रहा है। और दूसरे पुरुषोंको बोध करानेके लिये, मुखसें उच्चारण करके भी कहता है कि-देखो प्यारे यह जगेश्वरीकी—मूर्त्तिका, क्या अलोकिक स्वरूप है, इत्यादि।

॥ इति शिवभक्त, आश्रित—त्रणें पार्वतीका, स्थापना निक्षेपका, स्वरूप ॥

॥ अब इस ही शिवभक्त आश्रित—त्रणें पार्वतीका-तीसरा द्रव्य निक्षेपका स्वरूप—प्रदर्शित करते है ॥

अब सो शिवभक्त उसी-वेश्या पार्वतीकी काम विकारका स्वरूपको ही प्रकट करनेवाली-पूर्व अवस्थाको, अथवा अपर अवस्थाको, (अर्थात् योवनत्वकी-पूर्व अपर अवस्थाको) निघा कृ-

रके भी देखता नहीं है, अथवा किसीको वर्णन करते हुयेसें--श्र-
वण करके, ते भक्तने कहा कि--अरे महा भाग--ऐसी महा पापिणी-
यांका--चरित्र, हमको मत सुनावना। ऐसा कह करके--वेश्या पा-
र्वतीका- द्रव्य निक्षपके विषयको भी--हेय पणा, मानता हुवा--अभाव
ही, प्रदर्शित करता है ॥

और ढूंढनी साध्वी पार्वतीजीकी-पूर्व अवस्था यह है कि-दी-
क्षा लेनेकी इछा करके, किसी साध्वीके पास आई हुई, और अ-
पनी गुरुनीजीकी पास-कई दिनतक रहकर, पठन पाठन करतीथी
ते । अपर अवस्था यह है कि, जो ढूंढनी पार्वतीजी-उपदेशादिक
करतीथी, और ग्रंथादिककी रचनाभी करतीथी ते, उनकी समाप्ति
हुई सुनते है, इत्यादिक-द्रव्य निक्षेपका-विषयकी वार्त्ता-सो शिव
भक्त, किसीसें श्रवण करके-नतो हर्षित होता है, और नतो दिल-
गीरीकोभी प्रदर्शित करता है, केवल-ज्ञेय स्वरूपका पदार्थको सम-
ज करके-मध्यस्थ भावको. अंगीकार कर रहा है ॥

॥ और सो शिवभक्त-शिव पार्वतीजीकी-अनेक प्रकारकी
लीलावाली-पूर्व अवस्थाको, अथवा अपर अवस्थाको-श्रवण कर-
नेके लिये, पंडित पुरुषोंको-संतुष्ट द्रव्यको,-अर्पण करके भी-द्रव्य
निक्षेपका विषयरूप, अपना उपादेयकी-ते वार्त्ताओंको, वारंवार
श्रवण करनेकी इछा करता है ॥

॥ इति शिव भक्त आश्रित-त्रणें पार्वतीका-तिसरा द्रव्यनि-
क्षेपके विषयका स्वरूप ॥

॥ अब उसही शिव भक्त आश्रित-त्रणें पार्वतीका. चतुर्थ-भाव
निक्षेपका, स्वरूप-प्रदर्शित करते है ॥

प्रथम जो–वेश्या पार्वती है सो–शोलें शृंगार सज्जकरके, अपने नेत्रोंका कटाक्ष–लोकोंके उपर, डाल रही है, और परपुरुषोंकी राह देखनेको–बेठी हुई है, सोही–भाव निक्षेपका विषय स्वरूपकी है ॥ परंतु सो शिवभक्ततो–हेय रूप गंदापात्र जाणके, उनकी तरफ–थोडीसी निघा मात्र करके भी, देखता नहीं है ॥

और मुख उपर–पट्टी, चढायके साक्षात्पणे बेठी हुई, जो ढूंढनी पार्वतीजी है सो–अपनी आवश्यकादिक–नित्य क्रियामें, तत्पर, विहारादिकमें–उद्यत, उपदेश दानादिकमें–प्रवीण है, सोही–भाव निक्षेपका, विषय है । परंतु सो शिव भक्त–साक्षात्पणे देखकेभी–विचार करता है कि–ऐसीभी नवीन प्रकारकी–क्रिया करनेवाले लोक, दुनीयामें फिरते है । ऐसा शोच करता हुवा–नतो हर्ष धारण करता है, और नतो कुछ–दिलगीरीपणाभी प्रगट करता है । मात्र एक नवीन प्रकारका–ज्ञेय पदार्थका स्वरूपको जाणकरके और विस्मित हुवा टगटगपणे देखकरके पिछे अपना रस्ता पकड लिया है ॥

अब सोशिव भक्त–एकांत स्थलमें, अपनी उपादेयरूप शिव-पार्वतीजीकी–मूर्त्तिके, सामने–बैठकरके, उसीही पार्वतीजीके नामकी अर्थात्–नाम निक्षेपका, विषयभूतकी मालाभी–हमेशां फिराता रहा, और उसीही पार्वतीजीकी–पूर्व अपर अवस्थाका–अनेक गुणगर्भित–भजनोंको पढके, उसमें लयलीनभी–होता रहा । तब ते भक्तकी ऐसी अलोकिक भक्तिको देखके, ते मूर्त्तिका अधिष्ठित एक देवताने, उस भक्तको, साक्षात्पणे पार्वतीजीका–भावनिक्षेपके, स्वरूपसे–दर्शन करायाहै । उससाक्षात्–पार्वतीजीका, स्वरूपको–देखके, सो शिवभक्त–विकश्वर रोमराजी पूर्वक, अत्यंत आल्हादित हुवा, उस साक्षात्रूप–पार्वतीजीके, चरणोंमें पडके, अपना निस्ता-

र पणाकी-आजीजी करता है, और सर्वप्रकारसें-निर्द्वंधहोके, उस पार्वतीजीका-दर्शन, भजन, आदिमेंही-मसगुलपणे रहता है ॥

और दूनीयादारीका विशेष-प्रयोजनही, नहीं रखता है, जैसें कि-काठियावाडमें-नरसिंह मेहताभक्तको, ऐसा बनाव, बन्या हुवा सुनते है ॥

और दक्षिणमें-तुकाराम आदि भक्तोंकोभी-ऐसा बनाव, बन्या हुवा सुनते है ॥

और जैनोंकातो-सेंकडो पुरुषोंको जिन प्रतिमाका अधिष्ठायक देवताओंने-हाजरपणे दर्शनदेके, संकटका निवारण किया हुवा है जैसेंकि-श्रीपालराजाको, और सुबुद्धिमंत्री आदिको । और परोक्षपणे तो-जिनप्रतिमाका अधिष्ठायकोंने-लाखो पुरुषोंको सहायता कीई हुई है, और अबीभी केसरीयातीर्थ बाबाका, और भोयणी तीर्थ बाबाका-अधिष्ठायक देवताओ-ते भक्तजनोंको, सहायता करतेही है । सो जिन प्रतिमा (मूर्त्ति) की-भक्तिकाही फल है ॥ इतनी बात प्रसंगसें-हमने लिखदिखाई है ॥

॥ इति शिवभक्त आश्रित-त्रणें पार्वतीका-चार चार निक्षेपोंका, स्वरूप ॥

अब कामी पुरुष आश्रित-त्रणें पार्वतीका, चार चार--निक्षेपका स्वरूप, प्रदर्शित करते है ॥

अब जो-वेश्याका प्रेमी-कामी पुरुष है सोतो, न शिवपार्वतीजीको-नामसें, जानता है । और न तो ढूंढनी पार्वतीजीको-नामसें, जानता है । केवल वैश्या पार्वतीका-नामनिक्षेपकोही-आपना उपादेय स्वरूपसें, जानता है । जब पार्वती-ऐसा नाम, सुनता है

अथवा-याद आता है, तब-वेश्या पार्वतीकी तरफही, उनका-ध्यान, लगजाता है ॥

इति कामीपुरुषको त्रणें पार्वतीका नामनिक्षेपकी, प्रीतिका स्वरूप ॥

अब उस कामी पुरुषको-किसीने-शिवपार्वतीजीकी-मूर्त्ति, और ढूंढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्ति, दिखाई है। परंतु सोकामी पुरुषने सामान्यपणे देखके-नतो हर्षभाव दिखाया है, और नतो कुछ-भयभ्राजनाभी किई है, परंतु विशेषमें-इतना विचार करनेको ते लग गयाकि, जैसी खुब सुरत वेश्या पार्वतीकी-मूर्त्तिको, देखके, मनका प्रफूलितपणासें, और रोमराजिका विकश्वरपणासें-आत्माको आनंद होता है, तैसें आनंदको-प्राप्त करानेमें, यह दोनो मूर्त्तियामेंसे-एकभी नहीं है। वैशा विचार करके, उस कामी पुरुषने-दिखानेवाला पुरुषको, पिछें सुपरतही करदीई है, परंतु ते मूर्त्तियांवालाका आग्रहसें-कामी पुरुष, खडाही रहा है ॥

॥ इति कामी पुरुषको—त्रणें पार्वतीका—स्थापना निक्षेपकी प्रीतिका स्वरूप ॥

॥ अब—वही दोंनो मूर्त्तियांवाला पुरुष—उसकामी पुरुषको-शिवपार्वतीजीकी, और ढूंढनी पार्वतीजीकी—क्रमसें-पूर्व अवस्था, और अपर अवस्थाकि—जो पूर्वमें-वर्णन किईथी, सोही अवस्थाका—रस पूर्वक वर्णन करके सुनावता है, तो भी ध्यानपूर्वक नही सुनता है, और मुखसें कहता है कि—बसकर भाई बसकर, क्या ऐसी निकामी वार्ता—हमको सुनाता है। एसा कहकर, शि-

वंपार्वतीजीके वर्णनमें—कुछ कथन कर सक्या नही । परंतु ढूंढनी-जीके वर्णनमें कहता है कि—अरेरे फूकटका इतना कष्टको उठा करके, ढूंढनी पार्वतीजीने तो--वृथा ही, जन्म गमाया है, ऐसा कहकर वेश्या पार्वतीकी ही—मोहोत्पादकी पूर्वाऽपर अवस्थाका--वर्णन करके, अपना आनंद, और दीलगीरी पणाभी, प्रदर्शित करता है.

॥ इति कामी पुरुषको—त्रणें पार्वतीका—द्रव्य निक्षेपमें—प्रीति अप्रीतिका स्वरूप ॥

॥ अब उस कामी पुरुषको-भाव निक्षेपका विषय भूत, साक्षात् शिव पार्वतीजीका-दर्शन होना तो, कठिन ही है । परंतु किसीने-ढूंढनी पार्वतीजीकि-जो साक्षात् पणे-भाव निक्षेपका विषयभूत है, उनका दर्शन करादिया है । परंतु उसकामी पुरुषने, मलीन वेशादिक देखतेकी साथ ही-मुखपें मरोडा देके, चलधरा है ।

॥ अब-भाव निक्षेपका विषय रूप, साक्षात्-वेश्या पार्वतीको, देखतेकी साथ, उसकामी पुरुषने-रोम राजितो कर लिई है खडी, और नेत्रोंसें वर्षाता रहा है अमृतभाव, और अत्यंत-आल्हादित पणे, मिलता हुवा-अपना जन्म, जीवतव्यका, साफल्यपणा ही मान रहा है ॥ इतिभाव निक्षेप ॥

॥ इति कामी पुरुष आश्रित-त्रणें पार्वतीजीका चार चार निक्षेपका, स्वरूप ॥

॥ अब-ढूंढक भक्त श्रावक आश्रित-त्रणें पार्वतीजीका—चार चार निक्षेपका, स्वरूप-मूर्त्तिपूजक, और ढूंढक श्रावकका—संवाद पूर्वक, दिखावते है ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई ढूंढक ! अपनी ढूंढनी पार्वतीजीके-मंतव्य मुजब-शिवजीकी स्त्रीमें-पार्वतीजी, नाम है, सो कभी--नामनिक्षेप, न होगा। क्यौंकि-सोतो असलरूप--नाम है, तोभी अपनेको तो ज्ञेय स्वरूपही मानना—ठीक होगा ॥ और ते अशलरूप-शिव पार्वतीजीका-नामके, हिशावसें वेश्यामें-पार्वती नाम है सो-नाम निक्षेप, होगा। परंतु वह-कुछभी कार्य साधक, नहीं होनेसें-हेय रूप जानके, अपनेको--त्याग करना ही, अछा है। चाहे किसी पुरुष ने वेश्या पार्वतीके-नामसे, अप भ्राजनाभी किई, तोभी अपनेको-प्रीति या अप्रीति, होनेका कुछभी कारण नहीं है। क्यौंकि-वेश्या पार्वती तो अपनेको निरर्थक रूपही है ॥

अब अपनी साध्वी ढूंढनीमें-पार्वतीजी-नाम है, सोभी-शिव पार्वतीजीके हिशावसें, नाम मात्रतो, न कहा जावेगा--किंतु--नाम निक्षेपही, मानना--उचित होगा। उहां क्या विचार करेंगें? क्यौंकि-अपनी ढूंढनी पार्वतीजीने १ नामनिक्षेप। २ स्थापना निक्षेप। ३ द्रव्यनिक्षेप। यह-तीनों निक्षेप, कार्य साधक नहीं-ऐसा लिखके-निरर्थक रूप ही, ठहराये है। जो अपने ढूंढनी पार्वतीजीका-नामको, ज्ञेयरूप, मानीयेतो-शिवपार्वतीजीके मान्यता तुल्य होजायगी। अगर जो-हेय रूप, मानीयेतो-वेश्या पार्वतीकी तुल्य-निरर्थकरूप, होजायगी, तब तो-ढूंढनी पार्वतीजीके-नामकी साथ, हमारा कुछ भी संबंध न रहेगा।

और इसी--नामसें, गालीयां देनेवाला--हमको कुछ भी, बोलनेको न देवेगा कि-हम तो मात्र--नामको, उच्चारण करके-गालीयां, देते है इसमें तुमेरा हम क्या लेते है? ऐसा कहेगा। इस वास्ते ढूंढनीजीके-नाम निक्षेपका, विचार ही करना पडेगा ॥

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक—ढूंढनीजीमें पार्वती-नाम है सो-नामनिक्षेप, न मानेंगे-पात्र नामही, मान लेवेंगे तो पिछे-वेश्या पार्वतीकी तुल्यता, न रहेगी ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई ढूंढक शिवजीकी स्त्रीमे-पार्वतीजी नाम है, सोभी-जैन. सिद्धांतकारोंने-नाम निक्षेप ही, माना है । अगर जो ढूंढनीजीकी जूठी कल्पना, मुजब-नाम ही, ठहरायलेवें तो भी ढूंढनीजीमें तो पार्वती ऐसा नाम है सो भी-नाम निक्षेप ही, ठहरेगा ॥

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक-हमारी ढूंढनीजीमें पार्वतीका-नाम निक्षेप,तूं क्या वेश्या पार्वतीका-नाम-निक्षेपकी,तुल्य समजता है ?॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई. ढूंढक-हमतो जैन सिद्धांताऽनुसारसें-हेय वस्तुमें-हेय रूप । और ज्ञेय वस्तुमें-ज्ञेय रूप । और-उपादेय वस्तुमें-उपादेय रूप, यथा योग्य-नामका निक्षेप, मानते हैं । परंतु-त्रण निक्षेप-निरर्थक रूपे, नहीं मानते है । यह तो तुमेरी ढूंढनी पार्वतीजीने-सिद्धांतसें निरपेक्ष होके १ नाम भिन्न, । २ नाम निक्षेप भिन्न। ऐसें स्थापना । द्रव्य । और भाव । इन चारों निक्षेपोंको-भिन्न भिन्नपणे लिखके, और जूठा आठ विकल्प करके, प्रथमके-त्रण निक्षेप, निरर्थक, और उपयोग विनाके-ठहराये है । ऐसी अपनी अपूर्व चातुरी प्रगट करके, वेश्या पार्वतीका-नाम निक्षेपकी-तुल्यता, अपनेमें ठहराय लिई है ? ॥

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक-वेश्या पार्वतीका-नाम निक्षेप तुल्य-निरर्थक, स्वामिनीजीका—नाम निक्षेप, हो जावें, सो तो बात अछी नहीं । इस वास्ते-में-तेरेको ही पुछताहुं कि-इस विषयमें असल बात क्या है ? ॥

और यह दूषण कैसें न रहें, ऐसा रस्ता-सिद्धांतानु सार, हमको भी-दिखलाना चाहिये ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई ढूंढक-इस ग्रंथकारने-ढूंढनीजीकी सर्व कुयुक्तियांको-सिद्धांतके अनुसारसे सर्वथापणे विपरीत रूप दिखा-के-चार निक्षेपका विषयको, अनेक प्रकारकी युक्तियांसें-समझाया है, तो भी क्या तेरी समज-हुई नहीं है, खेर, देख तुकमें इहांपर भी-समझा देते है ।

यद्यपि-नाम-एक होके, अनेक वस्तुमें भी-नाम निक्षेप रूप, किया जाता है, परंतु इष्ट वस्तुमें किया हुवा ते-नामका निक्षेप, इष्ट रूप ही-मानना, उचित होता है । इसी बातकी सिद्धि-देखो सत्यार्थ पृष्ट. ९० में-ढूंढनी भी करके ही दिखाती है कि-कोई-पार्श्व, नामसें-गाली दे तो, हमे कुछ नहीं, कई-पार्श्व नामवाले फिरते है । तुम्हारा-पार्श्व, अवतार, ऐसे कहके-गाली दे तो-द्वेष आवे, इत्यादि ॥

फिर भी देखो कि-जेठमल, इस-नामका निक्षेप, आजतक लाखो पुरुषोंमें होता आया है, तो भी-गतरूप हुवा, ढूंढक सा-धुमें-जेठमल, यह नामका निक्षेप है सो तो, तुमने भी-उपादेय रूप ही, माना है ॥

ढूंढक-हे भाई मूर्त्तिपूजक-जेठमल, इस नामका निक्षेपको, हमने कुछ-उपादेय रूपसें, नहीं माना है ॥

मूर्त्तिपूजक-हे भाई भोला ढूंढक-ढूंढक साधुमें रखा हुवा-जेठमल, नामका निक्षेपको तो, तुमने-उपादेय रूप ही, माना है । क्यं कि हमारा गुरु वर्य-श्री आत्मा रामजी महाराजाने, जेठमलने ब नाया हुवा-समकित सार-ग्रंथका, खंडन रूप—सम्यक्त्व शल्यो

द्वारमें, जेठमलजीकी—अज्ञानता, और मूढता, देखके मात्र इतना ही लिखाथा कि-जेठा मूढमतिने, जेठा अल्प मतिने,जेठा अज्ञानीने, जेठा निन्हवने, समजे विना-कुछ का कुछ, लिख मारा है। इतना लेख परतो अनेक हठीले ढूंढकोंने-अनेक प्रकारका उत्पात करनेका विचार कियाथा, और आत्मारामजी महाराजाको-सरकारमें भी चढा देनेके विचार पर आ गयेथे। तो अब विचार करो कि-अदृश्य रूप ढूंढक जेठमलजीका-नाम निक्षेप, तुमको उपादेय रूप, न होता तो इतना धांधल ही किस वास्ते मचा देते। सिद्ध हुवा है कि-ढूंढकमें-जेठमल नामका निक्षेप, तुमने भी-उपादेय रूप ही, माना है। तैसें ही ढूंढनीजीमें-पार्वती, यह-नामका निक्षेप, उपादेय स्वरूपसें-मानोंगे, तब ही वेश्या पार्वतीकी तुल्यता न होगी। नही तो तुमको उत्तर देनेकी भी जगा न रहेगी॥

और जो-नाम है, सो ही-नाम निक्षेपका, विषय, है। दूसरी जो जो कल्पनाओ ढूंढनीने किई है सो तो-जैन सिद्धांतसें-निरपेक्ष होके ही, किई है॥

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक—इस मुजब तो-उपादेय वस्तुमें-जो नामका निक्षेप है, सो भी उपादेय रूप ही-मानना, उचित मालूम होता है। क्यौं कि-ऋषभादिक, महावीर, पर्यंत-नाम है सो भी, बैल आदिपशुओंमें, और अनेक पुरुषादिकोंमें भी, रखा ही जाता है, परंतु तीर्थंकर जीवाधिष्टित-शरीरोंमें, रखा हुवा-ऋषभादिक महावीर पर्यंत-नाम है सो, तीर्थंकरोंके अभिप्रायसें-परम उपादेय रूप, हम भी मानलेवेंगे। परंतु तुमलोक पथ्थरकी-मूर्त्तिमें, तीर्थंकरोंका-स्थापना निक्षेप, करके—भगवान् ठहराय लेते हो, सो तो हम—भगवान् रूपसें, कभी न मानेंगे॥

॥ इति ढूंढक भक्त आश्रित संवाद पूर्वक-त्रणें पार्वतीका-नाम निक्षेपका, स्वरूप ॥

॥ अब ढूंढक भक्त आश्रित-त्रणें पार्वतीका-स्थापना निक्षेप-का, स्वरूप-संवाद पूर्वक ही, दिखावते है ॥

मूर्त्तिपूजक-हे भाई ढूंढक-देखकि, उपादेय वस्तुका-पुतला (अर्थात् आकृति) अथवा काली स्याहीका-फोटो [मूर्त्ति] है सोभी, उपादेय रूपसें ही-माननी, उचित होगी, परंतु ना मुकर जानेमें-तुमकोभी, बहुत प्रकारका-शोचही, करना पडेगा,

ढूंढक—मूर्त्तिकोतो हम-मूर्त्ति, मानते ही है, ना कौन पाडता है ? ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई ढूंढक-में-तेरेको-पुछता हुं क्या, और तूं-उत्तर देता है क्या, में तेरेको यह पुछता हुं कि-जो अपना परम उपादेयरूप-तीर्थंकरादिक संबंधीकी-मूर्त्ति है, सो तूं-परम उपादेयके स्वरूपसें, मानता है कि नहीं, इतने मात्रका-उत्तर, हमको दिखादे ॥

ढूंढक—वाहरे मूर्त्तिपूजक भाई वाह, क्या-उपादेय वस्तुकी पथ्थर आदिकी आकृति [मूर्त्ति] भी,उपादेय रूपही, मानलेनी ? ॥

मूर्तिपूजक—हा भाई ढूंढक हा, हमतो-तीर्थंकरादिक परम उपादेय वस्तुकी, मूर्त्तिकोभी-परम उपादेय रूपही, मानते है । जो तुमभी-उपादेय वस्तुकी, आकृतिको-उपादेय रूपसें, न मानोगे तो-किसीके आगे, बात करने जोगेभी न रहोंगे । देखो प्रथम सामान्य मात्रसें, हमने-दिखाया हुवा, त्रणें पार्वतीकी-मूर्त्तिका

विचारसें, उपादेयकी-मूर्त्ति हैसो, उपादेयपणे-सिद्ध होती है या नहीं ? पिछे-परमोपदेय तीर्थंकरोंकी मूर्त्ति है सो, परमोपादेय रूप, अपने आप-सिद्ध, हो जायगी ॥

देखोकि—शिवका भक्त थासो तो, अपना-उपादेय संबंधिनी, शिव पार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, देखतेकी साथ, परम प्रीति को धारण करता हुवा-बडा हर्षित हुवा था ॥

और काम विकारसें भरी हुई-हेय वस्तु संबंधिनी, वेश्या पार्वतीकी-मूर्त्तिको, देखके-बडा दिलगिर हुवा था ॥

और मुख उपर पट्टीवाली, ढूंढनी पार्वतीजीकी-ज्ञेय वस्तु संबंधिनी-मूर्त्तिको, देखके, नतो-हर्षित हुवा था, और नतो-दिलगिरभी हुवा था, मात्र नवीन प्रकारका स्वरूपकी-आकृति, समजता हुवा, टगटगपणे-देखता ही रहाथा ॥

॥ अब दूसरा-कामी पुरुपथा सो, शिवपार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, देखके, और ढूंढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, देखके, मात्र ज्ञेय वस्तु रूपका-स्वरूपको जानके, नतो-हर्षित हुवाथा, और नतो-कुछ दिलगीरभी हुवाथा, परंतु काम विकारकी-पेटीरूप, वेश्या पार्वतीकी-मूर्त्तिको, देखके, और अपना-उपादेय वस्तु संबंधिनी, जानके, परम प्रीतिकी साथ, अंग प्रत्यंगको वारंवार देखता हुवा, और अपना शरीरकी रोम राजिको-विकश्वर, करता हुवा, कितनीक देरतक, देखनेमें मसगूलही बन रहाथा, क्योंकि-उस कामी पुरुषको, जो कुछ-उपादेय वस्तुथी सोतो, एक वेश्या पार्वतीहीथी । इस वास्ते उनकी-मूर्त्तिको, देखके भी, उसमें ही उनको मग्नरूप होना युक्ति युक्त ही था ॥ परंतु हे ढूंढक भाई !

अब तेरेको ही हम पुछते हैं कि, एकतो है-शिव पार्वतिजीकी

मूर्त्ति । और दूसरी है वेश्या पार्वतीकी-मूर्त्ति । और तीसरी है ढूंढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्ति । यह तीन स्वरूपकी, तीन मूर्त्ति में सें, तेरा हृदयमें-१ हेय । २ ज्ञेय । और ३ उपादेयका विषयरूपसें, विशेषपणे-बोधका, कारणरूपे, कोई भी-मूर्त्ति, है या नहीं ? प्रथम ही इसमें विचार करकि-वेश्या पार्वतीकी मूर्त्ति तुल्य, ढूंढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, मानना, यहतो कभी भी उचित न-गीना जायगा । जो कभी विशेषपणे सें राहित, केवल ज्ञेय स्वरूपसें, ढूंढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, कहोंगे, तब तो-जैसें ढूंढनी पार्वतीजीकी मूर्त्तिको, खिचवा के-घरमें रखते हो, तैसें ही शिव पार्वतीजीकी मूर्तिभी खिचवा के तुमेरे ढूंढकों को-घरमें रखनी ही चाहिये, सो शिव पार्वतीजीकी-मूर्त्तिको, खिचवाके-घरमें, क्यों नहीं रखते हो ?

ढूंढक—हे भाई मूर्तिपूजक-तूं बडा भोला है, हमने ढूंढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्तियां, खिचवा के-घरमें रखियां है, सो तेरी बात सत्य है, परंतु उस मूर्त्तियां सें, कोइ कार्यकी सिद्धि होती है, ऐसा नहीं मानते है ।

मूर्त्तिपूजक—हे भाई ढूंढक-ढूंढनी पार्वतीजीकी-मूर्त्तियांसें, तूं किस कार्यकी सिद्धि, करना चाहता है ? इस बातमें तूं विशेषपणे, इतना मात्रही कहसकेगा कि-उपदेशकी प्राप्तिरूप-कार्यकी सिद्धि, हमारी नहीं होती है । इनके शिवाय दूसरा विशेषमें कुछ भी न कह सकेगा, परंतु दूर देशमें रहे हुये-ढूंढकोंको, इस-मूर्त्तियांका दर्शनसें, ढूंढनी पार्वतीजीका स्वरूपकी-स्मृति, होती है या नहीं ? और उनकेबाद, जो ढूंढनीजीके-भक्त बने हुये है, उनोंको कुछ-प्रीति, अप्रीति, करानेमें वह-मूर्त्तियां, निमित्तभूत, है या नहीं? इसमें जो तेरा विचार हो सो, हमको बतलादे ॥

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक-वारंवार ऐसा क्या पुछता है, देख-मूर्त्तियांमें, नतो कोई-प्रीति रही है, और नतो कोई-अप्रीति भी रही है, सोतो अपना आत्मामेंही रही हुई है, किसवास्ते ऐसी भ्रमितपणेकी वार्ता हमको सुनावता है ?॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई ढूंढक-तेंरा कहना यह सत्य है, परंतु उस-प्रीति अप्रीति होनेमें तुमको, ढूंढनीजीकी-मूर्त्ति, कुछ कारण रूप, होती है या नहीं ? इतना मात्रही में तेरेको पुछता हुं। जो तूं कहेगाकि-हमको प्रीतिअप्रीति उत्पन्न होनेमें-मूर्त्ति, कारणरूपे कुछभी नहीं है,तो पिछे हम-पुछते है कि-काठीयावाड देशका-लिंमडी सेहरमें, संवत् १९४७ का-वैशाख मासमें, पूज्यश्री-गोपाल ऋषजी, अचानकपणे देहांत हुयेवाद, हाजारभक्त सेवकोने, मृतक शरीरको पट्टेउपर विठाके, और नीचेके भागमें-त्रण जीवते साधु-को विठायके, उनका-फोटो ग्राफ, किसवास्ते खिचवाया ?। और पंजावी ढूंढक श्रावकोने-जीवते हुये ढूंढक-सोहनलाल आदि साधुओंका। और ढूंढनी पार्वतीजी आदि साध्वीयांका। और दक्षिण अहमदनगरमें-चंपालाल आदि, ढूंढक साधुओंका। और आगरा सेहरमें-पचीस त्रीसेक श्रावकोंकी साथमें वैठे हुये-पांच सात साधुओंका। इत्यादिक अनेक स्थलोंमें-ढूंढक श्रावकोंने, अपना अपना मान्याहुवा-गुरुरूप ढूंढक साधुओंका, और ढूंढनी साध्वीयांका, फोटोग्राफ, किसवास्ते खिचवाया ? और हमने यहभी सुना हैकि कोइ कोइ अधिक भक्तोंने तो, अपने तालेजिंदेमेंभी कवज करके रखे है, सो किसवास्ते करते है ? उनका कारण तूं ही दिखलाव ? हमनेतो इस लेखसें, सिद्ध करके ही दिखलाया है कि-जो उपादेय वस्तुकी-मूर्त्तिहै, सो मूर्त्ति, तुमकोभी-प्रीति विशेषका, कारण हीहै। इसीवास्ते तुमलोको-ढूंढक साधु, साध्वीयांका-फोटोग्राफ, खिच-

वायके, अपने ताले जिंदेमें-कबजकरके रखतेहो, और इस लेखसें-यहभी सिद्ध हुवाकि, ढूंढक ढूंढनीजीने-स्थापना निक्षेपको, जो निरर्थकरूप-ठहराया है सोभी जूठे जूठ ही लिखमारा है। अगर जो तुम ढूंढको उपादेय रूप, वस्तुकी-मूर्त्तिको, उपादेय के स्वरूपसें, न मानोंगे तो जैन धर्मका द्वेषीमें सें-कोइक बदमास, ढूंढनी साध्वी जीकी-मूर्त्तिके, साथ-कुचेष्टा करता हुवा पुरुषकी मूर्त्तिको। और ढूंढक साधुकी मूर्त्तिके साथ-किसी रंडीकी मूर्त्तिको। वे अदबसें खिंचवायके, अनेक प्रकारकी अपभ्राजना करता हुवा भी, तुमको कुछ भी बोलनेको न देवेगा, परंतु मूर्त्तिको भी-उपादेयपणे, माननें वाले हम-उस बदमासको, हठासकेंगें, और ऐसे अत्याचार करने वालेको, हठानेकी, हमको भी जरुर ही है, नही तो तमासा देखनेवाले लोको भी वेठे हुये ही है। तो अब विचार करोंकि-तीर्थकरोंकी अपेक्षासें, आज कालके-तुछ पात्ररूप, साधुओंकी-मूर्त्तियां भी, उपादेयपणे अंगीकार करके ही, बदमास लोकोंको--हम हटासकेंगे, तो पिछे हमारा--परमप्रिय, परमपूज्य, परमोपदेश दाता, शासनके नायकरूप, तीर्थंकरोंकी-मूर्त्तियांको, निरर्थकरूप मानके, हम ही जैन कुलमें-अंगारापरू, बने हुये, अवज्ञा करनेवाले, तीर्थंकरोंके भक्त, कैसें बनेंगे ? इस बातका विचार, तीर्थंकरोंके-भक्तोंको तो, अवश्य करनेके, योग्य ही है, बाकी रहे जो-महा मिथ्या दृष्टि, और दुर्भवी, अथवा अभवी, उनोंकी पाससें हम कुछ भी विचार नहीं करा सकते है ॥

और देखोंकि-सिद्धांत कारोंने तो, सर्व वस्तुका-स्थापना निक्षेपको, अपना अपना स्वरूपका-पिछान करानेमें, कारणरूप, मानके-सार्थक, और कार्यकी सिद्धिमें, उपयोगवाला हीमाना है, तो पिछे तीर्थंकरोंका-स्थापना निक्षेप, निरर्थक हीहै, ऐसा ढूंढनी-कैसें-

लिखती है ? और यही ढूंढनी पार्वती, दूसरी साधारण वस्तुका-स्थापना निक्षेपको, सार्थक, और कार्यकी सिद्धिमें उपयोगवाला-भी, जैन सूत्रोंका-मूल पाठसें ही, लिखके दिखाती है, परंतु विपरीतमति हो जानेसें-कुछ विचारही, नहीं कर सकी है ॥

देखो-सत्यार्थ पृष्ठ ७३ । ७४ में-यथा--सूत्र उवाईजीमें-पूर्णभद्र यक्षके, यक्षायतन, अर्थात्-मंदिर, मूर्त्तिका, और उसकी-पूजाका, पूजाके फलका-धन, संपदादिकी, प्राप्ति होवा, इत्यादि भलीभांत सविस्तार-वर्णन-चला है ॥

और अंतगढ सूत्रमें-मोगर पाणी, यक्षके-मंदिर, मूर्त्तिका । हरण गमेषी देवकी-मूर्त्तिपूजाका ॥ और विपाक सूत्रमें-उंबर यक्षकी-मूर्त्ति, मंदिरका, और उसकी पूजाका फल-पुत्रादिका होना, सविस्तार पूर्वोक्त वर्णन चला है ॥ पृष्ठ. ७४ओ ७से-हे भव्य इस पूर्वोक्त कथनका-तात्पर्य यह है कि, वह जो सूत्रोंमें नगरियांके-वर्णनके आदमें, पूर्णभद्रादि यक्षोंके-मंदिर चलेहैं सो,वह यक्षादि सरागी देव होते हैं, और वालि वाकुल आदिककी इछा भी रखते है, और राग द्वेषके प्रयोगसें अपनी-मूर्त्तिकी पूजाऽपूजा देखके-वर, शराप भी-देतेहै ताते हरएक नगरकी-रक्षारूप, नगरके वाहर इनके-मंदिर हमेशांसे चले आतेहै, संसारिक स्वार्थ होनेसें. ॥

पाठकवर्ग ! अब इसमें विचार किजीयेकि-प्रथम यही ढूंढनीजी अपनी थोथीपोथीमें-नामनिक्षेप, स्थापना निक्षेप, और द्रव्य निक्षेप, । यह तीनों निक्षेपोंको—निरर्थक, और कार्य साधक नहीं, वैसा वारंवारं लिखके-पत्रेके पत्रे, भरती चली आई । और यह पूर्वोक्त सूत्रपाठका विचारसें-स्थापना निक्षेपका विषयरूप, यक्षादिकोंके-पथ्थरकी आकृतिरूपसें, अर्थात् मूर्त्तिके स्वरूपसें, उनके

ढूंढकोंको धनपुत्रादिक कार्यकी सिद्धिभी दिखला देती है ॥ तो अब विचार करोकि-यक्षादिक व्यंतरोंका स्थापना निक्षेपसें बनी हुई पथ्थरकी मूर्त्ति, सार्थकरूप हुई कि, निरर्थकरूप ? ढूंढनीजी तो केवल वीतरागी मूर्त्तिसें-द्वेष धारण करके, अपने लेखकाभी पूर्वाऽपरके विचार किये विना, जो मनमें आया सोही-अगडं बगडं लिखके, अपना और भद्रिक श्रावकोंके, धर्मका-नाश करनेकोही, उद्यत हुई है । ते सिवाय दूसरा प्रकारकी सिद्धितो-ढूंढनीजीके लेखमें, कुछभी दिखनेमें नहीं आती है ॥

ढूंढक-हे भाई मूर्तिपूजक, हमारी ढूंढनीजीने स्थापना निक्षेप, कार्य साधक नहीं, ऐसा लिखके जो-निरर्थक ठहराया है सो, तीर्थंकरोंका-१जडरूप पथ्थरकी मूर्त्ति पूजासें-मुक्तिका कार्यकी सिद्धि नहीं, इस अभिप्राय मात्रसें-स्थापनानिक्षेप, निरर्थकरूप लिखा है ॥

मूर्त्तिपूजक-हे भाई ढूंढक, ढूंढनीजीने केवल ऐसा नहीं लिखा है, उसने तो-वीतरागी मूर्त्तिसें द्वेष धारण करके, और अपना लेखमें-पूर्ण भद्रादिक यक्षोंके संबंधी-जडरूप पथ्थरकी मूर्त्तिसें, धन पुत्रादिक-कार्यकी सिद्धिरूप. सिद्धांतके पाठका विचार किये विना-सर्व वस्तुका स्थापनानिक्षेप [मूर्त्ति] को, निरर्थक ठहरायके, तीर्थंकरोंका-स्थापना निक्षेप (मूर्त्ति) भी, सर्वथा प्रकारसें

---

१ जैसें-तीर्थंकरोका-नाम, स्मरण मात्रसें ढूंढनीजी मोक्षको पहुचानेको चाहती है तैसेंही यक्षोका-नाम, स्मरण मात्रसें-धन, पुत्रादिक क्यों नहीं दिवा देती है ? काहेको फल फूलादिकसें, जड पथ्थरकी मूर्त्ति पूजा कराती हुई ढूंढक भाइयांको-अनंत संसारमें गेरती है ? ॥

निरर्थक ठहरानेका, प्रयत्न किया है ॥ देखो सत्यार्थ पृष्ट ८ में यथा-काष्ट, पीतल, पाषाणादिकी-मूर्त्ति, बनाके स्थापना करलीकि यह मेरा-इंद्र है, फिर उसको-वंदे, पूजे, उससें, धन, पुत्र, आदिक मांगे, मेला, महोत्सव करें। परंतु वह जड-कुछ जाने नहीं, ताते शून्य है। अज्ञानताके कारण उसें-इंद्र, मानलेते है। परंतु वह-इंद्र नहीं, अर्थात्-कार्यसाधक नहीं ॥

इस प्रकारसें ढूंढनीजी-प्रथम इंद्रकी मूर्त्तिको, निरर्थक-ठ-रायके, पिछे-पृष्ट १९-१६ में-ऋषभ देवजीकी-मूर्त्तिको, जडपणा दिखलायके निरर्थकपणा, दिखलाया है ॥

और-७३।७४ में-पूर्ण भद्रादिक यक्षोंके-पथ्थरकी मूर्त्तिसें, ढूंढक श्रावकोको-धन, पुत्रादिककी, प्राप्ति कराती हुई-स्थापना निक्षेपको, सार्थकरूप-करके, दिखलाती है। तो अब ढूंढनीजीको तीर्थंकरोंकी भक्तानी समजनी, कि, यक्षोंकी ? उनका विचार वाचक वर्ग ही करें ? ॥

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक-जब पूर्ण भद्रादिक यक्षोंकी-पथ्थरसें बनी हुई, जडरूप मूर्त्तिकी पूजासें-धन, पुत्रादिककी, प्राप्ति होनेसें-सार्थकपणा है, तब तो-इंद्रादिकोंकी पाषाणादिकसें बनी हुई, जडरूप-मूर्त्तिकी पूजासें भी, अवश्य ही-कार्य सिद्ध होनाचाहिये, क्योंकि-सरागीपणा जैसा पूर्ण भद्रादिक यक्षोंमें है, तैसा ही सरागीपणा-इंद्रमें भी है, तो पिछे हमारी ढूंढनीजीने-इंद्रकी मूर्त्तिको-जडरूप, कहकर, और निरर्थकपणा ठहराय करके, सर्व वस्तुका-स्थापना निक्षेप, निरर्थकरूपसें, क्यौं ठहराया होगा ? सो कुछ मेरी समजमें-आया नहीं है ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई ढूंढक-ढूंढनीजीने तो वीतरागी मूर्त्तिसें-

द्वेषभाव करके, अपना लेखका भी पूर्वाऽपरके विचार किये विनां, जो मनमें आया सो ही–लिख मारा है। परंतु हेय १। ज्ञेय २। और उपादेय ३। के स्वरूपसें, पूर्वमें दिखाई हुई हमारी युक्तिके प्रमाणसें–जैन सिद्धांतकारोंके मंतव्य मुजब, स्थापनानिक्षेप–निरर्थक रूपका नहीं है, सो तो अपनी अपनी वस्तु स्वभावका–तादृश बोधको कराता हुवा, आत्माको ते ते वस्तुओंका गुणोंकी तरफ, विशेषपणे ही लक्ष कराता है

इस विषयमें–प्रमाण देखो–सत्यार्थ पृष्ट. ३५ में–ढूंढनी ही लिखती है कि–हां हां सुननेकी अपेक्षा (निसवत) आकार (नकसा) देखनेसें–ज्यादा, और जल्दी, समज–आती है, यह तो–हम भी मानते है।

अब ढूंढनीजीका–इस लेखसें, विचार करनेका यह है कि–जब मूर्त्तिपूजनमें, कुछ विशेष ही नहीं था, तब तो पूर्ण भद्रादिक यक्षोंका–नाम स्मरण मात्रसें ही, ढूंढकोंको–धन, पुत्रादिककी प्राप्ति, ढूंढनीजी—करा देती, किस वास्ते यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंकी मूर्त्तिका पूजनमें–आरंभ, कराती हुई–धन, पुत्रादिक, प्राप्ति होनेका–लिखके, दिखाती है ?

और यह भी विचार करो कि ढूंढनीजीका ही लेखसें, मूर्त्तिको–वंदना, नमस्कारादि—करनेका, सिद्ध होता है कि नही ?

अगर जो यक्षादिकोंकी जड स्वरूप मूर्त्तिको–वंदना, नमस्कारादिक, न करावेगी–तो पिछे, ढूंढकोंको–धन, पुत्रादिककी–प्राप्ति भी किस प्रकारसें करादेवेगी ?

जब ढूंढनीजी–यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंकी–मूर्त्तिका, आरंभवाला पूजन, और वंदना, नमस्कारादिक–करानेको उद्यत हुई है,

तो पिछे, जिनेश्वर देवकी मूर्त्तिके-भक्तोंको, सत्यार्थ पृष्ट. १७ में-जड पूजक, पणेका, जूठा विशेषण-क्यौं देती है ? क्यौं कि, ढूंढनी ही-यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंकी, पाषाणादिकसें वनी हुई-जडरूप मूर्त्तिका पूजन, कराती हुई, वेसक जड पूजक पणेका-विशेषणके लायक, हो सकती है। परंतु हम जिन मूर्त्तिके भक्त-इस विशेषणके योग्य, कैसें हो सकते है ? ॥

और सत्यार्थ-पृष्ट ६७ में-ढूंढनीजीने लिखा है कि पथ्थरकी मूर्त्तिको धरके, श्रुति लगानी नहीं चाहिये।

इस लेखसें विचार यह आता है कि वह यक्षादिक देवोंकी मूर्त्ति भी पथ्थरसें ही वनी हुई होती है, और उस मूर्त्तियांकी पूजासें, ढूंढनीजीने--धन पुत्रादिक प्राप्ति होनेका भी दिखाया है, जवतक ढूंढनीजी भोंदू ढूंढकोंकी पाससें उस मूर्त्तियांमें-श्रुति मात्र भी लगानेको न देवेगी, तवतक-धन, पुत्रादिक, वस्तुकी प्राप्ति भी किस प्रकारसें करा सकेगी ? ॥

फिर पृष्ट ५७ में-लिखता है कि-उसको [अर्थात् मूर्त्तिको] हम भी भगवान्का आकार कहदें, परंतु-वंदना, नमस्कार तो नहीं करें। और लड्डु पेंडे तो अगाडी नहीं धरें ॥

इस लेखसें भी विचार करनेका यह है कि-अदृश्य स्वरूपके जो यक्षादिक देवताओ है, उनोंकी कल्पित पथ्थरकी मूर्त्तियांको वंदना, नमस्कार, करना और लड्डु पेंडे भी चढानेका हमारे ढूंढक भाईयांको सिद्ध करके दिखलाती है, और परम ध्यानमें लीनरूप तीर्थंकरोंका साक्षात् स्वरूपका आकारको-वंदनादिक करनेका भी, ना पाडती हैं तो क्या तीर्थंकरों के धर्मका सनातपणा इसी प्रकारसें चला आता है ? ॥

और सत्यार्थ पृष्ट ३६ में-ढूंढनीजी लिखती है कि-उस आकार [नकसे] को-वंदना, नमस्कार, करना यह मतवाल तुम्हें किसने पीलादी ॥

यह जो लिखा है सो भी यक्षादिक मिथ्यात्वी देवोंका भयंकर आकार को-वंदना, नमस्कार, और आरंभवाला पूजनसें-धन, पुत्रादिककी, प्राप्ति करानेको उद्यत हुई, यह ढूंढनी ही-मतवाल पीलाने वाली सिद्ध होगी के-जिनेश्वर देवका आकारकी भक्तिको दिखाने वाले, सिद्ध होंगे ?

उसका विचार तो-जैन धर्मका अभिलापियांको ही करनेका है ! अब इस दिग् मात्रका लेखसें ख्याल करनेका यह है कि-मूर्त्ति मात्रको निरर्थक ठहरानेके लिये ढूंढनीजीने जो जो कुतर्कों किई है सो सो-हेय १, ज्ञेय २, और उपादेय ३ । वस्तुओंकी मूर्त्तियांको विशेषपणेका विभागको समजे विना, अगडं वगडं लिखके, भोले जीवोंको वीतरागी मूर्त्तिकी भक्तिसे-भ्रष्ट करनेको, जूठका पुंज भेगा किया है परंतु जैन सिद्धांतकारोंकी शैलीका अनुकरण किंचित् मात्र भी किया हुवा नहीं है ।

और हम वीतराग देवकानिर्मल सिद्धांतोके लेखसें, विचार करके देखते है तवतोयही मालूम होता हैकि-अपना अपना उपादेय वस्तुका, जो-नाम निक्षेप है, उसेंभी उसका-स्थापना निक्षेप (मूर्त्ति) है सो, सारी आलम दूनीयांका विशेषपणे ही-ध्यान खेंच रही है, और उस प्रमाणे दूनीयाको वर्त्तन करती हुईभी प्रगटपणे देखते है । मात्र मूढताको धारण करके-कोई कोई समाज, मुखसे-ही ना मुकर जाता है । परंतु विचारशील समाज है सो तो-हेय १ । ज्ञेय २। और उपादेय ३की । वस्तुके स्वरूपसें-नामनिक्षेपको,

और स्थापना निक्षेपकोभी, योग्यता मुजब--आदर, और सत्कार ही कर रहा है। परंतु मूढताको प्रगट नहीं करता है। यही विशेष पणा दिख रहा है।

॥ फिर भी देखो-सत्यार्थ-पृष्ट. १३२ ओ. १२ सें-ढूंढनीजी लिखती है कि-भगवती शतक १२ मा, उद्देशा २ में-जयंती समणो पासका, अपनी भौजाई मृगावतींसें कहती भई कि—महावीर स्वामीजीका—नाम, गोत्र, सुणनेसे ही—महाफल है। तो प्रत्यक्ष सेवा भक्ति करनेका जो फल है सो-क्या वर्णन करुं। और भी पाठ ऐसें वहुत जगह आता है॥

ढूंढनीजीका इस लेखसें, ख्याल करनेका यह है कि—नाम-और गोत्र, एक प्रकारका होके भी-अनेक पुरुषोंमें, दाखल हुयेलो देखनेमें आता है, तो भी भगवानके साथ संवंधवाला—नाम, और गोत्र, जडरूप अक्षरोंके आकारका, दूसरेके मुखसें प्रकाशमान हुयेला, श्रवणद्वारा—सुनने मात्रसें, भक्त जनोंको—महाफलको प्राप्त करता है। ऐसा जैन सिद्धांतोसें सिद्ध है। तो पीछे वीतराग देवके ही सदृश्य, और अन्य वस्तुओंसें अमिलित, ऐसी अलोकिक—वीतरागी मूर्त्तिको, नेत्रोंसे साक्षातपणे देखते हुये, हमारे ढूंढकभाईयांको—आल्हादितपणा क्यौं नही होता है ? क्या तीर्थंकरोंकी भक्तिभावका वीज, उनोंके हृदयमेंसें-नष्ट हो गया है ?।

क्यौंकि जो तीर्थंकरोंके-भक्त होंगे, सोही तीर्थंकरोके साथ संवंध वाला—नाम, और गोत्र रूप अक्षरोंको, कर्णद्वारा श्रवण करनेसेंअल्हादित हो केही, महा फलको प्राप्त करलेवेगा। तो पीछे नेत्र द्वारा—तादृश भगवान्की भव्य मूर्त्तिका, दर्शनको करता हुवा, सोभव्यात्माभक्त—आल्हादित होके, महाफलकी प्राप्ति क्यों न कर ले-

वेगा ? । क्यों कि-नामसें भी, मूर्त्ति है सो-विशेषपणे ही बोधको प्राप्त करानेवाली, सिद्ध हो चुकी है ॥

देखो सत्यार्थ—पृष्ट. ३९ में—ढूंढनीजी भी लिखती ही है कि—हां हां सुननेकी अपेक्षा (निसबत) आकार [नकसा] देखनेसें-ज्यादा, और जल्दी, समज आती है । यह तो हम भी मानते है ॥

तो अब-नामसें भी विशेषपणे बोधको कराने वाली, वीतरागी मूर्त्तिको देखनेसें--आल्हादित न होना, सो तो कर्मकी बहूलता के सिवाय, दूसरा विशेषपणा क्या समजना ? ।

इस वास्ते वीतराग देवके भक्तोंको विचार करनेकी भलामण विशेषपणे ही करता हुं ॥

फिर भी देखोकि-हमारे ढूंढक साधुओं, और साध्वीयां, मर्यादाको छोड करके अपनी मूर्त्तियां (अर्थात् काली स्याहीका फोटो) खिचवाते है, और अपने २ भक्तोंको दर्शन के लिये अर्पण भी करते है, तोपिछें जिस अरिहंतका--नाम, रात और दिन, ले ले के-वंदना, नमस्कार, करते है, उनकी परम पवित्र मूर्त्तिको-वंदना, नमस्कार, क्यौं नही करना ? । अपितु अवश्यमेव करनेके योग्य ही है ॥

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक देख सत्यार्थ पृ. ५० सें-५१ तक—हमारी ढूंढनीजीने लिखा है कि—पार्श्व नामसें—गाली, देतो, हमे कुछ द्वेष नहीं, तुम्हारा पार्श्व अवतार ऐसें कहके गाली देतो, द्वेष आवे, ताते वह-नामभी, भावमें हीहै। उसमें दृष्टांत यह दियाहैकि—राजाके पुत्रका नाम, इंद्रजित् है, तैसेंही धोबीके पुत्रका नामभी, इंद्रजित् है, सो धोबीका पुत्र मर गया, वह धोबी

हाय २ इंद्रजित्, हाय इंद्रजित्, कहकें रोता है, परंतु राजाने-बुरा, नहीं माना । ताते—नामतो, गुणा कर्षणही होता है, सो—भाव निक्षेपमें ही है ॥

मूर्त्तिपूजक—हे भाई ढूंढक, थोडासा ख्याल करके देखकि-जो -नाम, अनेक वस्तुओंके साथ संबंधवाला होजाता है, उस नामके-- दो चार अक्षर मात्रमें तो, ढूंढनोजीको साक्षात् पणे—तीर्थंकर भगवान्, दिख पडता है। और वह-दो चार अक्षर मात्रको, अपना मुखसें उच्चारण करने मात्रसें-वंदना, नमस्कारादिक भी, करना मानती है तो पिछे-नामसें भी, विशेप पणे बोधको करानेवाली-वीतरागी मूर्त्तिमें, तीर्थंकर भगवान्, हमारे ढूंढक भाईयांको-किस कारणसें नहि दिखता है ? क्यों कि जो मिथ्यात्वी लोको है सो भी, तीर्थंकरोंके-नामको सुननेसें, तीर्थंकरोंकी-मूर्त्तिको देखनेसें, विशेषपणे ही तीर्थंकरोंका-बोधको, प्राप्त होते है । तो पिछे हमारा ढूंढक भाईयांको, तीर्थंकरोंकी-अलोकिक मूर्त्तिको देखनेसे भी, तीर्थंकरोंका बोध नहीं होता है, इसमें क्या कारण समजना ? उसका विचार करनेका तो-वाचक वर्गको ही दे देता हुं ॥

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक, हमलोक-ढूंढक साधुओंकी, और साध्वीयांकी-मूर्त्तियांको, खिचवायके घरमें रखते है, यह बात तेरी सत्य है, परंतु उस मूर्त्तियांको-वंदना, नस्कार तो-कभीभी नहीं करते है, तो पिछे-ऋषभादिक, तीर्थंकरोंकी-मूर्त्तियांको, वंदना, नमस्कार, किस प्रकारसे करें ?

मूर्त्तिपूजक-हे भाई ढूंढक-जिस २ ढूंढक साधुको, जिस २ ढूंढक श्रावकोंने-अपना २ गुरुपणे मान लिया है, सो सो ढूंढक

श्रावक, दूर देशमें रहा हुवा, अपना २ गुरुका-नामको, स्मरण करता हुवा, वंदना, नमस्कार, करेगा या नहि ?

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक-जिस ढूंढक साधुको, गुरु करके मान लिया, उनका-नाम, स्मरण करके, वंदना, नमस्कार, नहीं करें तो पिछे किसका नाम लेके-वंदना, नमस्कार, करना ?

मूर्त्तिपूजक—हे भाई ढूंढक, जिस गुरुको तूंने मान्य किया है, उस नामके-अनेक पुरुष होते है, और ते नामके अक्षरोंमे तो-तेरा मान्य किया हुवा गुरुका, चिन्ह तो, कोइ प्रकारका भी दिखता नही है, सो-नामका, उच्चारण मात्र करनेसें ही तूने वंदना नमस्कार करनेका भी कवुल कर लिया, और उसी ही गुरुका स्वरूपको-साक्षातपणे बोध, करानेवाली-मूर्त्ति है,उसको वंदना नमस्कार करनेका भी ना पाडता है,सो किस प्रकारका तेरा विवेक समजना? अथवा किस प्रकारकी धिठाइ समजनी ?

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक हमारे ढूंढक गुरुजीने ऐसा फरमाया है कि गुरुजीका नाम देके तो,वंदना, नमस्कार, करना। परंतु उनकी मूर्त्तिको वंदना नमस्कार नही करना।क्यौं कि-नाम तो, गुणाकर्षण ही होता है, सो भाव निक्षेपमें ही है, ऐसा पृष्ट. ९१ में हमारी ढूंढनी पार्वती साध्वीजीने लिखा है। इस वास्ते गुरुजीका नाम देके-वंदना, नमस्कार, करते है, परंतु उनकी मूर्त्तिको देखके किस प्रकारसें करें ?

मूर्त्तिपूजक—हे भाई ढूंढक, इसमें थोडासा-विचार करके,जो नाम, अनेक वस्तुओंके साथ संबंध वाला हो के, पिछेसें ते-नाम, तेरा मान्य किया हुवा-गुरुके साथ, संबंध वाला हुवा है । जैसें कि-चंपालाल, सोहनलाल, आदि। अथवा-पार्वती, जीवी, आ-

दि। उस नाम मात्र-के दो चार अक्षर में तो, तेरा गुरुजीका साक्षात् स्वरूपवाला-भाव निक्षेप, गुसड गया, जिससें तूं-वंदना, नमस्कार, करनेको लग गया।

और जो तेरा गुरुजीका ही साक्षात् स्वरूपको-बोध करानेवाली, तेरा ही गुरुजीकी-मूर्त्ति है, उसमेंसें तेरा-भाव निक्षेप, कहां चला जाता है ?। जो तूं तेरा ही गुरुजीकी, साक्षात् स्वरूपकी-मूर्त्तिको, वंदना, नमस्कार करनेकी भी-ना पाडता है ?॥

क्योंकि—एक नामके तो, अनेक पुरुष, रहते है, उसमें तो गफलत, होनेका भी-संभव, रहता है। परंतु साक्षात् स्वरूपकी मूर्त्तिसें तो, इछित पदार्थका-बोधके शिवाय, दूसरी वस्तुकी भ्रांति होनेका भी संभव नहीं है। इस वास्ते विचार कर ? ॥

ढूंढक—हे भाई मूर्त्तिपूजक, तेरा कहना सत्य है कि-जिस वस्तुका—दो चार अक्षरके नाम मात्रको, उच्चारण करके-वंदना, नमस्कार, करते होवें, उनकी मूर्त्तिको, देखके-वंदना, नमस्कार, करना। सो भी-योग्य ही मालूम होता है। इसी वास्ते हमारे समुदायके लोक, ढूंढक गुरुओंकी-मूर्त्तियां, खिचवाते है। परंतु उस मूर्त्तियांपर-पाणी, गेरके, और-फल फूल चढायके, पापके बंधनमें पडना, उसका-विचार तो, तुम लोकोंको ही-करनेका है, हम तो ऐसी-वातको, नहीं चाहते है।

मूर्त्तिपूजक-हे भाई ढूंढक, इहांपर थोडीसी निघा करके देख कि-हम-तीर्थंकर, गणधरादि, महा पुरुषों के, भक्त है। और हमको-उनकेपर, परम विश्वास भी है।

और जो कुछ उनोंने-कहा है, सो हमारा-हित, और कल्याण के वास्ते ही-समजते है। और उनोंके-कहने मुजब ही, कार्य

करणेकी–श्रद्धा, हमेसां रखते है । और उस कार्यमें–विधि सहित प्रवृत्ति होनेसें, हमारा निस्तार होगा, यह भी–निश्चय करके ही, मानते है । इसी वास्ते हम–मूर्त्तिद्वारा, तीर्थंकरोंकी–भक्ति, करते है । सो–जिन मूर्त्तिका पूजन, जैन सिद्धांतोंमें–जगं जगं पर, दिखाया हुवा है । अगर जो तूं तेरी–स्वामिनी पार्वतीजीका लेख परसें भी–विचार, करेगा, तो भी तेरा हृदय नयनको–बडा प्रकाश हो, दिख पडेगा । तेरी स्वामिनीजी को–विपरीत विचारमें, कुछ समज–नहीं पडी है । इसी वास्ते ही–अगडं बगडं, लिखके दिखाया है । परंतु जो में–तेरेको फिर भी आगेको, सूचनाओ करके दिखाता हुं, उस तरफ ख्याल पूर्वक–विचार करेगा, तब तो वीतराग देवका–सत्यरूप मार्ग, अपने आप–तेरेको हाथ लग जायगा । अगर जो अज्ञताको, धारण करके, हठ पकडके–जायगा, तब तो साक्षात्–सर्व तीर्थंकरो भी, तुमको–न समजा सकेंगे । तो पिछे मेरे जैसेंकी–क्या ताकात है, जो समजा सकेंगे ? तो भी भव्य पुरुषों के–हित के लिये, ते सूचनाओं लिखके, दिखाता हुं, सो अवश्यमेव–लाभदायक होंगी ।

प्रथम देख–सत्यार्थ पृष्ठ. ८ सें–ढूंढनीजीने, लिखाहै कि–काष्ठ, पाषाणादिकी–इंद्रकी मूर्त्ति, बनाके–वंदे, पूजे, धन, पुत्रादिक, मागे । वह–जड, कुछ जाने नहीं, ताते शून्यहै । अर्थात्–कार्य साधक, नहीं । इत्यादि ॥

पुनः पृष्ठ. १९ सें–ऋषभदेव भगवानकी, मूर्त्तिकोभी जडपदार्थ कहकरके पृष्ठ. १६ में निर्थक, ठहराई ॥

परंतु पृष्ठ. ७३ में–पूर्ण भद्रादिक यक्षोंके, पथ्थरकी–मूर्त्तिपूजासें, हमारेभोले ढूंढकभाईओंको धन, पुत्रादिककी–प्राप्तिसें–सार्थकी–

सिद्धिकरनेकी दिखाई। तो अब विचार करोकि-पथ्थरसे बनीहुई, जडस्वरूपकी मूर्त्ति-सार्थक हुईके, निरर्थक ? ॥

हमकोतो-जडस्वभावकी, मूर्त्तिही-बाधकपणे, और-साधकपणे भी, ढूंढनीजीका लेखसेंही, जगें जगें पर-दिख रहीहै। न जानें ढूंढनीजीको, तीर्थंकर भगवानकीही-परमशांत मूर्त्ति, आत्माकी शांतिका साधकपणे, क्यों नहीं दिखलाईदेती है ? जो जडपणा दिखलाके निरर्थक ठहराती है ?॥

देखो प्रथम, मूर्त्तिसें-बाधकपणा, सत्यार्थ पृष्ठ. ३४ में-ढूंढनीजीने, लिखाहै कि-स्त्रीकी मूर्त्तियां-देखके, सर्वकामियोंका-काम, जागता होगा ॥ विचार करोकि-यह जडस्वरूपकी-मूर्त्तियां, कामी पुरुषोंका-मनको विकार उत्पन्नकरनेसें बाधकरूप, हुई या नहीं ?।

फिर पृष्ठ. ५८ में देखो, ढूंढनीजीने लिखाहैकि—गौकी मूर्त्ति, तोडे तो-घातक दोष, लागे ॥

अब यहभी-जड स्वरूपकी, मूर्त्ति-तोडने वालेका आत्माको बाधकरूपकी, हुई या नहीं हुई ?॥

तर्क—अजीइसीही पृष्ठ में, हमारी स्वामिनीजीने, लिखा हैकि-मूर्त्तिको, तोडनें, फोडनेसें-दोषतो लग जाय। परंतु पूजनेसें-लाभ, न होय। जैसें मिटीकी गौको-पूजनेसें, दुध—न मिले॥ इसीही वास्ते जडरूप इंद्रकी मूर्त्तिपूजनसें-धन, पुत्रादिक, मंगने वालेको, नहीं मिलनेका-दिखलाकेही, आये है॥ उत्तर-हे भाई ढूंढक-तूं, और तेरी स्वामिनीजीभी, सर्वजगेंपर-एकही आंखसें, देखनेका-सिखे हो। परंतु यह हमारा-अंजनकी, सहयतासें, दूसरी-आंखसेंभी, थोडासा ख्याल करके-तुम लोक देखोंगे, तोभी-ठीक ही ठीक, मालूम होजायगा। क्योंकि तेरी स्वामिनीजीने-जड स्वरूपकी मूर्त्तिसें,

केवल-दोषही, होनेका, मान्या है वैसा नहीं है। किंतु—लाभकी प्राप्तिभी, मानी हुई है। इस वास्ते ही हमतुमको-दूसरी आंखसें, देखनेकी भलामण, करते है॥ सो-ख्याल पूर्वक, देखना॥

प्रथम देखो, सत्यार्थ पृष्ठ. ७२ में-पूर्ण भद्रादिक यक्षोंकी, जड स्वरूपकी-मूर्त्तिओंसें, धन, पुत्रादिकका-लाभको, करवाती हुई ढूं-ढनीजी साधकपणाकी सिद्धि करके, दिखलाती हैं या नहीं ?॥

और सत्यार्थ पृष्ठ. ९० सें-द्रौपदीजीकी, जिन प्रतिमाका-पूजनमें, अनेक प्रकारकी जूठी कुतर्कों करके, पृष्ठ. ९८ में-स्वमति कल्पनासें वरका लाभके वास्ते, कामदेवकी-मूर्त्तिपूजाको, दिखलाती हुई, यह ढूंढनीजी-जड स्वरूपकी, मूर्त्तिको, वर प्राप्तिका साधकरूप, ठहराती है या नहीं ?

फिर देखो पृष्ठ. ४० में-वज्र करण राजाने, अंगूठीमें-त्राग्रुपूज्य, तीर्थंकरकी मूर्त्तिको, रखीथी। उस मूर्त्तिसें-लाभ, यह साधकपणा, या हानि, यह बोधकपणा, दोनोंमेंसें-एक तो, ढूंढनीजीको भी-मान्य ही, करना पडेगा। जैनोंने तो-लाभ के वास्ते ही, मानी हुई है॥

फिर देखो पृष्ठ. २९ में-मल्लदिन कुमारने, मल्लि-कुमारीकी-मूर्त्तिको, देखके—लज्जा पाई, अदब उठाया, चित्रकारके पर—क्रोध, किया॥

इहां परभी-जड स्वरूपकी मूर्त्तिसें, लाभ, और हानि, दोनों भी-ढूंढनीजीको भी, माननी ही पडेगी।

फिर देखो पृष्ठ. ४२ में-मित्रकी मूर्त्तिसें, प्रेम, जागता है। लडपडे तो, उसी ही मूर्त्तिसें-क्रोध, जागता है॥

इहां परभी, जड स्वरूपकी मूर्त्तिसें-लाभ, या हानि, ढूंढनीजीको भी-माननी ही, पडेगी॥

अब पृष्ट. १२४ सें–कयवलि कम्मा, के पाठसें, जिन प्र-तिमाका पूजन-दररोज, करनेका, वीर भगवानके परम श्रावकोंका-हित, और–कल्याण, होनेके वास्ते, जैन सिद्धांतकारोंने, जगें जगें-पर–लिखा है।

उस विषयमें, पृष्ट. १२६ में—टीकाकार, टब्बाकार, सर्व जै-नाचार्योंको-निंदती हुई, ढूंढनीजी—ते परम श्रावकोंकी–पाससें, मिथ्यात्वी-पितर, दादेयां, भूतादिकोंकी-जड स्वरूपकी, मूर्त्तिका पूजन, दररोज, न जाने–किस लाभके वास्ते, कराती है इसवातका खुलासा ढूंढनीने लिखा हुवा नहीं है, सो ढूंढनीजीकोही, पुछ लेना॥

ऐसें जगें जगें पर लाभकी प्राप्तिसें—साधकपणा, और हा-निसें-बाधकपणा, गपड सपड लिखके, दिखाती है। तोभी सत्या-र्थ पृष्ट. ९ में—दोनों निक्षेप, अवस्तु, कल्पना रूप-लिखती है। तो क्या यहसब, अपना हाथसे-लिखी हुई, अनेक प्रकारकी मूर्त्ति-यां, अनेक प्रकार का–कार्यमें, साधक बाधक स्वरूपकी ढूंढनीजीको दिखलाई दिई नहीं, जो-कल्पना स्वरूपकी ही, ठहराती है?

फिर–सत्यार्थ पृष्ट. ६१ सें-देखो, ढूंढनीजीने यह लिखा है कि-हमने भी-बडे बडे पंडित, जो विशेषकर भक्ति अंगको, मुख्य रखते है, उन्होंसें सुना है कि-यावत्काल-ज्ञान नहीं, तावत्काल मूर्त्ति पूजन हैं। और–कई जगह, लिखा भी-देखनेमें, आया हैं॥

अब इस लेखसें भी-ख्याल करोकि, तीर्थंकरोंकी भक्ति कर-नेकी, इछा वाले-श्रावकोंको, जिन मूर्त्तिकी-पूजा, जैन के सिद्धां-तोसें सिद्धरूप, है, या नहीं?। जब तीर्थंकरोंके मूर्त्तिकी पूजा, जैनके सिद्धांतोंसें, ढूंढनीजीके लेखसे ही–सिद्धरूप है, तो पिछे सत्यार्थ पृष्ट. १२४ सें कयवलिकम्मा, के पाठमें-जिन मूर्त्तिका अर्थको–छोड करके, पृष्ट. १२६ में टीकाकार, और टब्बाकार सर्व

महा पुरुषोंको-निंदती हुई, यह ढूंढनी, वीर भगवानके-भक्त श्रा-वकोंका, नित्य (अर्थात् दर रोजके) पूजनमें पितर, दादेयां भूता-दिक की प्रतिमा, किस हेतु से पूजाती है ? । क्या वीरभगवानके ते परम श्रावको-मिथ्यात्वी पितर, दादेयां, के भक्तथें कि-तीर्थंकर देवके भक्तथे ? उसका विचार करोगे तब पानी गेरके, और-फल, फूल, चढायके, तीर्थंकर देवकी-भक्ति करनेके वास्ते तीर्थंकरोंकी मूर्त्तिपूजा करनेकी अपने आप सिद्ध हो जायगी । जूठी कुतर्कों करनेसे-क्या सिद्ध होने वाला है ? ॥

फिर भी ख्याल करोकि-द्रौपदीजी, परम श्राविकाने-जिन प्रतिमाका पूजन, फल, फूल, धूप, दीप, आदि सर्व प्रकारसें-वडा विस्तार वाला, किया है । इसी ही वास्तें-शाश्वती जिन प्रतिमा-ओंका, सतर भेदकी-पूजाका विस्तारसें, पूजन करनेवाला, जो समकित दृष्टि-सूर्याभ देवता है, उनकी-उपमा देके, छेवटमें द्रौपदी के, पाठमें-नमुथ्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं. आदि पाटको भी-पढ-नेका, दिखाया है । तो भी-विपरीतार्थको ढूंढने वाली, ढूंढजीने अनेक प्रकारकी जूठी कुतर्कों करके, छे वटमें-कामदेवकी, मूर्त्तिपूजा-का--संभव, दिखाया है ? ॥

परंतु-हे भाई ढूंढक, हम तेरेकोही-सलाह, पुछते है कि-वीर भगवानके, परम श्रावकोंका-नित्य कर्त्तव्यमें, (अर्थात् दररोज के कर्त्तव्यमें) कयबलिकम्मा, के पाठार्थसें टीकाकार, और टब्बा-कार-सर्व महापुरुषोंने, जिनप्रतिमाका-पूजन, करनेका, दिखाया है। और ढूंढनजीने-इसीही-कयबलिकम्मा, के पाठार्थसें पितर, दा-

१ ढूंढक जेठमलने समकितसारमें-पाणीकी कुर लियां, क-रनेका अर्थ किया है परस्परका ढंग तो देखो ॥

देयां, भूतादिक की–प्रतिमाका, पूजन–हररोजके लिये; ते परम श्रा-
वकोंको करनेका–सिद्ध करके, दिखलाया है । इसलेखसें—सिद्ध
होता है कि, श्रावक नामधारी मात्रको भी–हररोजके लिये मूर्त्ति
पूजा, जैन सिद्धांतोसें–सिद्ध रूप ही है । ढूंढनीजीके–कहने मुजब,
चलेगा, तब तो–पितरादिक, मिथ्यात्वी देवोंकी–मूर्त्तिके पर, पाणी
गेरके, और फल फूलादिक चढायके, हररोज–उनोंकी ही पूजा,
तेरेको करनी पडेगी ।

अगर जो टीकाकारोंके–कहने मुजब, जिन मूर्त्तिकी–पूजा,
करनेकी–मान लेवेगा, तब तीर्थंकर भगवान्‌की–भक्तिका, लाभ–उ-
ठावेगा । इस बातमें जो तेरा न्यायमें–आवें, सो ही बात ठीक है॥

हे ढूंढकभाई तूं इसमें, तर्क करेगा कि–धन, पुत्रादिककी–ला-
लचके वास्ते, हम–संसार खातेमें, सब कुछ करते हैं, हमको क्या
विचार करनेका है ? जब तो तेरी बडी ही–भूल, होती है ।

क्यौं कि वीरभगवान्‌के, परम श्रावकोंका–नित्य कर्त्तव्यके
विषयमें ही, यह– कयबलि कम्मा, का पाठ, आता है । उसं-
का—अर्थ, ढूंढनीजीने–जिन मूर्त्तिके बदलेमें, मिथ्यात्वी देवजो–
पितरादिक है, उनकी मूर्त्तिपूजा, करनेकी–दिखलाई है । और–धन,
पुत्रादिकके, वास्ते तो–पूर्णभद्र, मोगरपाणी, आदि यक्षोंकी–पथ्थ-
रकी मूर्त्ति, तुमेरेको पूजनेके वास्ते–अलगरूपसें, दिखाई है ।

इस वास्ते इस बातका–फिकर, कयबलि कम्मा,के पाठमें–
कभी भी, नही समजना । इस बातका ख्याल–हमारे लेखसें, और
ढूंढनीजीके–लेखसें, अछी तरांसें करलेना । हम वारंवार कहांतक
लिखेंगे ? ॥

ख्याल करनेका यह है कि-जो तुम ढूंढको, सनातन मतका दावाकरनेकी—इछा, रखते हो, तब तो वीरभगवान्के—ते उत्तम श्रावकोंकी, दररोजकी करनीके मुजब-मूर्त्तिपूजा, तुमेरे-गलेमें, अवश्य मेव पडेगी ? ।

ढूंढनीजीके-कहने मुजब श्रावक धर्ममें प्रवृत्ति करनेकी इच्छा रखोंगे तब तो, मिथ्यात्वी देव जो-पितरादिक है, उनकी-दररोज सेवा करनेमें, तत्पर होना पडेगा । अगर जो-टीका करोंके, कहने मुजब-अर्थ कबूल करके श्रावक धर्ममें प्रवृत्ति करोंगे, तब-तीर्थंकर देवकी भक्तिका, लाभ दररोज मिलावोंगे । परंतु मूर्त्ति पूजाको अंगीकार किये विना, तुम है सो, कोइ भी प्रकारके-ढंग, घडेमें, नगीने जावोंगे । यह बात तो-ढूंढनीजी के लेखसें भी, चोकसपणे सें-ही सिद्ध, हो चुकी है ॥

और द्रौपदीजीकी-जिन प्रतिमाका पूजनमें, शास्वती-जिन प्रतिमाओंका विस्तारसें पूजन करने वाला, जो समकिती सूर्याभदेव है, उनकी-उपमा, दीई है । और द्रौपदीजीने मूर्त्तिके आगे नमुथ्थुणं, का पाठ भी-पढा हुवा है ।

और टीका कारोंने-जिनेश्वर देवकी, मूर्त्तिका ही-अर्थ, किया हुवा है । तो पिछे ढूंढनीजी-कामदेवकी, मूर्त्तिका-अर्थ, करके, उनके आगे-नमुथ्थुणं,का पाठ-किस प्रमाणसें, पढाती है ? ।

क्योंकि नमुथ्थुणं, के पाठमें तो, केवल वीतराग देवकी ही-स्तुति है, कुछ-कामदेवकी-स्तुति, नहीं है । जो ढूंढनीजीकी कुतर्क, मान्य हो जायगी ? । इस वास्ते-पाणी, गेरके, और-फल, फूल, चढापके भी, जो-श्रावक के विषयमें, मूर्त्तिपूजाका सिद्धांतोंमे-पाठ,

आता है सोतो श्रावकोंका–भवोभवमें, हित, और कल्याण के लिये जिनेश्वर देवकी–भक्ति, करनेके वास्ते ही–लिखा गया है। नहीं के मिथ्यात्वी देव जो–पितर, दादेयां, भूतादिक है, उनोंकी–निरंतर भक्तिके, वास्ते–आता है। किस वास्ते भव्य जीवोंको–जिन धर्मसें, भ्रष्ट, करते हो ? अपना जो–कल्याण, होने वाला है, सोतो–वीत-राग देवकी–सेवा, भक्तिसें ही, होने वाला है ?। कुछ मिथ्यात्वी पितरादिककी–सेवा, भक्तिसें, नहीं होने वाला है ॥

फिरदेखो–सत्यार्थ पृष्ट. ७७ में–उवाई सूत्रका पाठ–बहुवे अरिहंतचेइय, इसपाठका, अर्थ–वहुत जिनमंदिर, ऐसा ढूंढनी-जीनेभी–मान्यही किया है, मात्र इसी–अर्थका, प्रकाशक–आयार वंतचेइय, के पाठसे–दूसरा पाठ आता है, उनको–प्रक्षेपरूप ठह-रायके, लोप करेनका–प्रयत्न, कियाहै ! परंतु इहांपर दोनोंप्रकारका पाठमें–चेइय, शब्दसें–जिनमंदिरोंका, अर्थकीसिद्धि, दुपटपणेसें होरही है ! देखो इसका विचार–नेत्रांजनके प्रथम भागका पृष्ट १०३ में अब इसमें–फिरभी, ख्यालकरोंकि–इस उवाई सूत्रके–दोनों प्रकारके, पाठमें—चेइय, शब्दसें, जिनमंदिरोंकी–वहुलता, और श्रावकों-कीभी–वहुलता, दिखाके ही, चंपानगरीकी—शोभामें, अधिकता दिखाई है। तोभी विपरीतार्थको ढूंढनेवाली–ढूंढनीजीने, सत्यार्थ पृष्ट, ७८—७९ में—इसी सूत्रसें, दिखाया हुवा–अंबड परिव्राजक, परम श्रावकका–"अरिहंत चेइय" के पाठमें, अरिहंतकी–प्रति-माका, प्रगट अर्थको—छोडकरके, उनका अर्थ–सम्यक्त्वव्रत, वा–अनुव्रतादिक धर्मरूप, वे संवधका—करके, दिखाया है ॥

इसमें विचार करनेंका यह है कि–ते चंपानगरीके जिनमंदिरों-

को तो, ते परम श्रावकोंने ही-बनाये होंगे। और उसमें—स्थापित कीई हुई, जिन मूर्त्तिकी पूजा—फल, फूलादिकसें, ते परम श्रावकोंने ही—किई होंगी। तोपिछे ढूंढनीजीको-वीतराग देवसें, क्यों-वैरभाव, हो गया। जो जगें जगें विपरीत—अर्थ, करके आप वीतराग देवकी, भक्तिसें—भ्रष्ठ होती हुई, श्रावकोंकोभी-तीर्थंकरोंकी भक्तिका लाभसें—भ्रष्ट करनेका, उद्यम-कर रही है ?

मेरा इसलेखपर, भोले श्रावकोंको-शंका, उत्पन्न होगीकि-ढूंढनीजीका लेखमें, एक दो जगें पर ही-फरक,मालूम होता है। तोपिछे जगें जगें पर-पिवरीत है, ऐसा किस हेतुसें लिखदिखाया होगा। इसबातकी-शंका, दूर होंनेके लिये, कितनीक-सूचनाओ, करके दिखाता हुं, सो इस-नेत्रांजनका, प्रथमके भागसें-विचार, कर-लेना ! हम विशेष विचार न लिखेंगे ॥

फिरभी देखो सत्यार्थ पृष्ठ. ८७ । ८८ में-आनंद श्रावकके-अधिकारमें, यही_अरिहंत चेइय, के पाठसें जिनमूर्त्तिका अर्थको लोप, करनेका,पयत्नकिया है। देखो इसकी समीक्षा-नेत्रांजनका, पृष्ठ. १०८। १०९ में ॥

पुनः देखो सत्यार्थ पृष्ठ,१०३।१०६ तक-जंघाचारणादि मुनिओ, नंदीश्वरादिक द्वीपोंमें, और इस भरत क्षेत्रमें भी-शाश्वती, तथा अशास्वती, जिन प्रतिओंको-वंदना, नमस्कार, करनेको-फिरते है, उहां-चेइयाइं वंदइ, नमंसइ, के पाठसें, जिन मूर्त्तिको वंदना, नमस्कार, करनेका-सिद्धरूप, अर्थको छोड करके-उहां नंदीश्वर द्वीपादिकमें ज्ञानका ढेरकी, स्तुति, करनेका-अर्थ, करके दिखलाती है। देखो इनकी समीक्षा-नेत्रांजनके प्रथम भागका पृष्ठ. ११७ सें १२१ तक, क्योंकि-मुनिपोंको भी, जिन मूर्त्तिको

वंदना, नमस्कार, करनेकी जरुर ही है, मात्र द्रव्य पूजा करणेकी, आज्ञा नहीं है ॥

फिर भी देखो सत्यार्थ पृष्ट. १०९ सें–चमरेंद्रके पाठमें–त्रण शरणमेंसें दूसरा–शरण अरिहंत चेइयाणि, के पाठसें–अरिहंतकी मूर्त्तिका, शरणा–लेनेका, दिखाया है । उसमें अरिहंतकी–मूर्त्तिका, अर्थको–छोडनेके लिये, अरिहंत पद, का नवीन प्रकारसें अर्थ करके, दिखाती है । देखो इसकी समीक्षा–नेत्रांजनके प्रथम भाग- का–पृष्ट. १२१ सें १२५ तक ॥

अब इसमें विशेष—ख्याल करनेका, यह है कि–अरिहंत चेइय, का पाठ–जिस जिस जगेपर सिद्धांतमें आया है, उस उस जगेपर आज तकके—टीकाकार, टव्वाकार, सर्व महा पुरुषोंने अरिहंतकी प्रतिमा (मूर्त्ति) का ही अर्थ, प्रगटपणे–लिखा हुवा है, तो भी ढूंढनीजीने अपनी ही पंडितानीपणा प्रगट करके उवाइ सूत्रके पाठमें—बहवे अरिहंत चेइय, है उस पाठके विषयमें, जिन मांदिरोंका–अर्थ, करके भी, प्रक्षेपरूप, ठहरानेका–जूठा, प्रय- त्न किया ॥

और—अंबडजीके, अधिकारमें इसीही–अरिहंत चेइय का अर्थ, सम्यक्त्वव्रत, वा, अनुव्रतादिक धर्म, का करके–दिखाया ॥

और—आनंद श्रावकके, अधिकारमें इसीही–अरिहंत चेइय, के पाठको–लोप, करनेका–प्रयत्न किया ॥

और जंघाचारण मुनियोंके–विषयमें इसी ही–चेइय, के पाठका—अर्थमें, ज्ञानका–ढेरको, बतलाया ॥

और—चमरेंद्र के, विषयमें-इसही—अरिहंत चेइय, का अर्थ— अरिहंत पद, करके दिखलाया है ॥

हमको विचार यही आता है कि-वीतराग देवकी, मूर्त्तियां-हजारो वर्षोंसे, जग जाहिरपणे-दिख रहीयां है, और जैन सिद्धांतोंमें-जगे जगे पर, उनकी सिद्धिका, पाठ भी-लिखा गया है, तो भी-विशेष धर्मको, ढूंढनेवाले-हमारे ढूंढक भाईओ, अपना ही तरण तारण—तीर्थंकरोंकी, मूर्त्तियां के-वैरी, वनके, सनातन धर्मका—शिखर पर, वैठनेको जाते है। परंतु हम उनोंको-तीर्थंकरोंके, भक्त मात्र ही-किस प्रकारसें, गिनेंगे ? ॥

॥ तर्क—अजी, सत्यार्थ-पृष्ट. ११८ में-हमारी ढूंढनीजीने, मूर्त्तिपूजनमें-षट् काया रंभका, दोष,दिखाके—पृष्ट. १२०में-लिखा है कि-दूसरा वडा दोष-मिथ्यात्वका, है, उसमें हेतु यह दिखाया है कि-जडको, चेतन मानके, मस्तक—जुकाना, मिथ्या है ॥

इस लेखसें-हमारी ढूंढनीजीने, यह सिद्ध करके-दिखलाया है, कि-श्रावकोंको कोइ भी प्रकारकी मूर्त्तिपूजा करनी सो वडा-मिथ्यात्व है, और षट् कायारंभका—कारण, होनेसें, हम विशेष धर्मकी ढूंढ करनेवाले-ढूंढक धर्मी श्रावक है सो, कोई भी प्रकारकी मूर्त्तिकी पूजा करें तो-संसारमें, डुव जावें, क्यौं कि—मिथ्यात्व है सो संसारमें डुवाता है इस वास्ते हम ढूंढको जिन मूर्त्तिकी-पूजा भी, नहीं करते है ॥

इसमें हमारा-विचार, यह है कि-वीतरागी मूर्त्तिकी-पूजा करनी, सोतो तीर्थंकरोंकी-भक्तिके वास्ते है । और इस प्रकारसें-भक्ति करनेका, गणधरादिक महा पुरुषोंने-जगें जगेंपर लिखके भी दिखाया है ॥

स्सेसाए अनुगामित्ताए भविस्सइ । के पाठसे-प्रगटपणे, दि-खाया हुवा है ॥

और द्रौपदीजीने भी-इसी ही, फलकी-प्राप्ति के, वास्ते-जिन प्रतिमाको, पूजी है । इस लिये ही-सूर्याभ देवकी, उपमा-दीई है ॥

परंतु—वीर भगवानके, परम श्रावकोंको-हररोजकी सेवामें पितरादिकोंकी-मूर्त्तिपूजा करनेका पाठ, किसी भी जैनाचार्यने—लि-खके, दिखाया हुवा नहीं है ॥

तैसेंही श्वेतांबर, दिगंबर, संप्रदायके-लाखो श्रावको मेंसें, किसी भी श्रावककी—प्रवृत्ति; होती हुई, देखनेमें नहीं आती है । तो पिछे यह ढूंढनीजी ते परम श्रावकोंकी पाससें—पितरादिक, मिथ्यात्वी देवोंकी—मूर्त्तियां, दररोज-किस हेतुसें, पूजाती है ? । क्योंकि-जो परम श्रावको होते है सो, तो, जिनेश्वर देवकी-मूर्त्तिके विना, किसीको-नमस्कार मात्र भी, करनेकी-इच्छा, नहीं रखते है । देखो सत्यार्थ पृष्ट. ४९ में-प्रमाण, ढूंढनीजीने ही लिखा है कि--वज्रकरणने, अंगूठीमें-मूर्त्ति, कराई ॥

इस लेखसें—ख्याल करोंकि, परम सम्यक्त्व धर्मका—पालन, करता हुवा—ते वज्रकरण राजा, अपना-स्वामी राजाको भी, नमस्कार करनेकी वखतें, अंगूठीमें—रखी हुई बारमा तीर्थंकर-श्री वासुपूज्य, स्वामीकी मूर्त्तिका ही—दर्शन करता रहा । परंतु ते सिं-होदर नामका स्वामी राजाको भी, नमस्कार—नहीं किया । तो पिछे—वीर भगवानके ही ते परम श्रावको—पितरादिक, मिथ्यात्वी देवोंकी—मूर्त्तिपूजा, दररोज—कैसें करेंगे ? ॥

वीतरागी मूर्त्तिके साथ ढूंढनीजीकी धिठाई तो देखोकि—एक

जगेपर तो—ते परम श्रावकोंको, मिथ्यात्वी पितरादिकोंकी-मूर्त्तिको, दररोज, पूजाती है। और सत्यार्थ पुष्ठ.७२ में-धन,पुत्रादिककी ला-लच देके, स्वार्थकी सिद्धि होनेका दिखाती हुई, यक्षादिकोंकी भी-मूर्त्तिको, पूजाती है। और सत्यार्थ पृष्ठ. ६७ में-लिखती है कि-मूर्त्तिको धरके, उसमें--श्रुति, लगानी नहीं चाहिये। कैसी २ अपूर्व-चातुरी, करके, दिखलाती है। उसका विचार, पाठकवर्ग-आप ही, करलेवेंगे। हम वारंवार क्या लिखके दिखावेंगे ?

फिर भी देखो—सत्यार्थ पृष्ठ. ६४ ओली ३ में. ढूंढनीजीने-लिखा है कि—स्त्रीकी मूर्त्तियांको, देखके तो—सबी कामियांका, काम—जागता, होगा।

और पृष्ठ. ४२ ओ. १० से. लिखा है कि—हां हां हम भी मानते है कि-मित्रकी, मूर्त्तिको—देखके, प्रेम, जागता है। यदि उसी मित्रसें-लड पडे तो, उसी-मूर्त्तिको, देखके—क्रोध, जा-गता है।

इस लेखसें-हमको विचार, यह आता है कि-मित्रता रखें जब तक तो-मित्रकी,मूर्त्तिसें-प्रेम,और-लड पडे तो,उसी ही, मूर्त्तिसें द्वेष, तो क्या-हमारे ढूंढक भाइयो, महा मिथ्यात्वके साथ-गाड प्रीति करके, ते परम श्रावकोंके दररोजके कर्त्तव्यमें, मिथ्यात्वी-पितर, दादेयां, भूतादिकका मूर्त्तिपूजन। और तैसें ही धन पुत्रादिककी लालच दि-खाके भी, मिथ्यात्वी काम देवादिक, और पूर्णभद्र यक्षादिक-दे-वोंकी, मूर्त्तिका-पूजन, करानेको-उद्यत, हुये होंगे ?

ऐसा-अनुमान, हर किसीके-हृदयमें भी,आये विना न रहेगा, क्यों कि-समकितकी मातिका-हेतु भूत, तीर्थंकरोंकी—भक्तिसें, दूर होके, और-गुप्तपणे, तीर्थंकरोंके-साथ, हृदयमें-द्वेषको, धारण

करके । और-सत्य स्वरूपवाले, तीर्थंकरोंकी, मूर्त्तिपूजाके-पाठोंका, तदन-विपरीतार्थ, करते हुये ।

और-तीर्थंकरोंके, भक्तोंको-पाषाणोपासक, पहाड पूज कोंका, विशेषण-देके, उपहास्यको करते हुये । और तीर्थंकरोंके, भक्तों-को ही-मिथ्यात्वी, अनंत-संसारी, ठहरानेका-प्रयत्न, करते हुये ।

और छेवटमें-उनके, उपदेशकोंको भी-अनंत संसारी ही, ठह-रानेका-प्रयत्न, किया है ।

तो अब ख्याल करोके-पितरादिक, जो मिथ्यात्वी-देवताओ है, उनोंकी-पथ्थरसें, बनी हुई-मूर्त्तियां है, उनकी-दररोज, पूजा, करनेकी-सिद्धि, करते हुये-हमारे ढूंढकभाईयो, तीर्थंकर भगवानसें-गुप्तपणे, हृदयमें—द्वेषभावको, धारण करनेवाले—सिद्ध, होते है या नहीं ?

इस विषयमें—योग्याऽयोग्यका, विचार—वाचकवर्ग ही, कर लेवेंगे ॥

प्रथम हमको-जिस ढूंढकभाईने, ऐसा-कहाथा, कि-मूर्त्तियां पर, पाणी-गेरके, और-फल, फूल, चढायके-पाप बंधनमें, पडना-ऐसी वात, हम—नहीं, चाहते है ।

उनको हम-सूचना, करते हैं कि-हे ढूंढकभाई, जो तूं तेरी स्वामिनी—पार्वतीजीके, लेखसें-धर्म मार्गमें, प्रवृत्ति करनेका—विचार करेगा, तब तो-मिथ्यात्वी जो-पितरादिक-देवो है, उ-नोंकी मूर्त्तिपूजा-दररोज, वीरभगवानके-श्रावकोंकी तरां, तेरेको भी करनी पडेगी ? ।

क्यौं कि ढूंढनीजीने-कयबलि कम्मा, के पाठसें, ते प-

रम श्रावकोंके-नित्य कर्त्तव्यमें, तीर्थंकरोंकी-भक्ति करनेका, छुडवायके-ते परम श्रावकोंकी पासमें भी, दररोज-पितरादिकोंकी ही मूर्त्ति, पूजाई है ।

अगर जो तूं-जैन सिद्धांतकारोंके, कहने मुजब-शुद्ध जैन धर्मकी प्राप्तिकी इच्छासें, चलनेका-इरादा, करेगा, तबतो सिद्धांतकारोंने-दिखाई हुई, तीर्थंकरोंकी-भक्तिपूर्वक मूर्त्तिपूजासें, तूं तेरा भवोभवका-हितकी ही, प्राप्ति कर लेवेगा ।

क्यौं कि जैन ग्रंथकारोंने तो-ते परम श्रावकोंको, दररोजकी-पूजामें, तीर्थंकरोंकी ही-मूर्त्तिपूजा, कही हुई है ।

चाहें तो तूं-तेरी स्वामिनीजीका, सत्यार्थ पृष्ठ. १२६ में से-अपने आप,विचार करले, तेरेको यथा योग्य-मालूम,हो जायगा ॥

फिर भी-सत्यार्थ पृष्ठ. ३४ का लेखसें, ख्याल करोकि, काम विकारी स्त्रीकी, मूर्त्तिको-देखनेसें, कामी पुरुषोंको काम, जागे । एसा ढूंढनीजीने लिखा ॥

तो अब जो-मिथ्यात्वी लोको होंगे, उन्होंको ही मिथ्यात्वी पितर, दादेयां, यक्षादिक-देवोंकी, मूर्त्तियांको-देखनेसे, प्रेम उत्पन्न होनेका । और उनोंकी मूर्त्तियांको-पूजन, करनेकी-सिद्धि, करनेका-नियम, स्वभाविकपणे ही-लागु, पडेगा ॥

और—जिस भव्यात्मको, महा मिथ्यात्वका-उपशम, हुवा होगा, और समकितकी प्राप्ति-कर लेनेकी, अभिरुची-उत्पन्न हुई होगी, एसा निर्मल शांत चित्त वृत्ति वाला-भव्यात्माकोंतो, जगतका उद्धार करने वाले-तीर्थंकरोंकी, परम शांत मूर्त्तिको, देखतेकी साथ ही हृदयमेंसे-अमृतरसका जरणा झरेगा ? इसमें कोइ भी प्रकारसें शंकाका स्थान नहीं है ॥

अब आगे पाठक गणको, अधिक वाचनका-कंटालासें, हठाता

हुवा, मात्र-दो शब्दोंसें ही, उन्होका ध्यानको खेचताहुं कि-जिस महा पुरुषोंका, नाम मात्रेका-उच्चारण, करनेसें ही-वंदन, नमन, करके-हमारा पापका प्रलय, करनेको-चाहते होंगे, उनोंकी-विशेष बोधदायक अलौकिक, भव्य मूर्त्तियांका-दर्शन, नमन, पूजनसें भी, हमारा-कठोर हृदयको, द्रवित-किये विना,

और आत्माको सम्यक्त्व धर्ममें-स्थापित किये विना, हमलोक विशेष धर्मकी प्राप्ति, तीन कालमें भी-न मिला सकेंगे। यह हमारा कथन चारो तरफकी दृष्टिसें, हमारा सामान्य मात्रका भी लेखसें देखने वाले--सज्जन पुरुषोंको, योग्य ही-मालूम हो जायगा।

और ते सज्जन पुरुषो, हमारा-स्वछ हृदयका लेखको, सफल करते हुये, तीर्थंकरोंकी-भक्तिभावका, लाभको-अवश्यमेव, उठावेंगे ?। और हमारा-अनुमोदनका, लाभकी आशाको, सफल करेंगे ?। इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ इति ढूंढक भक्त आश्रित संवाद पूर्वक त्रणे पार्वतीका दूसरा स्थापना निक्षेपका स्वरूप ॥

अब ढूंढक भक्त आश्रित-त्रणें पार्वतीजीका, तिसरा-द्रव्य निक्षेपका, स्वरूप लिखते है ॥

मूर्त्तिपूजक--हे भाइ ढूंढक, देखकि, शिव पार्वतीजीका-द्रव्य निक्षेप, यहथा कि-भाव निक्षेपका विषयभूत योवनत्वकी, पूर्व अ-वस्थामें, अथवा-अपर अवस्थामें, उनके-गुणोंका वर्णन, पंडितोंको संतुष्ट द्रव्यका-अर्पण करके भी, सो शिवका भक्त-श्रवण करता हुवा, और अपना-उपादेय वस्तुके संबंधपणे, मानता हुवा, अपना लाभ, या-हानिको भी, मानता रहा था ॥

और वेश्या पार्वतीका-द्रव्य निक्षेप, यह था कि-कामविकारको जगाने वाली, भाव-निक्षेपका विषयभूत योवनत्वकी-पूर्व अवस्थारूप बालिकामें था। अथवा अपर अवस्था मृतक रूपकी अवस्थामेंथा। उनके गुणोंका, वर्णन-श्रवण करता हुवा, और अपना-उपादेय वस्तुके संबंधपणे, मानता हुवा, सो कामी पुरुष, अपना-लाभ या—हानिको भी, मानता रहाथा।

और ढूंढनी पार्वतीजीका-द्रव्य निक्षेप, यह था कि-दीक्षा लेनेका भाव करके आई हुई, अपनी गुरुनीजीके पास पठन पाठनको करतीथी ते पूर्वकी अवस्थामें। अथवा जो ढूंढनी पार्वतीजी उपदेशादिक करतीथी, और ग्रंथादिकोंकी रचना भी करतीथी, उनकी समाप्ति हुई सुनते हैं, ऐसी अपर अवस्थामें—द्रव्य निक्षेप, किया गया था॥

परंतु—ते शिवभक्तने, और-ते कामी पुरुषने तो, ढूंढनी पार्वतीजीका-इस द्रव्य निक्षेपका विषयको, ज्ञेय वस्तुके संबंधपणे मानके, नतो अपना लाभ, और नतो अपनी-हानीको, कुछ मानाथा॥

परंतु-हे भाई ढूंढक, मैं तेरेको, पुछता हुं कि-१ शिव पार्वतीजी। २ वेश्या पार्वती। और ३ ढूंढनी पार्वतीजी। यह तीनों पार्वतीका—द्रव्य निक्षेपकी, वार्त्ताको-श्रवण करके, किस पार्वतीका द्रव्य निक्षेपका विषयमें—तूं अपना लाभ, और अपनी हानिको, मानेगा॥

क्योंकि-वेश्यापार्वतीका, द्रव्यनिक्षेपसें-लाभ, कामी पुरुषको ही होनेवालाथा। और हानिभी, उसीकोही हुई है॥

और शिवपार्वतीजीका, द्रव्यनिक्षेपसें-लाभ, शिवभक्तकोही प्राप्त होनेवालाथा। और हानिभी, उसीकोही हुई है॥

परंतु हे भाई ढूंढक, ढूंढनी पार्वतीजीका, द्रव्यनिक्षेपसें-लाभ, या हानि, क्या तेरेको मान्य नहीं करना पडेगा ? ।

तो पिछे-अपना उपादेय, वस्तु संबंधीका-द्रव्यनिक्षेपभी निरर्थक पणे, कैसें मान्या जायगा ? जैसेंकि भविष्य कालमे-अमृत फलको देने वाला, कल्पवृक्षका-अंकुराको, पाणीसें सिंचन करके उनकी रक्षा कौन पुरुष, न करेगा ? ।

अथवा अमृतफलको देता हुवा, कल्पवृक्षका-नाश, होनेसें, किसका चित्तमें-दुःख, उत्पन्न-न होगा ? ।

तेसेंही-तीर्थंकर भगवानकी, बालकरूप पूर्व अवस्थाकोभी, हमारा कल्याणकी करनेवाली जानके, उनकी भक्ति करनेको हम-क्यों न चाहेंगे ? ।

और हमारा-सर्वस्वका नाश, मानते हुये, तीर्थंकरोंका-मृतक शरीररूप अपरअवस्थाकीभी-भक्ति करनेको, क्यों न चाहेंगे ?

और उनोंके-दुःखोसें दुःखित, सुखोंसें चित्तमें सुखीभी, क्यों न होंगे ? ।

इस वास्ते तीर्थंकरोंका-*द्रव्यनिक्षेपकोभी, सार्थकरूपही मानते है । परंतु निरर्थक स्वरूपका, नहीं मानते है ।

यह निक्षेपके विषयमें, ढूंढनीजीकी-मतिकाही, विपर्यास हुवा है, इस वास्ते-त्रण निक्षेपको, निरर्थक रूपसें, लिख दीखाती है ? ।

---

*जब हमारे ढूंढक भाईयो-द्रव्यनिक्षेप, निरर्थकही कहते है, तो पिछे-दीक्षा लेने वालाका, और साधुके-मुडदाका, ठाठमाठसें-वरघोडा, और दूशाला डालके, हजारो रूपैयाका-विगाडा, किसवास्ते करते हैं ? डालदेनेकी वस्तुका-आदर, कौन करता है ?

परंतु अपनी अपनी योग्यता मुजब, सर्व वस्तुका-चार चार निक्षेप, सार्थक रूप ही मानते है, उसमें भी-परमोपादेय, वस्तुके तो-चारो निक्षेपको, परमोपादेयसें ही मानते है।

परंतु-चार निक्षेप,कोइ भी प्रकारसें-निरर्थक स्वरूपका,नहीं है।

इत्यलं विस्तरेण ॥

॥ अब ढूंढक भक्ताश्रित—त्रणे पार्वतीका-चतुर्थ-भाव निक्षेपका, स्वरूप लिखते है ॥

देख भाई ढूंढक—साक्षात् स्वरूपसें, प्रगटपणे-१ शिव पार्वतीजी। २ वेश्या पार्वती। और ३ ढूंढनी पार्वतीजी। विद्यमान होवे तब ही ते-त्रणे वस्तुओ, अपना अपना स्वरूपसें—भाव निक्षेपका, विषय स्वरूपकी, कही जाती है।

परंतु १ शिवभक्त है सो तो, शिव पार्वतीजीको ही-देखता हुवा, भक्तिके वस होके-मोहित, हो जायगा १। २ कामी पुरुष है सो तो, वेश्या पार्वतीको ही--देखता हुवा कामके वस होके-मोहित, हो जायगा २। तैसें ही ३ ढूंढक मतका भक्तको, ढूंढनी पार्वतीजीको ही--देखके, भक्तिके वस होके-मोहित, होना ही चाहिये ? ३ ॥

क्योंकि—१ शिवभक्तथा सो-पार्वतीजी, ऐसा-नाम मात्रका, उच्चारण करता हुवा। अथवा किसीसें-श्रवण करता हुवाभी, अपनी श्रुति, शिवपार्वतीजीकी तरफही-लगाता हुवा, वंदना, नमस्कार, करकें-अपना आत्मानंदमें, मग्नरूपही, होजाताथा १। और विशेष प्रकारसें-बोधको करानेवाली, शिवपार्वतीजीकी—मूर्त्तिको, देखके तो बडाही हर्षित होके, अपना-मस्तकको, झुकाता हुवा, और

दूसरेकोंभी तें-मूर्त्तिको, दिखाता हुवा, और उनोंकी पाससें-मस्तक, झुकाने कीभी-इच्छा, करता रहाथा २। और ते शिवभक्त, शिवपार्वती-जीकी-पूर्व अपर अवस्थाका, इतिहास, पंडितोंको संतुष्ट द्रव्यको, अर्पण करकेभी-श्रवण, करता रहाथा ३। तो अब साक्षात्पणे-शिवपार्वतीजीका, दर्शन करता हुवा—भक्तिके वस होके, मोहित होजावे, इसमें क्या आश्चर्य जैसा है ? अपितु कोईभी आश्चर्य जैसा नहीं है ४ ॥

अब देखो २ कामी पुरुष-पार्वती, ऐसा नाम मात्रका-श्रवण करता हुवा, वेश्या पार्वतीकी तरफ ही-अपना चित्तको, लगा देताथा १। और खास वेश्या पार्वतीकी, मूर्त्तिको-देखके, उसमें मोहित हो जावे, उसमें क्या आश्चर्यकी बात है ? २ । तैसेंहि वह कामीपुरुष, वेश्या पार्वतीकी—पूर्व अपर अवस्थाका, वर्णन-सुनके भी, मस्त ही हो जाताथा ३ । तो अब साक्षात्, वेश्या पार्वतीको-देखाता हुवा, कामके वस होके, उसमें-मोहित हो जावे, इसमें क्या आश्चर्यकी बात है ? ४ ॥

अब देख भाई ढूंढक, तूंभी, ढूंढनी साध्वी पार्वतीजीका-चारो निक्षेपको भी-उपादेयपणे ही, अंगीकार, कर रहा है । क्योंकि शिव पार्वतीजी के-हिसाबसें, ढूंढनीजीमें-पार्वती, नाम है सो, ढूंढनीजीके मानने मुजब भी-नाम निक्षेप ही, ठहर चुका है । और ढूंढनीजीने-निरर्थक भी, माना है । तो अब ढूंढनी पार्वतीजीके नाम मात्रसें, किसी पुरुषने यत् किंचित्पणे, अथवा अधिकपणे-अवज्ञा कीई, अथवा लिखी, तो, भक्तजनोंको—दुःख माननेकी, क्या आवश्यकता रहेगी ?

परंतु हे ढूंढक भाईओ ! तुमतो दुःख मानतेही हो । जैसेंकि—सम्यक्त्वशल्योद्धारमें, गतरूप जेठमल ढूंढकके—नामसें, किंचित्

मात्रकी अवज्ञासें दुःख मानाथा । तो अब-नाम निक्षेप, सार्थक हुवाकि-निरर्थक ? सो इहांपर थोडासा फाम करके,देखो ?॥ यहतो ढूंढनीजीका-नाम निक्षेप, हुवा ॥ १ ॥

अब दूसरा-स्थापना निक्षेपको, देखोकि-शिव और पार्वती-जीके जैसें, ढूंढनी पार्वतीजीकी साथ-चद्रामास पुरुपकी-मूर्त्तिको, दाखल कीई होवेतो, क्या भक्तजनोंको-दुःख, न होगा ? हमतो इस बातमें, यह कहतेहैकि-जैन धर्मको, नाम मात्रसे धारण करने वाले, सर्व पुरुप मात्रकोही-दुःख, होजायगा, तोपिछे खास उनके भक्त जनोंको-दुःख, होजानेमें क्या आश्चर्य है ? तो अब विचार करो-कि-स्थापना निक्षेप, सार्थक हुवाकि निरर्थक ?॥

अब इहांपर यत्किंचित् सूचनाओ, यह हैकि-जैन धर्मका स-नातनपणेसें दावा करने वाले होके, १ टीकाकार, टब्बाकार वगैरे-सर्व महान् महान् आचार्योका, अर्थकी निंदाकरते है सो । और२ तीर्थंकर भगवानकी परम पवित्र, शांत, और भव्य-मूर्त्तिको, पथ्थ-र, पहाड आदि-निंद्य वचनसें, लिखते है सो । और ३परम श्रा-विका-द्रौपदीजीका, जिनपूजनको-छुडवायके, काम देवकी मूर्त्तिपू-जाकी-सिद्धि करनेका, प्रयत्न करते है सो । और ४ जंघाचारणा-दि मुनियोंका, जिनमूर्त्तिके-वंदनमें, ज्ञानका ढेरको-वतलाते है सो॥ और५ चमरेंद्रका पाठसें, जिनमूर्त्तिका शरणमें-अरिहंतपदका,नवीन प्रकारसें-अर्थ करके, वतलाते हैं सो । और ६ वीर भगवानके-प-रमश्रावकोका, नित्य पूजनरूप-जिनप्रतिमाका, लोपकरके-पितर, दादेयां, भूतादिकोंकी, मूर्त्तिपूजाकी-सिद्धि करके, दिखलाते है सो । और ७यक्षादिक-देवोंकी, पथ्थरकी-मूर्त्तिपूजासें, स्वार्थकी सिद्धि-मानने वाले है सो । सनातन जैनधर्मी, अथवा तीर्थंकर देवके-भ-

क, कहे जावेंगेकि-सर्वथा प्रकारसें, विपरीत विचारवाले-कहे जावेंगे ?। सो हमारा, और ढूंढनी पार्वतीजीका-लेखको, मिलाकरके-विचार, करलेना। यहतो ढूंढनीजीके-स्थापना निक्षेपका, विचार हुवा ॥ २ ॥

अब ढूंढनी पार्वतीजीका तिसरा-द्रव्य निक्षेप, देखोकि-निर्दोषरूप, दीक्षा लेनेकी-पूर्व अवस्थाको, शीलभंगादिकका कोई पुरुष-जूठा ही, कलंक-दे देवे।

और निर्मल-चारित्रका पालन किये वाद, गत प्राणका शरीरकी-मिट्टीका, खरावा करनेकी-प्रवृत्ति, कोई पुरुष करेगा तो, क्या उनके भक्त जनोंका-चित्तको, खेद, उत्पन्न-न होगा ?।

अथवा ते पूर्व अवस्थासें हर्ष, और अपर अवस्थासें-दिलगीरीपणा, उनके भक्त जनोंको- न होगा ?। जब ते-द्रव्य निक्षेपका विषयवाली, दोनो प्रकारकी-अवस्थासें, हर्ष, या दिलगीरी, उत्पन्न होती है, तो पिछे-यह द्रव्य निक्षेप, उनके भक्त जनोंको सार्थक हुवा कि निरर्थक ?। जब ढूंढनी पार्वतीजीका द्रव्य निक्षेप, सार्थक—मानके, सर्व प्रकारका दावा करनेको, तत्पर हो जाते हो, तो पिछे जिस तीर्थंकर भगवानका, नाम मात्रसें भी अवज्ञाको, सहन नहीं करते हुये हम, हमारा—कल्याण मानते है, उनकी पूर्व अपर अवस्थाको, उपयोग विनाकी—कह करके, तुछ वस्तुकीतरां निरर्थक, ठहरानेवाले हम, तीर्थंकरोंके भक्त कहे जावेंगे कि, वैरी कहे जावेंगे ? उनका विचार, तीर्थंकराके-भक्तोको ही करनेका है॥

अब हम फिर भी किंचित्-तात्पर्य कह करके, इस लेखकी समाप्ति करते है।

तात्पर्य यह है कि—जिस जिस पुरुषोंने, जो जो—वस्तु,

(अर्थात्—पदार्थ,) जिस जिस-स्वरूपसें, मानी होगी, उस २ वस्तुके चारो निक्षेप भी, उसी ही—भावकी, उत्पत्ति कराने वाले, होंगे।

जैसें कि—* शत्रु भावकी वस्तु, होंगी उनके चारो निक्षेप भी, शत्रु भावकी ही—उत्पत्ति, कराने वाले-होंगे।

और—मित्र भावकी, वस्तु होंगी, उनके-चारो निक्षेप भी, मित्र भावकी ही-उत्पत्ति, कराने वाले-होंगे।

और जो कल्याण भावकी-वस्तु, होगी उनके-चारो निक्षेप भी, कल्याण भावकी ही-उत्पत्ति, कराने वाले होंगे।

और परम कल्याण भावकी—वस्तु, होंगी, उनके-चारो निक्षेप भी, परम कल्याण—भावकी ही, उत्पत्ति-कराने वाले, होंगे। परंतु—उपयोग विनाकी, निरर्थक स्वरूपकी-वस्तु न होंगी। इसी वास्ते सिद्धांतमें—१ नाम सच्चे। २ ठवण सच्चे। ३ द्रव्य सच्चे। ४ भाव सच्चें॥

कह कर—चार निक्षेपको, सत्य रूपसें ही, कहे हें। इस वास्ते ख्याल करनेका, यह है कि—जो हम मिथ्यात्वी लोकोंकी तरां, तीर्थंकरोंकी साथ—गुप्तपणे, हृदयमें—शत्रु भावको, धारण करते—होंगे, तब तो तीर्थंकरोंका-त्रण निक्षेप, उपयोग विनाके होके—हमारा कल्याकी प्राप्ति होनमें, वेसक निरर्थक रूपही—हो जायगे,और हमारा जन्म जीवतव्य भी-निरर्थक रूप ही,हो जायगा।

---

* देखो सत्यार्थ पृष्ट ४२ में—मित्रकी-मूर्त्तिको, देखके-प्रेम जागता है। लडपडे तो उसी ही—मूर्त्तिको, देखके—क्रोध, जागता है। विचार करोकि-हमारे ढूंढक भाईयो इस वखते तीर्थंकर भगवानके—वैरी, बने हुये है या नहीं ?॥

नहीं तो तीर्थंकरोंका—१ नाम, और २ स्थापना, यहदोनों निक्षेप, विद्यमान है-उनकी योग्यता मुजब; उपासना करनेसें-हमारा, कल्याणकी ही—प्राप्ति होगी। परंतु निरर्थक रूपकी तो कबी भी न होगी ॥

इति ढूंढक भक्त आश्रित-त्रणें पार्वतीका, चतुर्थ-भाव निक्षेपका, स्वरूप ॥

॥ इति पार्वती वस्तुका—चार २ निक्षेपका स्वरूप संपूर्ण ॥

मृतक ढूंढक गोपाल स्वामीजी

मोहनऋषि. माणेलालजी. नथुजीऋ.षि.

ढूंढनी पार्वतीजी. उनकी चलीजीवी.

॥ दो प्रकारकी ढूंढक 'छबीयांका' स्पष्टीकरण ॥

॥ हे ढूंढक भाइयो ? यह दो प्रकारकी-छबीयां, हमने दाखल करवाई हं उसमेंसें प्रथम एक तो है काठियावाडका-लींमडी सेहरके नामसें प्रसिद्ध, लींमडी संघाडेकें ढूंढक साधु समुदायका-पूंज्य श्री 'गोपाल' स्वामीजीकी। जब यह ऋषिजी-संवत् १९४७ का वैशाष मासमें-गत्यंतरको प्राप्त हुंए, तब कितनेक हाजर भक्तोंने-पूज्यकी मृतक देहको-एक तखत (अर्थात् पट्टे) पर बिठाके, और नीचेके भागमें तीन (३) जीवते साधुको बिठाके दर्शनार्थे उनकी छबीको उत्तराई लीई है, और यह छबी है सो-गोपाल स्वामीका-स्थापपना निक्षेप'का विषय के, स्वरूपकी हं-तो अब विचार करो-कि-गोपाल स्वामीका दुर्गंधरूप मृतक देहकी 'मूर्त्ति' तुमको दर्शन करनेके योग्य हो गई ? और महा सुगंधमय, तीर्थंकरोंके देहकी, चंद्रोज्वल पाषाणमय, अलौकिक भव्य मूर्त्ति' हमारे ढूंढक भाईयोंको-दर्शन करनेके, योग्य नहीं ? तो क्या उनोंको-तीर्थंकर भगवानसें ही, कोई वैर भाव हो गया हैं ? जो उनोंकीही निंदा करनेको थोथा पोथा लिख मारते हैं ? हे ढूंढक भाईयो थोडासा क्षणभर विचार करो ? इसमें तीर्थंकरोंका विगाडा होता हैं कि-तुम तुमेरा आत्माका विगाडा करलेते हो ?

अब हम ढूंढनी पार्वतीजीकी-छबीका, कुछ विशेष विवेचन करके दिखलाते है, क्योंकि-धर्मका दरवाजामें-ढूंढक वाडीलालने, और इसी ढूंढनी पार्वतीजीने भी-१ नामनिक्षेप।२स्थापना निक्षेप। और ३ द्रव्य निक्षेप।यह त्रण निक्षेपको-श्री अनुयोग द्वार सूत्रकी जूठी साक्षी देके

सर्व वस्तुओंका–निरर्थक, और उपयोग विना के, ठहरायेथे परंतु हम-ने हमारा लेखमें–सिद्धांतका वचनके अनुसारसे–अनेक प्रकारकी यु-क्तिओंके साथ–चारो निक्षेपकी सार्थकता, और उपयोगीपणा क-रके ही दिखलाइ दिया है, तोभी इहांपर किंचित् उपयोग करानेके वास्ते–सूचना मात्र, लिख दिखाता हुं–अब विचार कीजीयेकि–म-हादेवजीकी पार्वतीकी अपेक्षासें–इसी ढूंढनी पार्वतीजीका–नाम है सो, तुमेरा ही मंतव्य मुजब–नाम निक्षेप ही, ठहर चूका है, और निरर्थकभी तुमने माना है, तब तो ढूंढनी पार्वतीजीके नामसें दूर देशमें बैठकर किसीने–गालीयांभी दीइ तो तुमको उदासी भाव होनेका, और उनके तरफ द्वेषभाव करनेका, अथवा उनको निवा-रण करनेका, कुछभी प्रयोजन न रहेगा। क्यौंकि–निरर्थरूप और उपयोग विनाकी वस्तुका–चाहे कोइ कुछभी करें तोभी, उनका-शोक, संताप, कोईभी करता नहीं है। यह तो ढूंढनीजीका १ नाम निक्षेप हुवा॥ अब ढूंढनीजीका ३ द्रव्य निक्षेप, और ४ भाव नि-क्षेपमें–विशेष हम लिख चूके है मात्र इहांपर–२ स्थापना निक्षेपमें ही–सूचनारूपे लिखके दिखावते है। कारण यह है कि–ढूंढनीजीने स्थापना निक्षेपको हीं–निरर्थ, और उपयोग विनाका, ठहरानेके वास्ते ही–विशेष प्रयत्न किया है। और यह–जो छवी है सो, ढूं-ढनीजीका–स्थापना निक्षेपका, विषयके स्वरूपकी ही है। अब इ-इसमें देखीये कि–कोई बदमास पुरुष–काम चेष्टारूपका दिखाव कर-के, ओर ढूंढनीजीकी–छवीके साथमें, खडा होके, और दूसरी–छ-वीका (अर्थात् मूर्त्तिका) उतारा करवायके, जगें जगें पर वे अदबी करता फिरेगा, तब–हे ढूंढक भाईयों–तुमको, और हमको–दीलगीरी, उत्पन्न होगी या नहीं ? कदाच तुम–हठ पकड करके ऐसा कहभी देवोंगे कि–इसमें–दीलगीरी करनेका, क्या प्रयोजन है ?

परंतु हम इस बातको-मंजूर न करेंगे, कारण यह है कि-ऐसी अनुचित बातसें-जैन धर्मकीही-निंदा होती है ? यद्यपि वीतराग देवकी मूर्त्तिकी द्वेषिणी-ढूंढनीसें-हम विशेष संबंध नही रखते है, परंतु जैन धर्मकी प्रीति होनेसें यह अनुचितपणा सहन न करस-केंगे ? यद्यपि जैनधर्मके तत्वोका-विपरीत बोधसें, ढूंढनी पार्वतीजी-ने-वस्तुका-चार चार निक्षेपमेंसें-त्रण त्रण निक्षेप-निरर्थक, और उपयोग विनाका, ठहरायके-अपनी मूर्त्तिरूप-स्थापनाकोभी-निर-र्थक ठहराइ है,

परंतु हमतो तीर्थंकरोंके वचनानुसार, हमारी उपादेय वस्तुका-चारोनिक्षेप, योग्यता प्रमाणे, उपादेयपणें ही मानते हैं । जो कदाच हमारा लेखसें—किंचित् मात्रभी-विचार करोंगे तो, तुम ढूंढकोने-भी-अपनी उपादेयरूप वस्तुका-चारो निक्षेप, योग्यता प्रमाणे-उपा-देय रूपसें ही माने हुये हैं ।

परंतु कोई विशेष प्रकारका-मिथ्यात्वके उदयमें, अथवा कोइ-विपरीत बोधके-कारणसें, अथवा कोई संसार भ्रमणकी-बहुलता-सें, तुमलोक तीर्थंकरोका-भक्तपणाको, जाहिर करकेभी केवल वी-तराग देवका-स्थापना निक्षेप रूप-भव्य मूर्त्ति कीही, अनेक प्रका-रसे-अवज्ञा करनेको, तत्पर होके—अपना संसार भ्रमणमें ही अ-धिकपणा करलेतेहो, और दूसरे भव्य पुरुषोंकोभी—विपरीत मार्गमें गेरनेका—विपरीत रस्ताको ढूंढतेहो.

और इसीकारणसें अपनेंमें-ढूंढकपणाकी सिद्धिभी करके दि-खलातेहो । और गण धरादिक महापुरुषोंको, और महान् महान् सर्व आचार्योंको, और जैनके सर्व सिद्धांतोको-निंदितकरके-अपने आप-तत्वज्ञानीपणाको, प्रगट करते हो ?

क्या तुमही ज्ञानी ही गयेहो ? कोइ जैनाचार्यको—जैन तत्त्वका वोध, नहीथा ? जो जगें जगें गणधरादि महान् महान् आचार्योंको ही निंदते हो ? हमतो यही कहते है कि—कोइ जैन धर्मके तत्त्वोंसें विमुख पुरुषकी वाणीरूप पानीका—पान करनसें, तुम दिवाने बने हुये—ते गणधरादिक महापुरुषोंकोभी—दिवाने रूप, लेखतेहो ?

परंतु जो यह किंचित् मात्र स्वछ वाणीरूप पानीका—पानकरके—विचारमें उत्तरोंगेतो, अपने आप मालूम होजायगा कि—जैन तत्त्वोंके विषयमें—हमकितनी पुहच धरावते है ?

और जो विचारमें न उतरोंगे तब तक तो तुम—अपने आप तत्त्वज्ञानी बने हुये ही है। कारण कि—दूनीयांका हीं यह एक कुदरती नियम, दिखनेमें आता है कि—जो पागल होता है सो भी सब दूनीयांको—पागल रूप समज कर—अपने आप वह पागल ही तत्त्व ज्ञानकी मूर्त्तिरूप, बन वैठता है।

और अपनी जूठी वात भी—दूसरोंको मनानेको—जबरजस्तिपणा भी करता है, और वह पागल उस जूठी वातको भी नही मानने वालोंकी—हेरानगति करनेको ही—तत्पर हो जाता है ॥

अब इसमें एक सामान्य दृष्टांत देके—मैं—मेरा लेखकी भी, समाप्ति ही करता हुं ॥

दृष्टांत यह है कि—किसी एक समये—एक निमित्तियेने राजाको जाहिर कियाकि—हे महाराज! जो यह—ग्रहोंके योगमें वर्षा होने वाली है, उसका पानी, जो कोइ पीई लेवेगा, सोही दिवाना बन जायगा—तब जो जो उत्तम लोकथे उनोंने—अपना अपना बंदोवस्त कर लिया, परंतु जिस लोकों के पास कुछ साधन ही नहीं था, वह लोक—अपना कुछ भी बंदोवस्त कर सके नहीं,

और वह वर्षाका पानीको-पीनेकेही साथ, दिवाने ही बनगयें ऐसें कोइ सेंकडो ही-नंग धडंग होके, वे अदंवीसेंही फिरने लगे, और छेवटमें ते दिवानोंने, राजाको भी-दिवाना समजकर, राज्यगद्दीपरसें-उठा देनेकाही, विचार किया। परंतु ते विपरीत पानीका-पानसें, पराधीन बने हुये दिवानोंने इतनाभी विचार नही किया कि-हमारी सर्व प्रकारसें परवस्ति करके, अनेक प्रकारके-संकटोसें रक्षण करनेवाला, हमारा परमोपकारी, राजाको, राज्य गद्दीपरसें उठादेके, हम हमारी ही गति क्या करलेवेंगे ?

परंतु ते विचारे-सर्वथा प्रकारसें, पराधिन हो जानेसें, उनके कुछ भी वसमें ही न रहाथा ? जब पीछेसें सुवर्षा हुये वाद, ते दीवाने लोकोने, सुवर्षा के पानीको पिया-तब ते होंसमें आके-बडा पश्चात्ताप ही करने लगेंकि-अहो हमने वडा ही अनुचितपणा किया कि-जो हमारा सर्व प्रकारसें--रक्षण करने वाला, और हमारा परमोपकारी, हमारा शिरके-मुगट समान, हमारा मालिककाभी हम तिरस्कार करनेकी बुद्धिवाले हो गये ? धिकार पडो हमारा जन्म जीवतरमें, इत्यादिक अनेक प्रकारका-पश्चात्तापसें, और ते उपकारी राजाकी-क्षमा चाहीने, और अपना परमोपकारी राजाकी साथ प्रीतिको-धारण करतेंहुयें, स्वछ, और सरल-न्यायनीतिका मार्गको पकडकर, अपना शुद्धव्यवहार मार्ग करनेको, तत्परहो गये। हेभव्यपुरुषो ?

यह दृष्टांत देनेका-यह तात्पर्य है कि, जिनेश्वर देवकेहीं सदृश-यह जिनमूर्त्तिको, सिद्धांतकारोंने-जगें जगें पर वर्ण किई हुई है.

और ते तीर्थंकरो है सो—हमारा परमोपकारी, राजाओंकेभी महाराजाओंके सदृश है।

और हम अज्ञानांधोंको-सूर्यका प्रकाश सदृश मोक्षमार्गके-अपूर्व तत्त्वोंको-दिखानेवाले होनेसें हमारा परमोपकारी हुये है।

और हम अघोर संसारके महाभयमें पडे हुयेको, ते तीर्थंकरो सर्वप्रकारका उपद्रवसें रक्षणकरने वालेही है।

परंतु हमलोक अनंत संसारमें परिभ्रमण करतेहुयें आजतक विपरीत पुरुषोंकी वाणीरूप-पानीका, पान करनेसें-दिवाने बने हुये, तीर्थंकर महाराजाओंकी-अवज्ञाकरनेमें-कुछभी विचार नहीं करते आये है।

क्योंकि-कोई तेसी विपरीत वाणीरूप-पानीका, पानकरनेसें, तीर्थंकरोंके वचनरूप अमृतका पानको-जेर तुलसमजतेथे? जैसें शीतल पानीका स्पर्शको कोइपुरुष दाहतुल्य समजें, और सोनाकी चिजको पीतलजानके, अंगीकारको न करे? तैसेंहीहम वीतराग देवकाभी नतो१नामलेके भक्तिकरनेकी इछाकरतेथें, और नतो तेओंकी २मूर्त्तिकीभी भक्ति करनेकी इछा करतेथें,

और नतो ते तीर्थंकरोंकी ३बालकरूप पूर्व अवस्थाकी, और मृतक देहरूप अपर अवस्थाकीभी-भक्तिकरनेको, देवताओंकीतरां शक्तिको धरावतेथे, तो पिछे साक्षात्‌रूप ४तीर्थंकरोंकी भक्तिकरनेको कहांसें भाग्यशाली बनने वाले थें? इसीवास्तेही हम-चार गतिरूप संसारमें-परिभ्रमण करते फिरतेथें।

परंतु जो कदाच हम मनुष्यका भवकोपाके, और जैनधर्मका आश्रयकोलेकेभी ते तीर्थंकरोंकी भक्ति चार निक्षेपोंका विषयसें, योग्यता प्रमाणे, और हमारी शक्तिके प्रमाणसें। करनेको भाग्यशाली न बनेगें तो हम हमारा कल्याण अनंत संसारका परिभ्रमण करनेसेंभी-न करसकेंगे। इस वास्ते हेभव्य पुरुषो। यह अमूल्यरूप मनुष्यका

जन्मको–प्राप्त होके, गणधरादि पुरुषोंने दिखाई हुई, तीर्थकरोंकी–मूर्त्तिकी भक्तिकरनेसें, कोई प्रकारसें मत चुको, उसमेंभी जो तत्त्व-रहित संसारी पुरुषों है सो, सदाकाल–महा आरंभमें फसें हुये होनेसें, तीर्थकरोंकी—मूर्त्तिकी भक्तिसें, विमुख होते है सोतो, भवसमुद्रमें डुबते हुये समकितकी प्राप्तिका कारणरूप जिनमूर्त्तिकी भक्ति रूपका, महान् जाहजको छोडकरके–अपनी भुजाओंको–वृथाही पछाडता है ? इहांपर इतनाही इसाराकरके—में–मेरा लेखकी समाप्ति करता हुं । सुज्ञेषुकिं अधिक विस्तरेण ॥

हमारे ढूंढक भाइयांके–संसार खाताका स्वरूप, लिखते है ॥

पाठक वर्ग ! हमारे ढूंढक भाईओ, थोडा वखत पहिले, गणधरादिक महा पुरुषोंके वचनसें–विपरीत होके, कोई ऐसी विलक्षण प्रकारकी गेर समजको पुहचेथे कि–मूर्त्तिसें कुछ फायदा ही नहीं होता है ।

परंतु अब यह नवीन प्रकारके जमानेमें, देश परदेशका अधिक व्यवहार हो जानेसें, चारों ही दिशामें मंदिर, मूर्त्तिका, पूजन करने वालोंका ही प्रचार विशेष देखके, अजान वर्ग है सो भी मूर्त्तिसें कुछने कुछ, फायदा होनेका संभव है, ऐसा सामान्य प्रकारसेंभी समजनेको लगे है ॥

परंतु आश्चर्य यही होता है कि–जैन धर्मका सनातन पणेसें दावा करने वाली, पंडिता ढूंढनी पार्वतीजी, अपना सत्यार्थ ग्रंथका पृष्ठ. ३४ में, लिखती है कि—१ स्त्रीकी मूर्त्तिको देखके तो–प्रवी कामियांका काम जागता होगा ॥

ऐसा लिखके फिर हमको प्रश्न करती है कि-भगवानकी मूर्त्तिको देखके, किस २ को वैराग्य हुवा, सो बताओ ? ॥

विचार—इस लेखमें स्त्रीके नाम मात्रका, उच्चारण करनेसें, कामीयांको काम नहीं जागे। इस प्रकारकी सिद्धि करके, मात्र स्त्रीकी मूर्त्तिको ही देखनेसें, कामियांको काम जागे। ऐसा लिखा।

और भगवानका तो नाम मात्रसें ही, हमारे ढूंढक भाईयांका, वैराग्य निचूड जावे। मात्र भगवानकी मूर्त्तिको ही देखनेसें हमारे ढूंढक भाईयांका वैराग्य शुक जावे। यह जो ढूंढनीजीने विपरीत पणे लिखके दिखाया है, क्या उसका नाम संसार खाता मान्या है ? ॥ यह संसारका खाता, हमको किस प्रकारसें समजना ? ॥ १ ॥

फिर पृष्ट. ३८ में—ढूंढनीजी लिखती है कि, २ ज्ञाता सूत्रमें—मल्लादिन कुमारने, चित्र शालीमें—मल्लिकुमारीकी मूर्त्तिको देखके, लज्जा पाई, अदब उठाया, और चित्रकार पै-क्रोध किया, लिखा है ॥

विचार—उस मल्लादिन कुमारने, एक स्त्री मात्रकी-मूर्त्तिको देखके, लज्जा पाई, अदब भी उठाया। और हम तीर्थंकरोंके ही भक्त होके, उनोंकी ही-मूर्त्तियांकी, वे अदवी करनेवाले, किस प्रकारके निर्लज्ज गिने जावेगे ? ।

और उस मल्लादिन कुमारने, कोई कारणसर-चित्रकार पर ही क्रोध किया, हम है सो हमारा परमोपकारी तीर्थंकरोंकी मूर्त्तियां पर ही, कारण विना-क्रोध करके, हमारा आत्माको ही महा मलीनरूप बनाते है। क्या ? हमारे ढूंढक भाईयांने इस प्रकारका

संसार खाता मान्या है ? । किस प्रकारका ज्ञानकी खूबी समजनी ? ॥ २ ॥

फिर सत्यार्थ पृष्ट. ४० में, ढूंढनीजी लिखती है कि ३ राम चारित्रमें वज्र करणने, अंगूठीमें मूर्त्ति कराई । परंतु वह सब-उच्च नीच कर्म, मिथ्यात्वादि, पुण्य पापका स्वरूप दिखानेके-संबंधमें, कथन आता है । इत्यादि ॥

विचार-राम लक्ष्मणके वारेमें, सो वज्रकरण राजा, अपना स्वामी सिंहोदर राजाको भी-नमस्कार नहीं करनेंकी इछासें, मात्र निर्मल समकितका पालन करनेके वास्ते, वारमा श्री वासुपूज्य स्वामिकी मूर्त्तिको, अपनी अंगूठीमें रखके, हमेशां दरसन करता रहा, सो तो हमारे ढूंढकोंका, उंच नीच पुण्य पापादि गपड सपड॥

और वही तीर्थंकरोंकी परम पवित्र मूर्त्तिसें-द्वेष भाव करके, हमारे ढूंढक भाइओ--अपना आत्माको, महा मलीन करते रहे है, क्या उसका नाम संसार खाता मान्या है ? नजाने किस प्रकार के संसार खातेका स्वरूप है ? ॥ ३ ॥

फिर सत्यार्थ. पृष्ट. ४२ में-ढूंढनीजी लिखती है कि, मित्रकी मूर्त्तिको देखके-प्रेम, जागता है, यह तो हम भी मानते है । यदि लडपडे तो-उसी मूर्त्तिको देखके, क्रोध-जागता है ॥ ४ ॥

विचार-जैसें मित्रकी मूर्त्तिसें प्रेम, तैसें हमारे ढूंढक भाईओने, मिथ्यात्व के साथ-गाढ प्रीति करके, पितरादिक मिथ्यात्वी देवोंकी मूर्त्ति पूजासें, क्या अपना स्वार्थ, सिद्ध कर लेनेका-मान लिया है ? और लडपडे तो-उसी मूर्त्तिसें (मित्रकी मूर्त्तिसें) द्वेष, तैसेंही तीर्थंकरोंके साथ गुप्तपणे, हृदयमें-द्वेषभाव रखके, उनोंकी मूर्त्तियां-की-अवज्ञा करनेको, तत्पर हुये है ? क्या उसका नाम-संसार खाता, मान्या है ? ४ ॥

॥ फिर. सत्यार्थ. पृष्ठ. ५१ में-ढूंढनीजीने, लिखा है कि-५ स्थापनारूप अक्षरोंसें, ज्ञान होना, किस भूलसें कहते हो ? ॥ ५ ॥

विचार-जब अक्षरोंसें, ज्ञान ही नहीं होता है, तो क्या हमारे ढूंढक भाईओ, सर्वथा प्रकारसें-नास्तिक रूप होके, उनोंने मान्य किये हुये, बत्रीश सूत्रोंके-अक्षरोंसेभी, कुछ ज्ञान होनेका, नहीं मानके, तीर्थकरोंकी-सर्वथा प्रकारसें, अवज्ञा करनेको-तत्पर हुये है ? क्या उसका नाम संसार खाता मान्या है ? ॥ ५ ॥

फिर. सत्यार्थ. पृष्ठ. ६१ मे-ढूंढनीजीने लिखा है कि-६ हमने भी-बडे बडे पंडित, जो विशेषकर भक्ति अंगको-मुख्य रखते है, उन्होंसें सुना है कि यावत् काल-ज्ञान नहीं, तावत्काल-मूर्त्ति पूजन है । और कई जगह लिखाभी देखनेमें आया है ॥ ६ ॥

विचार—जिन मूर्त्तिको-पूजन करनेका, ढूंढनीजीने-बडे बडे पंडितोंसे तो सुना, और जैन सिद्धांतोंमें-लिखा हुवाभी देखा, तो भी ते सर्व बडे बडे पंडितोंकी, और ते सर्व शास्त्रोंकी-अवज्ञा करके, और अपना ही-परम पूज्य, तीर्थकरोंकी-मूर्त्तिकी, अवज्ञा करके, और-पितरादिक, मिथ्यात्वी देवोंकी-मूर्त्तिका पूजनकी, सिद्धि करके, अपनाही लेखपर कुचा फिराते हो ? क्या उनका नाम-संसार खाता है, कि-कोई दूसरा प्रकारका, संसार खाता है ? ॥ ६ ॥

॥ फिर. सत्यार्थ. पृष्ट. ६९ में-ढूंढनीजीने लिखा है कि-७ देवलोकमें-जिन प्रतिमाओंको, समदृष्टि भी पूजते है, और मिथ्यादृष्टिभी पूजते है, कुछ समदृष्टियांका-नियम, नहीं है ॥ ७ ॥

विचार—समदृष्टि जीवतो, इस पंचमाकलमें भी-तीर्थकरोंकी

मूर्त्तिका पूजन किये विना, रोटीभी नहीं खाते है। परंतु वीतरागी मूर्त्तिका अलौकिक भव्य स्वरूप देखके, निकट भवी मिथ्या दृष्टि जीवों है, उनोंकाभी पूजन करनेका-भाव, हो जाता है। और बडे बडे तीर्थोके उपर जाके सेंकडो लोक-पूजन भी करते है। सो तो उनोंका भव्यपणाका लक्षण है। तो क्या वही परम पवित्र-जिन मूर्त्तिके, निंदक वनाने, उनका नाम, संसार खाता है कि-कोई दूसरा प्रकारका, संसार खाता है ? ॥ ७ ॥

॥ फिर. सत्यार्थ-पृष्ठ. ६८ में-ढूंढनीजीने लिखा है कि-८ मूर्त्तिको धरके, श्रुतिभी लगानी-नहीं चाहिये ॥ ८ ॥

विचार—पितरादिक, और यक्षादिक, मिथ्यात्वी देवोंके-हमारे ढूंढक श्रावक भाईयांको भक्त वनाके, उनोंकी प्रतिमाका पूजन, षट्-कायाका आरंभसेती फल फूलादिकसें-कराके, तीर्थंकर भगवानकी परम पवित्र मूर्त्तिमें, श्रुति मात्र लगानेका भी-निषेध करते है ? सोही संसार खाते के-स्वरूप वाले है कि, कोई दूसरे है ? यह भी एक विचार करने जैसा ही है ॥ ८ ॥

फिर. पृष्ठ. ३७ में ढूंढनीजीने लिखा है कि-९ असल, और नकलका-ज्ञान तो, पशु, पक्षीभी-रखते है। ऐसा लिखके-एक सवैया भी लिखा है ॥ ९ ॥

विचार-हमारे ढूंढक भाईओ, असल जो त्रिलोकीके नाथ-वीतराग देव है, उनकी परम पवित्र-मूर्त्तिका ज्ञान पशुकीतरां नहीं करते हुये, जो मिथ्यात्वी यक्षादिक-क्रूर देवताओ है, उनोंकी मूर्त्तियांमें भ्रमित होके, वीर भगवानके परम श्रावकोंकोभी, पूजानेको तत्पर हुये है ? क्या उनका नाम-संसार खाता मान्या है ? ॥ ९ ॥

फिर. पृष्ठ. ४३ में-ढूंढनीजीने लिखा है कि-१० भगवानकी-

मूर्त्तिको देखके, कोई खुश हो जांय तो हो जाय। परंतु-नमस्कार, कौन विद्वान् करेगा? और दाल चावलादि, कौन विद्वान्-चढावेगा? ॥ १० ॥

विचार—वीतराग देवकी-परम शांत मूर्त्तिको देखके, हमारे ढूंढक भाईओ-खुशभी हो जाय, तोभी नमस्कार-नहीं करते हुये, और यक्षादिकोंकी क्रूर मूर्त्तिसें, खुश हुये विनाभी-उनके आगे षट् कायाका आरंभादिक सर्व कुछ करोनेको तत्पर हुये हैं? क्या उसका नाम संसार खाता मान्या है? ॥ १० ॥

फिर. पृष्ठ. ४४ में. ढूंढनीजीने लिखा है कि–११ हम मूर्त्ति मानते है, परंतु मूर्त्तिका-पूजन, नहीं मानते है ॥ ११ ॥

विचार—हमारे ढूंढक भाईओ इस प्रकारसें, मूर्त्तिपूजनका-सर्वथा प्रकारसें-निषेधकरके, द्रौपदीजी परम श्राविकाके पाससें-जिन मूर्त्तिका पूजनको छुडवायके, श्रावकोंको नहीं इछित ऐसा, मिथ्यात्वी कामदेव है उनकी मूर्त्तिको-पूजानेको, तत्पर हुये?। और वीर भगवानके-परम श्रावकोंकी पाससें, दररोजका जिनेश्वर देवकी-मूर्त्तिका पूजन, छुडवायके, मिथ्यात्वी पितर, दादेयां, भूतादिकोंकी -प्रतिमा पूजानेको, तत्पर हुये?। क्या उसका नाम संसार खाता है? ॥ ११ ॥

फिर. पृष्ठ. ६७ मे, ढूंढनीजीने लिखा हैकि-सूत्रोंमे तो, मूर्त्तिपूजा-कहीं नहीं लिखा है, यदि लिखा है तो हम भी दिखाओ ॥ १२ ॥

विचार—ढूंढनीजीको, जिनेश्वर देवकी मूर्त्तिके बदलेमें-द्रौपदीजिके पाठमें, काम देवकी-मूर्त्तिका भास हो गया?। और

अंवडजीके पाठमें-सम्यक्त्व धर्मादिक दिख पडा ? । और जंघाचारण के पाठमें-ज्ञानका ढेर, दिख पडा ?। और चमरेंद्रके पाठमें-चैत्य के वदलेमें चैत्यपद, दिख पडा ?। और वीरभगवान के-परमश्रावकों का, दररोजके जिनपूजनमें-पितर,दादेयां, भूत, यक्षादिक, देवताओ दिखपडे ?। और उवाईसूत्रका-वहुवेअरिहंत चेइय, कापाठ तो दिखाही नहीं । ऐसें पंचम स्वमका, महानिशीथका, विवाह चूलिया सूत्रका, इत्यादिक जगें जगेंपर, विपरीतही विपरीत-लिखके, हमको प्रश्न पुछती है ?। क्या इसका नाम-संसारखाता, मान रखा है?।।१२

फिर. पृष्ट. ७० में-ढूंढनीजीने लिखा है कि-१३ नमोथ्थुणं, के पाठमें तर्क करोंगे तो, उत्तर यह है कि-पूर्वक भावसे, मालूम होता है कि-देवता परंपरा व्यवहारसें, कहते आते है ।।१३।।

विचार—जैसें देवताओ, नमोथ्थुणं कापाठ, परंपराके व्यवहारसें—जिन प्रतिमाओके आगे, पढते चले आते है । तैसेंही श्रावकोंके कूलमेंभी—परंपरासें, आज तक-जिनप्रतिमाके आगेही, नमोथ्थुणं,का पाठ पढ्याजाता है । उस परंपराका अर्थको, उलटाके-द्रौपदीजी श्राविकाके पास, काम देवकी मूर्त्तिके आगे, अयोग्यपणे-नमोथ्थुणंका पाठ,पढाना सरु करवाया ? क्या उसका नाम-संसार खाता मान रखा है ? ॥ १३ ॥

फिर. पृष्ट. १३८ में. ढूंढनीजीने लिखा है कि-१४ मूर्त्तिपूजनमें षट्कायारंभादि दोष है ॥

और. पृष्ट. १२० में लिखा है कि-दूसरा वडा दोप मिथ्यात्वका है । क्योंकि जडको चेतन मान कर, मस्तक-जूकाना, यह मिथ्या है ॥ १४ ॥

विचार-यह ढूंढनीजी इस प्रकारसें, अपना परमपूज्य तीर्थंकरोंकी ही-परम पवित्र, मूर्त्तिका पूजनको, निंदती हुई। और खास-जो मिथ्यात्वी क्रूर देवोकि, यक्ष, भूतादिक है, उनकी जड स्वरूपकी मूर्त्तिमें-चेतनको, मनातीहुई। और षट् कायाका आरंभसें पूजाको-भी कराती हुई। और ते जड स्वरूपकी मूर्त्तियांके आगे, हमारे भोदू ढूंढक भाईयांका मस्तकभी घिसानेको तत्परहोती है ?। क्या उसका नाम-संसारखाता, मान्या है? ॥१४॥

॥ फिर. पृष्ट. ७९ में—ढूंढनीजीने लिखा है कि, १५ हम देखते है कि, सूत्रोंमें—ठाम ठाम, जिन पदार्थोंसें—हमारा विशेष करके, आत्मीय स्वार्थ भी—सिद्ध नहीं होता है, उनका विस्तार सैंकडे—पृष्टोंपरं, (सुधर्म स्वामीजीने) लिख धरा है। ऐसा लिखके—ज्ञाता सूत्रका, जीवाभिगम सूत्रका, और रायपसेनी सूत्रका भी सेंकडो पृष्टोंका मूलपाठोकोही, निरर्थक-ठहराये है ॥ १५ ॥

विचार—ढूंढनीजी प्रथम सर्व आचार्योंका लेखको-निरर्थक रूप, गपौडे-ठहरायके, अब जैन शासनके नायक भूत,सुधर्मा स्वामीजीका लेखसें भी, अपना—स्वार्थकी सिद्धिकों, नहीं मानती हुई, केवल अपना ही शासनको प्रगट करके, ढूंढनीजी आप भवचक्रमें गीरती हुई, हमारे भोदू ढूंढक श्रावक भाइयांको भी, डुबानेको तत्पर हुई है ?। क्या इसका नाम संसार खातामान्या है ?॥

फिर. पृष्ट. १४४ में-ढूंढनीजीने लिखा है कि—१६. तहा किल अम्हे—अरिहंताणं, भगवंताणं, गंधमल्लादि ॥

पृष्ट. १४५ में-अर्थ-तिम निश्चय कोई कहे कि मैं अरिहंत भगवंतकी मूर्त्तिका गंधि मालादि ॥ १६ ॥

विचार—इस महानिशीथ सूत्रका पाठमें, तीर्थंकरोंकी मूर्त्ति

का-बोधं, अरिहंत, भगवंत, का पाठ मात्रसें ही-कराया है । और ढूंढनीजीने भी-इस सूत्र पाठका अर्थ, जिनमूर्त्तिका ही करके दिखाया है । और-जिन प्रतिमा जिन सारखी, ऐसा जो सिद्धांतोका लेख है, उनकी भी सिद्धि, ढूंढनीजीके लेखसें ही होती है ।

तो भी ढूंढनीजी तीर्थंकरोकी, मूर्त्तिको पथ्थर, पहाड, लिखके, अवज्ञा करती हुई, और यक्षादिकोंकी मूर्त्तिको पूजाती हुई, आप ही ढूंढनीजी भव समुद्रमें डुवती हुई, और हमारे भोले ढूंढक श्रावक भाइयोंको भी, भवसमुद्रमें लेजाती है ? ।

क्या इसका नाम संसार खाता मान्या है ? ॥ १६ ॥

॥ फिर सत्यार्थ पृष्ट. १४३ में, जो पंचम स्वप्नका पाठ है, उस पाठसें-साधुओंको ही मूर्त्तिपूजाका निषेध किंया गया है । उस मूर्त्तिपूजाका सर्वथा प्रकारसें-निषेध करके, पृष्ट. १४४ में-मति कल्पनासें-मूर्त्तिपूजाके उपदेशकोंको, कुमार्गमें गेरनेवाले लिखे है॥१७ विचार-ढूंढनीजीने इस पंचम स्वप्नका पाठार्थमें, अपनी मति कल्पनासें-मूर्त्तिपूजाके उपदेशकोंको, कुमार्गमें-गेरनेवाले लिखे ।

परंतु सत्यार्थ पृष्ट. १२६ में-वीरभगवानके परम श्रावकोंकी पाससें, तद्दन अयोग्यपणे, खास जो मिथ्यात्वी-पितर, भूतादिक है, उनोंकी मूर्त्तिपूजा षट् कायाका आरंभसें-कराती हुई, ते परम श्रावकोंको-कुमार्गमें गिरनेका, जूठा कलंक देके, ढूंढनी ही आप कुमार्गमें पडती है ? । क्या उसका नाम संसार-खाता, मान्या है ? १७.

फिर. सत्यार्थ पृष्ट. १४६ में-साधुओंको मूर्त्तिपूजाका निषेध रूप, महा निशीथका पाठार्थमें, ढूंढनजी जिन मूर्त्तिपूजक श्रावकोंको—पाषाणो पासकका, संबोधनसें-हास्य करती हुई, और अपनी मति कल्पनासें जिनमूर्त्तिपूजाके उपदेशकोंको, अनंत संसारी लिख मारे है ॥ १८ ॥

विचार—तीर्थंकरोंकी भक्तिसें श्रावक जिन मूर्त्तिपूजे, सो तो अनंत संसारी। और तीर्थंकरोंकी भक्ति करानेके वास्ते, उपदेश देनेवाले–गणधरादिक सर्व साधु, सो भी अनंत संसारी॥

परंतु जैनोंको पूजन करनेका वर्ज्य ऐसी–मिथ्यात्वी कामदेवकी, जड स्वरूप पथ्थरकी मूर्त्ति, यक्षादिकोंकी जड स्वरूप पथ्थरकी मूर्त्ति, और अदृश्य स्वरूप पितरादिकोंकी जडरूप मूर्त्ति, उनोंका पूजनकी सिद्धि करके देनेवाली, और वीरभगवानके परम श्रावकोंका-जिन पूजन छुडवायके, महा मिथ्यात्वी–पितरादिकोंको पूजानेवाली, ऐसी यह विवेक शून्या ढूंढनीजी, तीर्थंकरोंके साथ–वैरभावके योगसें, अनंत संसारमें गीरती हुई, ते वीरभगवानके परम श्रावकोंको भी, गेरनेका रस्ता ढूंढ रही है ? । क्या उसका नाम संसारखाता मान्या है ! १८

॥ फिर. पृष्ट. १४८ में, विवाह चूलिया सूत्रका पाठार्थमें, ढूंढनीजी लिखती है कि–१९

हे भगवन् मनुष्य लोकमें, कितने प्रकारकी पडिमा (मूर्त्ति) कही है, हे गौतम–अनेक प्रकारकी कहीं है, ऋषभादि महावीर (वर्द्धमान) पर्यंत २४ तीर्थंकरोंकी।

अतीत, अनागत—चोवीस तीर्थंकरोंकी, पडिमा। राजाओंकी पडिमा। यक्षोंको पडिमा। भूतोंकी पडिमा। जाव धूमकेतुकी पडिमा॥ हे भगवन् जिन पडिमाकी–वंदना करे, पूजा करे। हा गौतम–वंदे, पूजे॥ १९॥

विचार—नंदीसूत्रका मूल पाठमें–सूत्रोंकी गीनतीमें, आयाहुवा इस विवाह चूलिया, सूत्रका पाठार्थमें–यक्षादिकोंके प्रतिमाकी उपेक्षा करके, मात्र तीनोंचोवीसीके (७२) वहुतेर तीर्थंकरोंकी–प्रतिमाओंका, वंदन, और पूजन, करणेके विषयमें–गौतम स्वामीजीनें, प्र-

श्नकिया है ॥ इसप्रश्नके उत्तरमें-भगवान् महावीर स्वामीजीने, कहा हैकि-हे गौतम, तीर्थंकरोंकी प्रतिमाओंको-वांदेभी, और पूजेभी, ऐसीआज्ञा, खुदभगवान-अपने मुखसें, फरमा रहे है । और ढूंढनी-जीभी—इसपाठका अर्थ, इसी प्रकारसें करती है। तोभी परमार्थ को समजे विना, उस आज्ञाका लोपकरके, जिस यक्षादिकोंकी प्रतिमा, श्रावकोंको पूजनेके योग्य नहीं है, उनोंकी-(अर्थात्यक्षादिकोंकी) प्रतिमा पूजनकी सिद्धिकरके, जगें जगें पर-दिखाती हुई । और परमपूज्य तीर्थंकरोंकी प्रतिमाका-वंदन, पूजनसें, हटातीहुई । और तीर्थंकरोंकी प्रतिमाओंका-वंदन, पूजनका, उपदेश देनेवाले श्री वीरभगवान है उनकोभी, अनंत संसारका-कलंक, मूढतापणे चढाती हुई। ऐसा विपरीत बोधसें यह ढूंढनीजी-महा भवचक्रमें, जंपापात करतीहुई । और दूसरे भव्य प्राणियोंकोभी—महा भवचक्रमें, गेरनेको तत्पर हुई है ? क्या इसका नाम—संसारखाता, मान्या है ?॥ १९ ॥

हम हमारे ढूंढकभाईयोंका, विपरीत विचार-कहांतक लिख२के दिखावें, क्यौंकि—१ सर्वलोक व्यवहारसेभी विपरीत । २ जैन धर्मसेंभी विपरीत । ३ जैनाचार्योंसेंभी विपरीत । ४ गणधर महाराजाओंसेंभी विपरीत । ५जैनके सर्वसिद्धांतोंसेंभी विपरीत । छेवटमें ६ सर्व तीर्थंकरोंसेंभी विपरीत । केवल माते हुये सांढकीतरां—मथ्था उचाकरके, फिरना । नतो दिखाई हुई युक्तिका विचारकरना, और नतो जैन सिद्धांतकारोकी तरफभी देखना, मात्र जो मनमें आजावे सोही-अनघड पथ्थर, फेंकमारना । क्यौंकि-संसारखाता, यह शब्दका प्रचार, नतो कोई जैन सिद्धांतकारने लिखा है, और नतो कोई लौकिक शास्त्रोंमेंभी प्रचलित है, केवल यह-कर्ण कटुक, वाक्य है सोही-हमारे ढूंढकभाईयोंको-संसारमें भटकानेकी, सूचना -कर

रहा है कि–शकुन पहिला शब्द आगला, । क्योंकि हरणहुयेली द्रौपदीजी लेनेको, जातेहुये पांडवोंने–कृष्णजीको, मात्र इतनाही कहाथाकि, हम हार जावेतो,तुमने सहाय्यकरना । उसवखतही, कृष्णजीने कहाकि–तुम पहिलेही, हारजानेकाशब्द निकालतेहो–तो पिछे, जयमिलाके कहांसें आनेवालेहो? ऐसा निश्चयकिया । और छेवटमें पद्मोत्तर राजाकी साथ, लडाई करतेहुये पांचे पांडवो हारगये, और कृष्णजीको ही जय मिलादेनी पडीथी ।

तैसें ही हमारे ढूंढकभाईओ, जैनमतका आश्रय लेके, सर्व परम गुरुओंकी निंदा । और तीर्थंकर गणधरोंकी भी अवज्ञा । और जैनके सर्व सिद्धांतोंको जूठ ठहराना । देवताओंने तीर्थंकरोंकी भक्तिभावसें, विधि सहित सत्तर भेदसें पूजा किई–सो भी संसारखाता । और ते जिन मूर्त्तिओंके आगे–नमोथ्थुणं, का पाठ पढा सो भी संसारखाता ।

इसी प्रकारसें-द्रौपदीजी परम श्राविकाने विधि सहित जिन प्रतिमाका पूजन करके नमोथ्थुणंका, पाठ पढा, सो भी संसारखाता । वीरभगवानके-परमश्रावकोने, जो नित्य [अर्थात् दररोज) तीर्थंकर देवोंकी–प्रतिमाओंकी भक्तिपूर्वक सेवा किई, सो भी संसारखाता । ढूंढनीजीने–यक्षादिकोकी जडरूप पथ्थरकी क्रूर मूर्त्तिकी पूजा कराई, सो तो ढूंढनीजीका स्वार्थकी सिद्धिको करनेवाली । मित्रकी मूर्त्तिसें प्रेम, लड पडे तो उसी मूर्त्तिसें द्वेष, इत्यादिक सर्व जगेंपर–विपरीत ही विपरीत, समजायके जिनमूर्त्तिके साथ, ढूंढनीजीने–इतना द्वेष, प्रज्वलित क्रिया है कि–इस लोक परलोकका, महा फलकी प्राप्तिको देनेवाला, जिन मूर्त्तिका पूजनको, छुडवायके हमारे भोंदू ढूंढक श्रावकभाइयांको, केवल तुछरूप धन

पुत्रादिक है उनकी–लालच देके, मिथ्यात्वी पूर्ण भद्रादिक यक्षों-की–क्रूर मूर्त्ति, पूजानेको तत्पर हुई। और वीरभगवानके, परम श्रावकोंको-किंचित् मात्रका लाभके विना भी पितर, दादेयां; भू-तादिकोंकी-मूर्त्तियां, षट् कायाका आरंभसें पूजानेको तत्पर हुई। और द्रौपदीजीकी पास–प्रयोजनके विना ही, कामदेवकी मूर्त्ति-कापूजन, करानेको तत्पर हुई।

मात्र परम पूज्य तीर्थंकरोंकी मूर्त्तिके वास्ते कहती है कि-उस-में श्रुतिमात्र भी मत लगाओ। वंदना नमस्कार भी मत करो। और वंदना नमस्कार करनेका बतलानेवाले, तीर्थंकर, गणधर, तुमको-मतवाले, पिलानेवाले है। इत्यादिक जो जो मनमें आया, सो ही बकवाद करके, अपना संसारखाताकी वृद्धि करती हुई, भोदू लोकोको भी, यही संसारखाताका ही शब्दको सिखाती है।

और केवल अपना जो-परमोपकारी, तीर्थंकर भगवान है, उनकीही परमशांत मूर्त्तिका पूजनसें, श्रावकोंको हटाती है। और–जो श्रावकोंके वास्ते तद्न अयोग्य पितरादिक, यक्षादिक, मिथ्या-त्वी क्रूर देवताओ है, उनकी मूर्त्तिका पूजनकी-सिद्धिकरके, दिख-लाती है॥

और सर्वपदार्थकी साथ–व्यापक स्वरूप, जो चार निक्षेप, जैन सिद्धांतोंमें–सत्य स्वरूपसें कहे गये है, उस विषयका विचार-को-परंपराका गुरुके पास पढे विना, और ते चार निक्षेपके विष यका हेय, ज्ञेय, और उपादेयके स्वरूपसें, वस्तुभावका तात्पर्यको, समजे विना-निरर्थ, और उपयोग विनाका, लिखके। और गणधरा-दिक–सर्वमहापुरुषोंको, गपौडेमारनेवाले ठहरायके, अपना महामूढ पंथकी सिद्धिकरके दिखाती है? ।-

और इस प्रकारसें प्रथमके त्रण निक्षेपको-निरर्थक, ठहरायके, जैनधर्मके१सर्व सिद्धांतोका, जैनधर्मकी २सर्वक्रियाओका, और जैन धर्मके ३सर्व नियमोका, और जैनधर्मके-साधु, श्रावक संबंधी-जितने व्रतो, जितनी क्रियाओ, उस-सर्वका, लोपकरकेही दिखाती है॥

जैसें कि-१ नाम निक्षेपका विपयभूत, आवश्यक, दश वैंकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांगादिक-सर्व जैन सिद्धांतोका, नाम भी-निरर्थक । १ । और २ उस पुस्तकोमें लिखी हुई-स्थापना-निक्षेपका विषयभूत, अक्षरोकी पंक्ति, सो भी उपयोग विनाकी निरर्थकरूप २ । और सामान्य मात्रसें-३ द्रव्य निक्षेपका विपयभूत जैन धर्मके सर्व पुस्तको-सो भी निरर्थक ३ । जैसें कि ढूंढनीजीका जूठा आशयको, पकड करके-साह वाडीलालने अपना बनाया हुवा-धर्मना दरवाजा, नामके, पुस्तकका पृष्ठ. ६३ में, प्रगटपणे लिखके दिखायाथा ॥

और पृष्ठ. १४ में, लिखाथा कि-आ चार निक्षेप, जैन मतमां उपयोगी भाग, भजवे छे। एनी गेर समजथी-निरारंभी जैन वर्गमां, एक मूर्त्तिपूजक पंथ, उभो थयो छे, के जेमां-हिंसा, मुख्यत्वे छे ॥

इत्यादिक अने प्रकारका जूठही जूठ आक्षेप करके, तदन हद उपरांतकी, मजलको पुहचकरके-दरवाजाका पृष्ठ. ६८ । ६९ में; लिखा है कि-अरेरे भस्मग्रहना-भ्रमित आचार्योए, मात्र पेटना कारणे, दुधमांथी पौरा विणवा जेवुं काम करी-स्थापना निक्षेप, नो अवलो अर्थ लइ-मूर्त्तिपूजाना; अने ते अंगे थतां बीजां अगणित पापोमां, भोळी दूनीयाने-केवी डुवावी दीधी छे ?। अने डुबेका पाछा उठवाज न पामे तेटला माटे-तेमना उपर, कपोल कल्पित

ग्रंथोनी, केवी त्रासदायक पछेडी औढाडी दीधी छे । पृष्ट. ७० में-भस्मग्रहना संख्याबंध, भूखथी आकूल व्याकूल थयेला आचार्यो, शास्त्रनुं शस्त्र बनावी, ते वडे दूनीयानो शिकार करवामां, फतेह पामे-एमां शुं आश्चर्य ? । परंतु जेओने अंतचक्षु छे, तेमने विचार करवा दो, अने पापखाइमां धकेली देनार सामे-मानसिक टक्कर, लेवादो ॥ इत्यादिक जो मनमें आया सोही अतिनिंद्य वचनसें लिख मारा है॥

परंतु इस ढूंढकभाइको अंतरके चक्षु खुले करनेकी, और मानसिक टक्कर, लेनेकी, भलामण करके, इहांपर हम एकही वात पुछते है कि-हे भाई ढूंढक ! तूने, और तेरी स्वामिनीजीने-स्थापना निक्षेपका विषयभूत, मूर्त्ति मात्रको-निरर्थक, और उपयोग विनाकी, ठहराईथी ? तो पिछे-मिथ्यात्वी यक्षादिक देवोंकी, जड-रूप-निरर्थक, पथ्थरकी क्रूर मूर्त्तिके आगे, तुमने मान्य कीई हुई जो हिंसा है उसको कराके, पूजा करनेवालोंको-धन, पुत्रादि, प्राप्ति होनेका-दिखाती वखते, तुमको कुछ भी विचार न आयाथा ? जो केवल वीतराग देवके परम भक्त श्रावकोंको-हिंसा धर्मी लिख मारते हो ? ॥

हम तो यही समजते है कि, जैन धर्मका-विपरीत बोध होनेसें, तुम ढूंढको जूठे जूठ लिखते हो । और निर्मल जैन तत्त्वोंको भ्रष्टपणा करते हो । और अनाथ भव्यजीवोंको-जैन धर्मसें भ्रष्ट करते हो । सोही तुमेरा-संसार खाता, हमको प्रगटपणे ही मालूम होता है, वाकी दूसरा प्रकारका-संसारखाता, न तो कोइ ग्रंथादिकमे, लिखा हुवा देख्या है ।

और न तो किसी महापुरुषकी पाससें, श्रवण मात्र भी किया हुवा है ॥ किस वास्ते श्रावक धर्मका लोप करके-संसारखाताका, जूठा पोकार उठाते हो ? ॥

पाठकवर्ग ? हमारे ढूंढकभाइओ, दरपणमें विपरीत विचारसें देखनेवाला-अज्ञानी कुकुट (कुकडा) की तरां,अपनी भूलको-नहीं देखते-हुये, महान् महान् पूर्वाचार्योंका-अपूर्व अर्थ रत्नके भंडारा रूप, ग्रंथोंको-गपौडे गपौडे, कहकर निंदते है ? । कभी तो हिंसा धर्मी लिख देते है ? कभी तो मतवाल पीलानेवाले लिख देते है ? परंतु जैन धर्मके तत्त्वोंसे विमुख होके तदन बेशुद्ध बने हुये-हमारे ढूंढकभाइओ, अपना अज्ञानका पडदा खोलके, जैन धर्मके शुद्ध तत्त्वोंकी तरफ-थोडीसी निघा मात्र करके भी, देखते नहीं है ? । मात्र अपना हृदयपर अज्ञानका महान् पडदा लेके, वीतराग देवकी भी निंदा । परम गुरुयांकी भी निंदा करके, जैन धर्मके तत्त्वोंको भी-विपरीत लिखनेमे, अपनी पंडिताइ समजते है ?। न तो अपना पूर्वका लेखका विचार करते है, न तो पिछेके लेखका विचार करते है, और जो मनमें आता है, सोही लिख मारते है ? । ऐसें निकृष्ट विचारवालोंको, हम कहां तक शिक्षा देते रहेंगे ? ।

अब तो कोई उनोंका ही भाग्यकी प्रबलता होनी चाहिये, तब ही पार जावेगा ? इतना ही मात्र लिखके इस संसारखातेका स्वरूपकी भी समाप्ति ही करता हुं ।। इत्यलमति विस्तरेण ।।

।। इति हमारे ढूंढकभाइयांका संसारखातेका स्वरूपकी समाप्ति ।।

॥ प्रतिमामंडन स्तवनसंग्रहः ॥

अनेक महापुरुषों कृत.

॥ संग्रह कर्त्ता ॥

श्रीमद्विजयानंद सूरिशिष्य मुनि अमरविजय.

छपवायके पसिद्ध कर्त्ता.

स्वर्गवासी शा. छगनदास मगनदासके

स्मरणार्थे तेमणा पुत्र चुनीलालजी ॥

आमलनेरा (जिल्ला. खानदेश.)

अमदावाद.

श्री " सत्यविजय " प्रीन्टींग प्रेसमां. शा. सांकळचंद

हरीलाले छाप्युं.

॥ अथ श्रीमद्यशोविजयजीकृत ढूंढकाशिक्षा ॥

जिन, जिन प्रतिमा,वंदन दीसइ, [1]समकितनइ आलावइ। अंग उपासकें प्रगट अरथए, मूरख मनमां नावइरे ॥ कुमती कां प्रतिमा ऊथापी, इमतें शुभ मतिका पीरे, कुमती. मारग लोपे पापीरे, कुमती कां प्रतिमा ऊथापी १ ॥ एह अरथ [2]अंबड अधिकारें, जूओ उवंग ऊवाइ। ए समकितनो मारग मरडी, कहइ दया सी माईरे। कु. । २ ॥ समकित विन सुर दुर गति पाम्यो, अरस विरस आहारी। जूओ जमाली दयाइं न तर्यो, हूओ बहुल संसारीरे। कु. । ३ ॥ [3]चारण मुनि जिन प्रतिमा वंदइ, भाषिउं भगवई अंगें। चैत्यसाषि आलोयणा भाषी, व्यवहारे मनरंगरे। कु. । ४ ॥ प्रतिमानाति फल काउस्सग्गिं, आवश्यकमां भाषिउं। चैत्य अरथ वेयावच मुनिनिं, दसमइ अंगिं दाखिउंरे। कु. । ५ ॥ सूरयाभ सुरें प्रतिमा पूजी,राय पसेणी मांहिं। समकित विन भवजलमां पडतां, दया न साहइ बांहिरे। कु. । ६ ॥ [4]द्रौपदीइं जिन प्रतिमा पूजी, छठइ अंगिं वाचइ। तोस्युं एक दया पोकारी, आणाविन तूं माचइरे। कु. ७ ॥ एक जिन प्रतिमा वंदन द्वेषिं, सूत्र घणां तूं लोपइं। नंदीमां जे आगम संख्या, ते आप मति कां गोपइरे। कु. ८ ॥ [5]जिनपूजा फल दानादिक सम,

---

१ ॥ अरिहंत चेइयाइं, पाठ, आनंदादिक श्रावकोंका समकितके आलावेमें आता है। देखो नेत्रांजन १ भाग पृष्ठ. १०८ में ॥ २ अंबडजीमें भी यही पाठ है। देखो नेत्रांजन १ भाग. पृष्ठ. १०४ से ८ तक ॥ ३ नेत्रांजन १ भाग. पृष्ठ.११७ से १२१ तक ॥ ४ नेत्रांजन १ भाग. पृष्ठ ११० से ११४ तक ॥ ५ नेत्रांजन १ भाग. पृष्ठ. १३२ से १३३ तक ॥

महा निशीथइं लहीइ । अंध परंपर कुमत वासना, तो किम मनमां वहिइरे । कु. । ९ ॥ सिद्धारथराइं जिनपूज्या, कल्प सूत्रमां देखो । आणा शुद्ध दया मानि धरतां, मिलइ सूत्रनो लेखोरे । कु. । १० ॥ स्थावर हिंसा जिन पूजामां, जो तूं देखी धूंजइ । ते पापीने दूर देशथी, जे तुज आवी पूजइरे । कु. । ११ ॥ पडिकमणइ मुनि दान विहारइ, हिंसा दोष अशेष । लाभालाभ विचारी जोतां, प्रतिमामां स्यो द्वेषरे । कु. । १२ ॥ [1]टीका, चूरणी, भाष्य, ऊवेष्यां, ऊवेखी, निर्युक्ति । प्रतिमा कारण सूत्र ऊवेष्यां, दूरी रही तुज मुगतीरे । कु. । १३ ॥ शुद्ध परंपर चाली आवी, प्रतिमा वंदन वाणी । संमूर्छिम जे मूढ न मानइ, तेह अदिठ कल्याणीरे । कु. । १४ ॥ जिन प्रतिमा जिन सरषी जाणइ, पंचांगीना जाण । वाचक जस विजय कहइ ते गिरुआ, किजई तास वषाणरे । कु. । १५ ॥

॥ इति ढूंढकाशिक्षा स्वाध्याय ॥

॥ अथ दूसरी शिक्षाभी लिखते है ॥

श्रीश्रुतदेवी तणइ सुपसाय,प्रणमी सदगुरु पाया । श्री सिद्धांत तणइ अनुसार इ,सीप कहुं सुखदायारे १॥ कुमति कां प्रतिमा ऊथापें, मुग्धलोकनइ भ्रमें पाडी, तूंपिंडभरइ कां पापइंरे । कु. । २॥ सिद्धांत तणइपादे अक्षर अक्षर, प्रतिमानो अधिकार । तुमें जिनप्रतिमा कांइ ऊथापो, तो जास्यो नरक मजारिरे । कु. । ३ ॥ द्रव्य पूजानो फल श्रावकनइ, कहिउंछे फल मोटो । पूर्वाचारय प्रतिमा मानी,तो थाहरोमत षोटोरे कु.।४।। देशविरतिथी होय देवगति,तिहां प्रतिमा पूजे-

---

१ देखो नेत्रांजन १ भाग. पृ. १०४ में से १०८ तक. ॥ देखो नेत्रांजन

वी। ते तो चित्त तुमारें नावें,तो तुमें दूरगति लेवीरे । कु.।५॥ [१]श्रावक अंबड प्रतिमा वंदें,जूओ सूत्र ऊवाइ । सूत्र अरथना अक्षर मरडो, ए मतिथानें किम आईरे ।कु. । ६ ॥ [२]जंघाचारणा विद्याचारण, प्रतिमावंदन चाल्या ।आधिकार ए भगवती बोलें, थें मुरख सहु कालारे । कु. ।७॥ [३]श्रावक आनंदनें आलावें, प्रतिमा वंदइ करजोडी । उपासकें विचारी जोयो, थें कुमतें हियाथी छोडीरे । कु.। ८ ॥ श्री जिनवरना चार निक्षेपा, मानें ते जगसाचा । थापनानें ऊथाप करेंजे,बालबुद्धिनर काचारे । कु. ।९॥ लवाधि प्रयोजन अवधिआवइ, जिमगोचरीइं इरिया । शुद्ध संयम आराधक वोल्या, गुणमणिकेरा दरियारे । कु. । १० ॥ ऋषभादिक जिन 'नाम' लिइं शिव,ठवणा, जिन आकारें। इव्य' जिना ते अतीत अनागत, भावें विहरता साररे । कु. ।११॥ [४]द्रव्य,थापना, जो नवी मानो,तो पोथी मतजालो । भावश्रुत मुखकारण बोलो,तो थाहरो मुखकालोरे ।कु.।१२॥ जिनप्रतिमा जिन कहि बोलावें, सूत्र सिद्धांत विचारो । [५]जिनघर, सिद्धायतन, ना काह्यां, सत्यभाषी गणधारोरे । कु.। १३ ॥

---

१ भाग. पृ, १०७ सें १२१ तक॥

२ नेत्रांजन १. भाग. पृष्ट. ११७ सें १२१ तक ॥

३ ने० १भा. पृष्ट. १०८ में ॥

४ जो स्थापना, और द्रव्य, निक्षेपको, न माने उनको जैन के सूत्रोंकोभी हाथमें लेना नही चाहियें, कारणकि-सूत्रोंमें अक्षरों है सो-स्थापना रूपसें है, और सर्व पुस्तक ' द्रव्यनिक्षेपका, विषयरूपका है ॥

५ जिनघर, सिद्धायतन, यह दोनोंभी नाम,वीतरागका मंदिरके ही गणधर भगवानने कहे है ॥

[1]जिनप्रति प्रत्येकिं धूप ऊखेवइ. द्रौपदी सूरयाभदेवा । ज्ञाता रायपसेणीमांहि, ए अक्षर जो एहवारे । कु. । १४ ॥ 'नमुथ्थुणं' कही शिव सुखमागें, नृत्य करी जिन आगिं । समकित दृष्टिजिन गुणरागें, कां तुज कुमति न भागेरे । कु. । १५ ॥ सूरयाभसुर नाटिक करतां, वचन विराधक न थयो। "अणुजाणह भयवं" इणि अक्षर, आणाराधक सद्दह्योरे । कु. । १६॥ जलयर' थलयर' फूलनां पगरण, जानु प्रमाण समारे। जोयणलगें ए प्रगट अक्षर, समवायांग मजाररे । कु. । १७ ॥ पडिलेहन करतां परमादिं, कह्या छकाय विराधक । उत्तराध्ययनना अध्ययन छवीशमें, कुण दया धरमनो साधक । कु. । १८ ॥ नदी नाहलां ऊतरी चालो,दया किहां नव राखे । थें दयानो मर्म न जाणो, रहस्यो समकित पाखेरे । कु. ! १९ ॥ साधु अनें साधवी वलीए, घडी छमांहिं न फिरवुं । सुषिम वरषा तिहां हो ए, भगवती सूत्र सद्दहवुंरे । कु. । २० ॥ परिपाटी जे धर्म देषाडें, ते कह्या धर्म आराधक । वर्षें वरस पाहिलो धर्मविछेदें, ते जिनवचन विराधक । कु. । २१॥ अत्तागम अनंतरागम वली, परंपरागम जाणो। एतीनें मारगवली लोपें, ते तो मूढ अजाणरे। कु. । २२॥ तुंगीया नगरीना श्रावक दाता, पुण्यवंत ने सौभागी। घरि घरिवें राधो विन मागें, ए कुमती किहांथी लागीरे कू.।२३॥ योग उपधान विना श्रुत भणतां, ए कुबुद्धि तिहां आई । तप जप संयम किरिया छांडें, पूर्व कमाई गमाईरे । कु. । २४ ॥ चउवीश दंडक भगवती भाष्यां, पनर दंडक जिन पूजें । शुभ दृष्टि शुभ भाविं शुभ फल, देषी कुमत मत धूजेरे । कु. ।२५॥ बेंद्री तेंद्री चउरेंद्रीय,पांच थावर नरक निवासी ।

---

१ जैनांजन १भाग. पृ. ११० सें ११४ तक—द्रौपदीजीका विचार है ॥

जे जिन बिंबतुं दरसन करें,ते दंडक नवमां जासीरे । कु. । २६ ॥ व्यंतर ज्योतिषने वैमानिक, तीर्यंच मनुष्य ए जाणी । भुवनपतिना दश ए दंडक,इहां जिनपूज गवाणीरे । कु ।२७॥ श्रीजिन बिंब सेव्यां सुखसंपाति, इंद्रादिक पदरुडां। वंदन पूजन नाटिक करतां, पामे शिव सुख उडारे । कु.२८ ॥ कानो मात्र एक पद ऊथापें, ते कह्या अनंत संसारी । जेतो आखा खंधजलोपें, तिहारी गति छे भारीरे । कु. । २९॥ कूवा आवाडानां पाणी पीउं,कहे अम्हे दया अधिकारी । ए एकवीश पाणीमाहि कह्यां, थेंतो वहुल संसारीरे । कु. ।३०॥ श्री महावीरना गणधर बोलें,प्रतिमा पूज्यां फलरूडां । वंदन'पूजन'नाटिक करतां,निंदा करें ते बूडेरे । (अथवा) जेते मुगति पुहचेंरे) ।कु.।३१॥ आदियुगादि सें चल आवें,देवलनां कमठाण । भरत उद्धार शत्रुंजय कीधो,थेंछो सहु अनियमाणारे ।कु. ।३२॥ आद्रकुमार शय्यंभवभट्टा, प्रतिमा देखी बूंज्या । भद्रबाहु गणधर इणि परे बोले, कठिन कर्म स्युंजूज्योरे । कु. । ३३ ॥ श्रावकने ए सुकृत कमाई, प्रतिमा पूजा अधिकाई । जिन प्रतिमानी निंदा करतां,मति, बुद्धि, शुद्धि,गमाईरे । कु. । ३४ ॥ [1]कठोल धान काचे गोरस जिम्यां,जीवदया किम होई। बेंद्रीनी विराधन करतां, पूर्वकमाई तें खोई रे । कु.। ३५ ॥ सुविहित समाचारीथी टलीया, रति विना रडवडीया । कुमत कदाग्रह नाथे राता,धरमथकी ते पडीयारे ।कु.।३६॥ सोजत मंडन वीर जिनसरे,॥

आगे पद हमारे हाथ.नही आनेसे लिखे नही है. ॥इति समाप्तं ।

---

१ एक धानकी बे फाडी होवे, उसको-कठोल, कहते है । मुंग, चणादि, उस वस्तुकी चिज छास. दही. दुध उष्ण किये विना भेलां करें तो, उसमें तुरत जीवोत्पत्ति होती है । इस वास्ते खानेकी मना है ॥

॥ पुनरपि स्तवनं लिख्यते. ॥

क्यूं जिनप्रतिमा ऊथापेरे, कुमति क्यूं जिनप्रतिमा ऊथापें। अभय कुमारे जिनप्रतिमा भेजी, आद्रकुमारे देखी। जातिस मरण ततषिण उपनो, सूयगडांग सूत्र छे साखीरे, पापी क्यूं जिनप्रतिमा ऊथापें। १॥ सूत्र ठाणांगे चौथे ठाणे, चउ निक्षेपा दाख्या। श्री अनुयोग दुवारे ते पिण, गौतम गणधरें भाख्यारे। पापी, क्युं, । २ ॥ भगवई अंगे शतक वीसमें, उदेशे नवमें आनंदे। [1]जंघाचारण विद्याचारण, जिन पडिमाजई वंदेरे। पापी, क्यूं ।३॥ [2]छठ्ठे अंगे द्रौपदी कुमरी, श्री जिनप्रतिमा पूजे। जिनहर सूत्रे प्रगट पाठए, कुमतिने नहीं सूजेरे। पापी क्यूं। ४॥ उपासक अंगे [3]आनंद श्रावक, समकितने आलावे। अन्न उत्थिया प्रगट पाठए, कुमति अरथ न पावेरे। पापी क्यूं। ५॥ दशमें अंगे प्रश्न व्याकरणे संवर तीजे भाख्यो। निरजरा अर्थे चैत्य कह्यो हैं, सूत्रे इणिपरि दाख्योरे। पापी क्यूं। ६ ॥ सूरयाभे जिनप्रतिमा पूजी, रायपसेणी उवंगे। विजय देवता जीवाभिगमें, सूत्र अर्थ जोवो रंगेरे। पापी क्यूं। । ७ ॥ [4]अरिहंत चैत्य उवाई उपंगे, अंबडने अधिकारें। वंदइ करयइ पाठ निहाली, कुमती कुमत निवारेरे। पापी क्यूं। ८॥ आवश्यक चूर्णी भरत नरेसर, अष्ठापद गिरी आवे। मानोपेत प्रमाणे जिननां, चौवीश बिंब भरावेरे। पापी क्यूं। ९ ॥ शांति जिनेसर पडिमा देखी शय्यंभव पडि वूजे। दश वैकालिक सूत्र चूलिका, कुमति अरथ न

---

१ देखो—नेत्रांजन १ भा. पृष्ट. ११७ सें. १२१ ॥ । २ नेत्रांजन. १ भा. पृष्ट. ११० सें ११४ तक ॥ ३ नेत्रांजन. १ भा. पृष्ट. १०८ में ॥ । ४ नेत्रांजन. १ भा. पृष्ट. १०४ सें १०८ तक ॥

सूजेरे । पापी क्यूं । १० ॥ शुभ अनुबंध निरजरा कारण, द्रव्य पूजाफल दाख्यो । भाव पूजा फल सिद्धिना कारण, वीर जिनेसर भाख्योरे । पापी क्यूं । ११ ॥ कुमति मंद मिथ्या मति मुंडो, आगम अवलो बोले । जिन प्रतिमासुं, द्वेष धरीने, सूत्र अरथ नहीं खोलेरे । पापी क्यूं । १२ ॥ जे जिन बिंब तणा ऊथापक, नवदंडकमांहि जावे । जेहने तेह सूं द्वेष थयो ते, किम तस मंदिर आवेरे । पापी क्यूं । १३ ॥ सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, पयन्ने, ठाम ठाम आलावें । जिनपडिमा पूजे शुभ भावें, मुक्तितणा फल पावेरे । पापी क्यूं । १४ ॥ संवेगी गीतारथ मुनिवर, जस विजय हितकारी । सोभाग्य विजय मुनि इणिपरि पभणे, जिन पूजा सुखकारीरे । पापी क्यूं । १५ ॥

इति कुमति निकंदन स्तवनं ३ समाप्तं ॥

॥ अथ चिंतामणि पार्श्वजिन ४ स्तवनं ॥

भविका श्री जिन बिंब जूहारो,आतम परम आधारो रे । भ । श्री । एटेक, जिन प्रतिमा जिनसरखी जाणो, न करो शंका कांइ । आगमवाणीने अनुसारें, राखो प्रीत सवाईरे । भ । श्री । १ ॥ जे जिन बिंब स्वरूप न जाणे, ते कहियें किम जाणे । भुलातेह अज्ञानें भरिया, नहीं तिहां तत्त्व पिछाणेरे । भ । श्री । २ ॥ अंबड श्रावक श्रेणिक राजा, रावण प्रमुख अनेक । विविधपरें जिन भक्ति करंता, पाम्या धरम विवेकरे । भ । श्री । ३ ॥ जिन प्रतिमा बहु भगतें जोतां, होय निश्चय उपगार । परमारथ गुण प्रगटे पूरण, जो जो आर्द्र कुमाररे । भ । श्री । ४ ॥ जिन प्रतिमा आकारें जलचर, छे बहु जलधि मझार । ते देखी बहुला मच्छादिक,पाम्या विरति प्रका-

ररे । भ । श्री । ५ ॥ पांचमा अंगें जिन प्रतिमानो, प्रगटपणे अ-धिकार । सुरयाभ सुर जिनवर पूज्या, रायपसेणी मजाररे । भ । श्री । ६ ॥ दशमें अंगें अहिंसा दाखी, जिन पूजा जिनराज । ए हवा आगम अरथमरोडी, करियें किम अकाजरे । भ । श्री । ७ ॥ समकित धारी सतीय द्रौपदी, जिन पूज्या मनरंगें । जो जो एहनो अरथ विचारी, छठें ज्ञाता अंगेंरे । भ । श्री । ८ ॥ विजय सुरें जिम जिनवर पूजा, कीधी चित्त थिर राखी । द्रव्यभाव विहुं भेदें कीनी, जींवाभिगमते साखीरे । भ । श्री । ९ ॥ इत्यादिक बहु आगम साखें, कोई शंका मति करजो । जिन प्रतिमा देखी नित न-वलो, प्रेम घणो चित्त धरजोरे । भ । श्री । १० ॥ चिंतामणि प्रभु पास पसायें, सरधा होजो सवाई । श्री जिन लाभ सुगुरु उपदेशें, श्री जिनचंद्र सवांईरे. भ. श्री. ११ ॥

इति चिंतामणि पार्श्व ४ स्तवन.

॥ अथ मिथ्यात्व खंडन स्वाध्याय ५ लिख्यते.

दूहा—पूर्वाचारज सम नहीं, तारण तरण जहाज । ते गुरुपद सेवा विना, सवही काज अकाज । १ ॥ टीकाकार विशेष जे, नि-र्युक्ति करतार । भाष्य अवचुरी चूर्णिथी, सूत्र साथ मन धार । २ ॥ यहथी अरथ परंपरा, जाणग जे मुनिराज । सूत्र चोराशी वर्णव्या, भविगण तारक जाज । ३ ॥ निजमति करता कल्पना, मिथ्यामति केई जीव । कुमति रचीने भोलवे, नरके करसें रीव । ४ ॥ बाल अजाणग जीवडा, मूरखने मति हीन । नुगराने गुरु मानसें, थास्यें दुखिया दीन । ५ ॥

ढाल—प्रणमी श्री गुरुना पदपंकज, शिखामण कहुं सारी ।

समकित दृष्टि जीवने काजें, सुणज्यो नरनें नारी । भवियण समजो हृदय मजारी । १ । ए टेक ॥ अत्तागम अरिहंतने होवें, अणंतर श्रुत गणधार । आचारजथी पूर्व परंपर, सो सद्दहें ते अणगाररे । भवियण समजो हृदय मजारी । २ ॥ भगवई- पंचम अंगे भाख्यों, श्री जिनवीर जिनेस । भेष धरीने अवलो भाखे, करी कुलिंगनो वेसरे । भवि । ३ ॥ आहार व्यवहारे परिग्रह त्यागी, धगलानी परें जेह । सूत्रनो अर्थ जे अवलो मरडे, मिथ्या दृष्टि कह्यो तेह रे । भवि । ४ ॥ आचारज ऊवजाय तणो जे, कुल गच्छनो परिहार तेहना अवरणवाद लवंतो, होसें अनंत संसाररे । भवि । ५ ॥ महा मोहनी कर्मनो बंधक, समवायांगे भाख्यो । श्रुतदायक गुरुने हेलवतो, अनंत-संसारी ते दाख्योरे । भवि । ६ ॥ तप किरिया बहु विधनी कीधी, आगम अवलो बोल्यो । देवाकिलविषे ते थयो 'जमाली' पंचम अंगे खोल्योरे । भवि । ७ ॥ ज्ञाता अंगे सेलग मुरिवर, पासथ्था थया जेह । पंथक मुनिवर नित नित नमतां, श्रुतदायक गुण गेहरे । भवि । ८॥ कुलगण संघतणी वैयावच, करें निरजरा काजें । दशमें अंगे जिनवर भाखें, करें चैत्यनी साहजेंरे । भवि । ९ ॥ आरंभ परिग्रहना परिहारी, किरिया कठोरने धारे । ज्ञान विराधक मिथ्या दृष्टि, लहें नहीं भव पाररे । भवि । १० ॥ भगवती अंगें पंचम शतकें, गौतम गणधर साखें । समकित विन किरिया नहीं लेखें, वीर जिणंद इम भाषेरे । भवि । ११ ॥ पूर्वे परंपरा आगम साखें, सद्दहणाकरो शुद्धी । परत संसारी तेहनें कहियें, गुण गहवा जस बुद्धिरे । भवि । १२ ॥ नव सातना भेद छे बहुला, तेहना भंग न जाणें । कदाग्रहथी करी कल्पना, हठ मिथ्यात्व वखाणेंरे । भवि । १३ ॥ सम्यक् दृष्टि देवतणा जे, अवरण वाद न कहियें । ठाणा अंगे इणिपरी भाख्यो, दुरलभ बोधि लहियेंरे । भवि । १४ ॥

देव वंदननी टीकाकारी, हरिभद्र सूरिराया । च्यार थुइ करी देववां दिजें, वृद्ध वचन सुखदायारे । भवि । १५ ॥ वैयांवच शांति समाधिना करता, सुर समकित सुखकारी । प्रगट पाठ टीका निर धार्यो, हरिभद्र सूरि गणधारीरे । भवि । १६ ॥ बारें अधिकारें चैत्य वंदननो, न क्यूं कहो इवें तेह । टीकाकार थुइ कही छे, सुर सम्यक्त्व गुण गेहरे । भवि । १७ ॥ खेत्र देव शय्यातरादिक, काउसग कह्यो हरिभद्रें । निर्युक्तिमें प्रगट पाठ ए, देखो करी मन भद्ररे । भवि । १८ ॥ श्रावक सूत्र कह्यो वंदे तूं, पूरवधर मुनिराय । बोध समाधि कारण वांछे, सुर समकित सुखदायरे । भवि । १९ ॥ वैशाला नगरीनो विनाशक, चैत्य थुभनो घाती । कुलवालुओ गुरुनो द्रोही, सातमी नरक संघातीरे । भवि । २० ॥ इत्यादिक अधिकार घणेरा, निरपक्षी थई देखो । दृष्टि रागनें दुर उवेखी, सुख कारण सुविवेकरे । भवि । २१ ॥ पंडितराय शिरोमणि कहियें, अन्नविजय गुरुराय । जसविजय गुरु सुपसाये, परमानंद सुखदायरें । भवि । २२ ॥

इति मिथ्यात्व तिमिर निवारण स्वाध्याय ९ श्री संपूर्ण.

॥ श्री संप्रति राजाका ६ स्तवन । राग आशावरी ।

धन धन समति साचो राजा, जेणे कीधां उत्तम कामरे ।
सवालाख प्रासाद करावी, कलियुग राख्युं नाम रे ॥ धन. १
वीर संवत्सर संवत् बीजे, तेरोत्तर रविवार रे ।
महाशुदि आठमी बिंब भरावी, सफल कियो आवतार रे ॥ धन. २
श्रीपद्म प्रभु मूरती थापी, सकल तीरथ शणगार रे ।
कलियुग कल्प तरु ए प्रगटयो, वंछित फल दातार रे ॥ धन. ३
उंपासरा बे हजार कराव्या, दानशाला शय सात रे ॥

धर्म तणा आधार आरोपी, त्रिजग हुओ विख्यात रे ॥ धन. ४
सवालाख प्रासाद कराव्या, छत्रीश सहस्स उद्धार रे।
सवाकोडी संख्याये प्रतिमा,धातु पंचाणुं हजार रे ॥ धन. ५
एक प्रासाद नवो नीत नीपजे, तो मुख शुद्धिज होय रे।
एह अभिग्रह संप्रति कीधो, उत्तम करणी जोय रे ॥ धन. ६
आर्य सुहस्ति गुरु उपदेशे, श्रावकनो आचार रे।
समकित मूल बार व्रत पाली, कीधो जग उपगार रे ॥ धन. ७
जिन शासन उद्योत करीने, पाली त्रण खंड राज रे।
ए संसार असार जाणीने, साध्यां आतम काज रे ॥ धन. ८
गंगाणी नयरीमां प्रगट्या, श्रीपद्मप्रभ देव रे।
विबुध कानजी शिष्य कनकने, देज्यो तुम पय सेव रे ॥ धन. ९

॥ इति श्री संप्रति राजाका ६ स्तवन संपूर्ण ॥

॥ अथ जिन प्रतिमाके उपर ७ स्तवन । चोपाई ॥

जेहने जिनवरनो नही जाप, तेहनुं पासु न मेलें पाप।
जेहने जिनवर सुं नही रंग, तेहनो कदी न कीजे संग ॥ १
जेहने नही वाहाला वीतराग, ते मुक्तिनो न लहे ताग।
जेहने भगवंत सुं नही भाव, तेहनी कुण सांभलशे राव ॥ २
जेहने प्रतिमा शुं नही प्रेम, तेहनुं मुखडुं जोइये केम।
जेहने प्रतिमा शुं नही प्रीत, ते तो पामें नहीं समकित ॥ ३
जेहने प्रतिमा शुं छे वेर, तेहनी कहो शी थासें पेर।
जेहने जिनप्रतिमा नहीं पूज्य,आगम बोले तेह अबूज्य ॥ ४
१नाम, २स्थापना, ३द्रव्य, ने ४भाव, प्रभुने पूजो सही प्रस्ताव।
जे नर पूजे जिननां बिंब, ते लहे अविचल पद अविलंब ॥ ५

पूजा छे मुक्तिनो पंथ, नित नित भाषे इम भगवंत ।
सांहि एक [1]नरक विना निरधार, प्रतिमा छे त्रिभुवनमां सार ॥ ६
सत्तर अठाणुं आषाढी बीज, उज्जल कीधुं छे बोध बीज ।
इम कहे उदय रतन उवज्झाय, प्रेमे पूजो प्रभुना पाय ॥ ७

इति जिन प्रतिमा ७ स्तवन ॥

जिन प्रतिमा विषये ८ स्तवन ॥ चेतजरे चित प्राणी, ए देशी ॥

चरण नमुं श्री वीरनारे, धरि मन भाव अभंग ।
पामी जे जसु सेवथी, ज्ञान दर्शनरे चारित्र गुण चंगकि ॥ १
सुणज्योरे सु विचारी,तुम्हे तजि ज्योरे मन हूती शंककि, सु० ए टेक।
जिन प्रतिमा जिन सारखीरे, भाषी श्री जिनराज ।
समकित धर चित्त सरदहे, भवजलधिरे तरवाने काज कि ॥ सु० २
जेहनुं नाम जपीये सदारे, धरीये जेहनी आण ।
मूरती तास उथापतां, सहु करणीरे थाइं अप्रामणकि ॥ सु० ३
वंदे पूजे भाव सुरे, समकिती अरिहंत देव ।
तिम अरिहंतना बिंबनी, मन सुद्धेरे नित सारे सेवकि ॥ सु० ४
१ नाम, २ ठवण, ३ द्रव्य, ४ भाव सुरे, श्री अनुयोग दुवार ।
चार निक्षेपा जिन तणा,वंदे पूजेरे ध्यावे समकित धारकि ॥ सु० ५
भाव पूजा कही साधुनेरे, श्रावकने द्रव्य भाव ।
धर्म समकित जिन सेवमें, शिव सुखनोरे एही उपावकि ॥ सु० ६
दान शील तप दोहिलोरे, अहोनिशि ए नवी थाय ।
भावे जिन बिंब पूजतां,भव भवनोरे सहु पातक जायकि ॥ सु० ७

[1] एक नरक का स्थान छोडकरके, और सर्व जगे पर, शाश्वते, और अशाश्वते, जिनेश्वर देवके बिंब (प्रतिमा) विराजमान है उनका पाठभी जैन सिद्धांतोंमें जगे जगे पर विद्यमान पणे है॥

नाम जपतां जिनतणुंरे, रसना ज्यूं निरमल थाय।
त्यूं जिनबिंब जुहारतां, निश्चे सुरे हुयें निरमल कायकि ॥ सु० ८
साधु अनें श्रावक तणारे, कह्या धर्म दोई प्रकार।
श्री जिनवर अनें गणधरे,सर्व विरतीरे देश विरती विचाराकि॥ सु० ९
श्रावकनें थावरतणीरे, न पलें दया लगार।
सवा विश्वा पालें सही, ज्यूं होवें बारह व्रत धाराकि ॥ सु० १०
वीश विश्वा पालें जतीरे, रहते निज आचार।
सरसव मेरुने अंतरे, गृह धरमेंरे साधु धरम संभाराकि ॥ सु० ११
तिण कारण श्रावक भणीरें, समकित प्राप्ति काज।
पूजा श्री जिन बिंबनी, मुनि सेवारे बोली जिनराजाकि ॥ सु० १२
पर्व दिवस पोसह कह्योरे, आवश्यक दुई वार।
अवसर सीपाइक करें,भोजन करेंरे जिन मुनीने जुहारकि॥ सु० १३
१ घर करसण व्यापरनेंरे, भाप्यों छे आरंभ।
पूजा जिहां जिन बिंबनी,तिहां भाषीरे जिन भक्ति अदंभकि ॥ सु० १४
पुत्र कलत्र परिवारमेंरे, सुद्ध न होय तप शील।
दानथकी पूजाथकी, श्रावकनेंरे थायें सुख लीलकि ॥ सु. १५
जिनवर वचन उथापीनेंरे, निज मन कल्पना भेलि।
जिन मूरति पूजा तजें,ते जाणोरे मिथ्यातनी केलि कि ॥ सु. १६
जिन मुनि सेवा कारणें, आरंभ जे इहां थाय।
अल्प करम बहु निर्जरा,भगवती सूत्रे भाषें जिनराज कि ॥ सु. १७
सूत्र वचन जे ओलवेरे, जे आणें संदेह।
मिथ्या मतना उदयथी, भारी करमारे जाणो नर तेह कि ॥ सु. १८

१ घर-खेती-व्यापारादिक स्वार्थ कार्यमां प्रवृत्ति करतां जे कांई सूक्ष्मजीवोंनी विराधना थाय, तेनेज तीर्थंकरोंअे आरंभ कहेलो छे; बाकी जिनपूजाने तो भक्तिज कहेली छे.

जिन मूरति निंदी जिणेंरे, तिणें निंद्या जिनराज ।
पूजाना अंतरायथी, जीव बंधेरे दश विध अंतराय कि ॥ सु० १९
१अंग, २उपांग, ३सिद्धांतमेंरे; श्रावकने अधिकार ।
न्हाया कयबलि कम्मियां,पूजानारे ए अरथ विचार कि ॥ सु० २०
१जीवाभिगम, २उवाईयेंरे, ३ज्ञाता, ४ भगवती अंग ।
५रायपसेणीमें वली, जिन पूजारे भाषी सतरह भंग कि ॥ सु० २१
श्री भगवंतें भाषियारे, पूजानां फल सार ।
१हित २सुख ३मोक्ष कारण सही,ए अक्षररे मनमें अवधारकि॥ सु०२२
चित्र लिषित नारी तणोरे, रूप देष्यां काम राग ।
तिम वैराग्यनी वासना,मनि उपजेंरे देष्यां वीतराग कि ॥ सु० २३
श्री सय्यंभव गणधररे,तिमवली आद्र कुमार ।
प्रति बुज्या प्रतिमाथकी,तिणे पाम्यारे भवसागर पार कि॥ सु० २४
१ दानव २ मानव ३ देवतारे, जे धरें समकित धर्म ।
ते उत्तम करणी करें, ते न करें रे कोई कुत्सित कर्म कि ॥ सु० २५
तीन लोक मांहे अछेरे, जिनवर चैत्य जिके वि ।
ते पंचम आवश्यकें, आराधेंरे मुनि श्रावक बेवि कि ॥ सु० २६
सार सकल जिन धर्मनोंरे, जिनवर भाष्यों एह ।
लक्ष्मी वल्लभ गणि कहें,जिन वचनेंरे मत धरों संदेह कि ॥ सु० २७

॥ इति श्री लक्ष्मी वल्लभ सूरि कृत ८ स्तवन संपूर्ण ॥

॥ अथ प्रतिमा विषय स्तवन ९ मा ॥

जैनी है सो जिन प्रतिमा पूजनसें,मनवंछित फल पावत है । ए टेक ।
रावण नाटक पूजा करके, गोत्र तीर्थंकर पाया है । जैनी । १ ॥
सती द्रौपदीये प्रतिमा पूजी, ज्ञाता सास्त्र भरावत है । जैनी । २ ॥

चारण मुनिवर प्रतिमा वंदनको,रुचक नंदीश्वर जावत है। जैनी । ३॥
सूर्याभ देवको मित्रदेवने, हिनमुक्त मोक्ष बनाया है । जैनी । ४ ॥
आद्र कुमारे प्रतिमा देखी ते, जाति स्मरण पाया है । जैनी । ५ ॥
जीवाभिगममें श्रवण सुणिये,श्री जिनराजको पुज्या है । जैनी । ६ ॥
ठाणांग सूत्रमें चार निक्षेपा, सत्यरूप बतलाया है । जैनी । ७ ॥
लाल कहे जिन प्रतिमा पूजे,जन्म मरण मिट जावत है। जैनी । ८॥

इति ९. स्तवन ॥

॥ अथ जिन प्रतिमा स्थापन रास लिख्यते ॥

॥ मुनिराजश्री वल्लभविजयजीकी तरफसे मिल्या हुवा ॥

सुय देवी हियडे धरी, सद्गुरु वयण रयण चित चारके ।
रास भणुं रळियामणो, सूत्रे जिन प्रतिमा अधिकारके ।
कुमति कदाग्रह छोड द्यो ॥ ए आंकणी ॥ ॥ १ ॥
मत हठ मकरो मूढ गमारके, हठ मिथ्या न वखानिये ।
मिथ्या ते वधि संसारके । कु मति ॥ २ ॥
कुडो हठ ताणे जिके, अम्हे कहांछां वहिज साचके ।
ते अवरमी आत्मा, काच समान गिणे ते पांचके । कु. ॥ ३ ॥
कुमति कुटिल कदाग्रही, साच न राचे निगुण निटोलके ।
परम परागम बाहिरा, स्युं जाणे ते सूत्रनो बोलके । कु. ॥ ४ ॥
गुरु कुल वासवसे जिके, ते कहिये ज्ञान प्रवीणके ।
शुद्ध संयम तेहनो पले, आगम वयण तणो रस लीनके । कु. ॥५॥
एक वचन जे सूत्रनो, उथापे ते बांधे भवनो बंधके ।
पाडे तेहनो स्युं हास्ये, उथापे जे सारो खंधके । कु. ॥ ६ ॥

[1]जिन प्रतिमा जिन अंतरो, जाणे जे जिनथी प्रति कूलके ।
जिन प्रतिमा जिन सारखी, मानीजे ए समकित मूलके । कु. ॥७॥
जिन प्रतिमा उपरि जिके, साची सद्दहना धारंत के ।
ते नरनारी निस्तरे, चउगति भवनो आणे अंतके । कु. ॥ ८ ॥
आज इण दूसम आरे, मति श्रुत छे तेही पण हीनके ।
तो किम सूत्र उथापीये, इम जाणो तुमे चतुर प्रवीणके । कु. ॥ ९॥
मन पर्यव केवल अवधि, ज्ञान गयां तीन विछेदके ।
तो जिम सूत्रे भाषियो, तिम किजें मन धरिय उमेदके । कु. ॥१०॥
जे निज मन मान्यों करे, टीका वृत्ति न माने जेह के ।
ते मूरख मंद बुद्धिया, परमार्थ किम पामें तेह के । कु. ॥ ११ ॥
ए आगम मानुं अम्हे, एह न मानुं एह कहे हके ।
तेहने पुछो एहवो, ज्ञान किसो प्रगटयो तुम्हे देह के । कु. ॥१२॥
दश अठावीसमें, उत्तराध्यन कही छे जोय के ।
आणा रुचि वीतरागनी, आगन्या ते परमाणकि होय के । कु. ॥१३॥
तप संयम दानादि सहुं, आण सहित फलें ततकालके ।
धर्म सहुं विन आगन्या,[2]कण विन जाणे घास पलालके । कु. ॥१४॥
तो साची जिन आगन्या, जो धरे प्रतिमासुं रागके ।
सूत्रे जिन प्रतिमा कही, जेह न माने तेह अभाग के । कु. ॥ १५॥
दारु प्रमुख दश थापना, बोली किरियानें अधिकारके ।
[3]किरिया विण पिण थापना, इनही अनुयोग दुवारके । कु. ॥१६॥

---

१ जो तीर्थंकरकी प्रतिमासें अंतर करनेवाले है सो तीर्थंकरोंसें ही दूर रहनेवाले है ॥

२ आज्ञाविनाका–दान दयादिक धर्म है सो, धान्य विनाका घास, पलाल; जैसा है ॥

३ काष्टादिक दश प्रकारकी स्थापना, तीर्थंकरोंकी भी करनेकी कही है ॥

[1]पाट संथारे गुरुतणे, वैसंतां आशातना थाय के।
ते केहनी आशातना ? कहोने ए अर्थ समजायके। कु. ॥ १७ ॥
उंधो गति मति जेहनी, दीर्घ संसारी जे छे पीडके।
समजाया समजे नहीं, जो समजावे श्री महावीरके. । कु. ॥ १८ ॥
[2]जिन प्रतिमा जिन अंतरो, कोइ नहीं आगमनी साखीके।
तिणही त्यां जिन हीलिये, तिण वंद्यो जिन वंद्यो दाखिके। कु.॥१९॥
जिन प्रतिमा दरसण थकी, प्रति बुज्यो श्री आद्रकुमारके।
शय्यंभव श्रुत केवली, दश वैकालिनो करतारके। कु. ॥ २० ॥
स्वयंभू रमण समुद्रमें, मछ निहाली प्रतिमा रूपके।
जाति स्मरण समकिते, सुरपदवी पामी तेह अनुपके। कु. ॥ २१ ॥
रायपसेणी उपांगमें, सूरयाभे पूजा किधके।
शक्रस्तवन आगल कह्यो, हित सुख मोक्ष तणा फल लीधके। कु.॥२२॥
छठे अंगे द्रौपदी, विधिसुं पूज्या श्री जिन राजके।
जिन प्रतिमा आगल कह्यो, शक्र स्तव ते केहने[3] काजके? । कु.॥२३॥

---

१ प्रतिमाको नहीं मानते हो तो–गुरुके पाटकी, आसनकी आशातनासें गुरुकी आशतना हुइ कैसें मानते हो ? इति प्रश्न ॥

२ देखो सत्यार्थ पृष्ट. १४४ में–महा निशीथ सूत्रका पाठमें- अरिहंताणं, भगवंताणं। का पाठसें–मूर्त्तियांकाही बोध कराया है। इस वास्ते मूर्त्तिमें और तीर्थंकरोंमें भेद भाव नही है। जिसने प्रतिमाकी अवज्ञा कीई उसने तीर्थंकरोंकी ही अवज्ञा करनेका दोष लगता है। वांदे उनको तीर्थंकरोकोही वंदनेका लाभ होता है. ॥

३ द्रौपदीको–नमोथ्थुंणका पाठ, कामदेवकी मूर्त्तिके आगे, ढूंढनी पढावती है ? ॥ देखो नेत्रांजन प्रथम भाग. पृष्ट. ११० से ११४ तक ॥

जीवाभिगमें जोइज्यो, विजय देवतणे अधिकारके ।
सिद्धायतन आवी करी, पैसे पूरवतणे दुवारके । कु. ॥ २४ ॥
देवछंदे आवे तिहां, जिन प्रतिमा देखी धरे रागके ।
करे प्रणाम नमाय तनुं,भगति युगति निज भाव अथागके । कु.॥२५॥
लोमहथ्थ परमारजे, सुरभि गंधोदक करें पखालके ।
अंग लुहें अंगलुहणे, चंदन पूज करें सुविशालके । कु. ॥ २६ ॥
फूल चढावें प्रभुभणी, उखेवें कृष्णागर धूप के ।
शक्र स्तव आगल कहें, कवण हेतु ते कहो सरूपके । कु. ॥ २७ ॥
ठाणा अंगे भाषियो, चौथे ठाणे एह विचारके ।
नंदीसर जिन शास्वता, वंदे सुरवर असुर कुमारके । कु. ॥ २८ ॥
पूजा प्रतिमा स्थापना, जंबूद्वीप पन्नती माहिके ।
बीजे अध्ययने अछे, सत्तम आलावें उछाहके । कु. ॥ २९ ॥
पंचम अंगे भाषियो, जिन दाढा पूजे चमरेंद्रके ।
तेह टाले आशातना, विषय न सेवें ते असुरेंद्रके । कु. ॥ ३० ॥
क्यां तेतो पुदगल हाडना, देहावयव विवर्जित जाणके ।
[1]अधर्म अर्थ वली कामने, कहै अर्थ कहो सुजाणके ।कु. ॥ ३१ ॥
[2]जंघा विद्या चारणा, तप शील लब्धितणा भंडारके ।
एक डिगे मानुषोत्तरे, चैत्य जुहारे अणगारके । कु. ॥ ३२ ॥
बीजे डिगे नंदीसरे, तिहां वली चैत्य जुहारण जायके ।
तीजे डिगे आवे इहां, इहां ना पण प्रणमे जिनरायके ।कु.॥ ३३ ॥
भगवती अंगे इम कह्यो, गोयम आगे श्री महावीरके ।
सदहणा मन आणीने, पूजो जिनवर गुण गंभीरके । कु. ॥ ३४ ॥

---

१ धन पुत्रादिकके वास्ते पूजा करनी अधर्म कही है, सोही ढूंढनी करानेको तत्पर हुई है ॥

२ देखो नेत्रांजन प्रथम भाग पृष्ठ. ११७ से १२१ तक ॥

[1]अंबड परिव्राजकतणो, आलावो श्री उवाई माहेंके ।
अन्य ग्रहित ते परिहरुं, वांदु जिन प्रतिमा चित लायके. ।कु.॥३५॥
सप्तम अंगे समजिने, [2]आनंदनो आलावो जोइके ।
अन्य तीर्थ वांदु नहीं, सांप्रति जो जिन प्रतिमा होय के. ।कु.॥३६॥
[3]वली उववाइने धुरे, चंपा नगरी वरणकी जोयके ।
जिनमंदिर पाडा कह्या, काइ न मानो कुमति लोयके. । कु. ॥ ३७॥
साधु करे चेय तणो, वेयावच ते केहै भायके ।
[4]पण्हा वागरणे कह्यो, साचो अर्थ कहो समजायके ।कु. ॥३८॥
अष्टापद गिरि उपरे, चैत्य करायो भरत पुण्यने कामके ।
आवश्यक चूर्णी कहुं, देवलसिंह निपद्या नामके । कु. ॥ ३९ ॥
[5]ज्ञाता अंगे उपदिशी, जिनवर पूजा सतर प्रकारके ।
जीवाभिगम उपांगमें, तिहां पिण छे एहिज अधिकारके ।कु.॥४०॥
श्रीव्यवहार सिद्धांतमें, प्रथम उदेशे कह्यो शुद्धके ।
श्रीजिन प्रतिमा आगले, [6]आलोयणा लीजे मन शुद्धके ।कु.॥४१॥
विद्युनमाली देवता, कीधी प्रातिमा बोध निमित्तके ।

---

१ देखो नेत्रांजन प्रथम भाग पृष्ट. १०३ सें १०८ तक ॥

२ देखो नेत्रांजन प्रथम भाग पृष्ट १०८ सें १०९ तक ॥

३ देखो इसका विचार—नेत्रांजन प्रथम भाग पृष्ट १०२ सें १०४ ॥

४ साधुभी चैत्य (मंदिर) की वेयावच करे, देखो प्रश्न व्याकरण ॥

५ ज्ञाता सूत्रमें—सतरभेदी पूजा करनेका उपदेश है ।

६ प्रतिमाके आगे—साधुको दूषणकी आलोचना करनेका, व्यवहार सूत्रमें कहा है ॥

उपदेश अच्युत देवने, प्रभावती पूंजी शुभ चित्तके । कु. ॥ ४२ ॥
श्री आवश्यके दाखियो, वगुर शेठ तणो दिष्टांतके ।
मल्लि स्वामी प्रतिमा तणी, इह लोकारथ सेव करंतके । कु.॥ ४३ ॥
गाथा भत्त पयन्ननी, जोवो श्रावक जन आलंवके ।
करावे जिन द्रव्यसुं, जिनवर देवल जिन विंबके । कु. ॥ ४४ ॥
चौवी सथ्थो मानो तुम्हे, कीत्तिय, वंदिय, [1]महिया, पाठके ।
महियानो श्युं? अर्थ छे, साच कहो एकडो मांडके । कु. ॥ ४५ ॥
नाम जिना ठवणा जिना, द्रव्य जिना भावजिना वखाणके ।
मानो कांइ न मूढमति, चारे निक्षेपा सूत्रां जाणके । कु. ॥ ४६ ॥
भुवण पति वाण व्यंतरा, जोइसी वली वेमाणिय देवके ।
ए सुर चार निकायना, सारे जिन प्रतिमानी सेवके । कु.॥४७ ॥
नंदी अनुयोग दुवारमें, पूजाना सगले अधिकारके ।
सूत्रेही माने नहीं, तो जाणिये वहुल संसारके । कु. ॥ ४८ ॥
जो कहिस्यो पूजा विषे, थाय छे वहुलो [2]आरंभके ।
तो दृष्टांत कहुं सांभलो, मत राखो मन मांहि दंभके । कु. ॥ ४९ ॥
ज्ञाता अंगे इम कह्यो, प्रतिवोध्या मल्लिनाथें छ मित्रके ।
प्रतिमा सोवनमें करी, दिन प्रति मूके कवल विचित्रके । कु. ॥ ५० ॥
[3]जीव तणी उतपत्ति थइ, कुथित आहार तणो परमाणके ।
सावद्य आरंभ ये कियो, त्रिहुअरथामें अरथ वखाणके । कु.॥५१॥

---

१ महिया, शब्दका अर्थ-देखो सम्यक्त्व शल्योद्धारमें ॥

२ आरंभमें धर्म नहीं होता है, ऐसा कहने वालेको समजाते है॥

३ छ मित्रको प्रतिबोधनेके वास्ते-मल्लिनाथने, जीवोंकी उत्पत्ति कराईथी, सो धर्मके वास्तेकि, अधर्मके वास्ते ? ॥

[1]वली सुबुद्धि मंत्रीसरे, प्रतिबोधन जितशत्रु महाराजके ।
फरहोदक आरंभियो, ते आरंभ कहो किण काजके । कु. ॥ ५२ ॥
[2]थावच्चा पुत्रनो कियो, कृष्णे व्रत उछव अतिसारके ।
स्नान आदिक आरंभियों, काम धरमके अरथ विचारके । कु.॥५३॥
[3]सूरयाभे नाटक कियो, भगवंत आगल वहु विस्तारके ।
तिणे ठामे आरंभ थयो, किंवा न थयो करो विचारके । कु.॥ ५४ ॥
[4]मेरु शिखर महिमा करे, जिन न्हवरावे मिल सुर रायके ।
आरंभ जइ बहुलो कियो, जाणी जै छे पुण्य उपायके । कु. ॥ ५५॥
[5]श्रेणिक कोणिक वंदना, चाल्या हय गय रथ परिवारके ।
तिहां कारण स्युं जाणिये, आरंभ विण नहि धरम लगारके।कु.॥५६॥
गुरु आव्या उछवकरो, नरनारी मिल सामा जाय के ।
ते आरंभ न लेखवो, तो जिन पूजा उथ्थापो कांइके । कु. ॥ ५७ ॥
पुहचें देवलोक वारमें, नवा प्रसाद करावन हारके ।
दीसें अक्षर एहवा, महा निसीथ सिद्धांत मजार के । कु. ॥ ५८ ॥

---

१ राजाको प्रतिबोधनेके वास्ते, गंदा पाणीको स्वच्छ किया, सो धर्मके वास्तेकि, अधर्मके वास्ते ? ॥

२ थावच्चा पुत्रका व्रत ओछवमें, कृष्ण राजाने स्नानादिक अनेक आरंभ, धर्मके वास्ते कियाकि, अधर्मके वास्ते ? ॥

३ सूर्याभ देवने—भगवंतकी भक्तिके वास्ते, नाटक किया, उसमें—आरंभ हुवा कि नहीं ? ॥

४ भगवंतोंके जन्म महोत्सवमें—नदीयां चाले उतना पाणीका आरंभ, देवताओंने—पुण्यके वास्ते, किया कि नहीं ? ॥

५ श्रेणिकादि, वडा आरंभके साथ—वंदना करनेको, धर्मके वास्ते—गये कि नहीं ? ॥

जिन प्रतिमा जिन देहरां, जेह करावे चतुर सुजाण के ।
लाभ अनंत गुणो हुवे, इम बोले आगमनी वाण के । कु. ॥ ५९ ॥
[1]पूजे पितर करंडिये, पूजे देवीने, क्षेत्रपालके ।
जिन प्रतिमा पूजे नहीं, ए तो लागे सबल जंजालके । कु. ॥ ६० ॥
चित्र लिखित जे पुतली, तेजोयां जागे कामके ।
तो प्रतिमा जिनराजनी, देखतां शुभ परिणामके । कु. ॥ ६१ ॥
इम ठामे ठामे कह्यो, जिन प्रतिमा पूजा अधिकारके ।
जे मानें नहीं मानवी, ते रुलसी संसार अपारके । कु. ॥ ६२ ॥
आगम अर्थ सहु कहे, तहत्ति करे जे आगम मांहिके ।
जिन प्रतिमा माने नहि, [2]तेतो माहरी माने वांझके । कु. ॥ ६३ ॥
अरथ आगमना ओलवें, नवा बनावे हिया जोरके ।
खोटाने थापें खरा, बेटो चोर तो बापही चोरके । कु ॥ ६४ ॥
मुज मन जिन प्रतिमा रमी, जिन प्रतिमा माहरे आधारके ।
सद्दहणा मुझ एहवी, जिन प्रतिमा जिनवर आकारके । कु. ॥ ६५ ॥
सतरे पचीसी सालमें, कियो रास जिन प्रतिमा अधिकारके ।
विनवे दास जिन राजनो, करो झटपट प्रभु पारके । कु. ॥ ६६ ॥

इतिसंपूर्ण ॥

---

१ हमारे ढूंढको तीर्थंकरोंके भक्त होके, वीर भगवानके श्रावकोंकोभी–मिथ्यात्वी जे पितरादिक है, उनकी पूजा–दर रोज, करानेको उद्यत हुये है, उसमें–आरंभ नहीं, देखो सत्यार्थ पृष्ठ. १२४ सें १२६ तक ॥

२ अदृश्यरूप यक्षादिक देवोंकी–प्रतिमा, बने । मात्र साक्षात्रूप तीर्थंकरोंकी–प्रतिमा, न बने ।। यह है तो मारी मा, पिण सी तो वांझनी ? हमारे ढूंढक भाईयांकी अकल तो देखो ॥

॥ अथ प्रतिमाकी भक्तिका स्तवन ॥

जिन मंदिर दरसण जानां जीया,
जाना जीया सुख पानाजी.या. जि०
जिन मंदिर दरसण जानें ते,
बोध बीजका पानाजीया. जि० ए टेक.
केशर चंदन और अरगजा,
प्रभुजीकी अंगीयां रचाना जीया. जि० ॥ १ ॥
चंपा मरुबो गुलाब केतकी,
जिनजीकें हार गुंथाना जिया. जि० ॥ २ ॥
द्रौपदीये जिन प्रतिमा पूजी;
सूत्र ज्ञाताजी मानो जीया. जि० ॥ ३ ॥
जिन प्रतिमा जिन सरखी जानो;
सूत्र उवाई मानो जीया. जि० ॥ ४ ॥
रायणरुख समोसर्या प्रभुजी;
पूर्व नवाणुं वारा जीया. जि० ॥ ५ ॥
सेवक अरज करे करजोडी;
भव भव ताप मीटावना जीया. जि० ॥ ६ ॥

॥ इति संपूर्ण ॥

॥ जिन प्रतिमा विषये महात्माके उद्गारो ॥

जिनवर प्रतिमा जगमां जेह, भावे भविषण वंदो तेह, जिम भवनो हुयें छेह । नामादिक निक्षेपा भेय, आराधनाए सवि आराधेय, नहीं ए कोइ हेय । वाचक विणु कुण वाच्य कहेय, थाप्या विणु किम सो समरेय, द्रव्य विना न जाणेय । भाव विना किम

साध्य सधेय; भाव अवस्था रोपें त्रणेय; भाव रूप सद्दहेय ॥ १ ॥

॥ यह प्रथमके उद्गारमें चाली भिन्न है ॥

अर्थ—हे भव्यजनो जे आ जगतमां, जिन प्रतिमा हैं उनको तुम–वंदो, जिसें तुमेरा भवका छेह [अर्थात् अंत] आ जावें। जे नामादिक निक्षेपके भेद है, ते सर्व—आराधना करके, आराधन करनेके योग्य है। परंतु त्यागने लायक इसमेंसें एक भी नहीं है। क्यौं कि नाम (वाचक) विनाके, [वाच्य] तीर्थंकरो ही, नहीं होते है १। और उनोंकी—आकृति [मूर्त्ति] का, विचार किये विना—स्मरण भी, नहीं होता है २। और आकृति है सो–द्रव्य वस्तुके विना, नहीं होती है ३। और तीर्थंकरोंका–भाव, दिलमें लाये विना, अपना जो पापका नाश करने रूप साध्य है, सो भी सिद्ध होनेवाला नहीं है।

और नामादिक जे त्रण निक्षेप है, सोहो–भाव अस्थाको, जनानेवाले है। इस वास्ते ते पूर्वके त्रणें निक्षेपो ही, भाव रूपसें सद्दहना करनेके योग्य है ॥ १ ॥

---

* ॥ रसना तुज गुण संस्तवे, दृष्टि तुज दरसनि; नव अंग पूजा समें, काया तुज फरसनि। तुंज गुण श्रवणें दो श्रवण, मस्तक प्रणिपातें, शुद्ध निमित्त सवे हुयां, शुभ परिणति थातें। वि-

---

* ढूंढनीजीने सत्यार्थ पृष्ठ. १७ में, लिखाथाकि–जिनपद नहीं शरीरमें, जिनपद चेतन मांह। जिन वर्णन कछु और है, यह जिन वर्णन नांह ॥ १ ॥

इस महात्माका–दूसरा, तिसरा, उद्गारसें। ढूंढनीजी अपना लिखा हुवा दुहाका–तात्पर्य अछीतरां विचार लेवें ॥

दृष्टिमां भावतां व्यापक सवीठामि, इस वचनका तात्पर्य यह है कि–हे भगवन् जब हम हमारी जीव्हासें ऋषभदेवादिक महावीर पर्यंत, दो चार अक्षरोंका उच्चारण करके–तुमेरा नाम मात्रको लेते है, उहां पर भी व्यापकपणे हमको–तूं ही दिखलाई देता है। और हमारी दृष्टि मात्रसें जब तेरी आकृति (अर्थात् मूर्त्ति) को देखते है, तब भी उहांपर, हे भगवन् हमको–तूंही दिखलाई देता है। और तेरी बालक अवस्थाका, अथवा तेरी मृतकरूप शरीरकी अवस्थाका, विचार करते है उहांपर भी, हमको–तूंही दिख पडता है। और तेरा गुण ग्राम करने की स्तुतिओंको पढते है, उहांपर भी–हमको तूंही दिख पडता है। क्योंकि–जब हमारी भावदृष्टिमें, हम तेरेको भावते है; तब हे भगवन्–सर्व जगेपर, हमको तूंही व्यापकपणे, दिखता है। परंतु--उदासीनता अवरस्युंलीनो तुज नामिं, तात्पर्य यह है कि–जब हम–ऋषभदेवादिक महावीर पर्यंत, नाम के अक्षरोंका उच्चारण करते है, तब हम इन अक्षरोंसें, और इस नाम वाली दूसरी वस्तुओंसे भी, उदासीनता भाव करके, हे भगवन् हम तेरा ही नाम में लीन होके, तेरा ही, स्वरूपको भावते है। इस वास्ते हमको–दूसरी वस्तुओ, बाधक रूपकी नहीं हो सकती है। एसें ही–हे भगवन् तेरी आकृति (अर्थात् मूर्त्ति) को देखते है, उस वखत भी–काष्ट पाषाणादिक वस्तुओंसें भी, उदासीनता रखके ही, तेरा ही स्वरूपमें लीन होते है। एसें ही हे भगवन् तेरी पूर्व अपर अवस्थामें, जो जड स्वरूपका–शरीर है, उस वस्तुसें भी–उदासीनता धारण करके, हम तेरा ही स्वरूपमें लीन होते है। इसमें तात्पर्य यह कहा गया कि–१ नाम के अक्षरोंमें। और २ उनकी आकृतिमें। और ३ उनकी पूर्व अपर अव-

स्थामें भी, साक्षात् स्वरूपसें भगवान् नहीं है तो भी, हम भक्तजन है सो-भावदृष्टिसें, भगवान्को ही साक्षात्पणे भावनासें कर लेते है। इसवास्ते आगे कहते है कि- दिठाविणुं पणि देखिये, तात्पर्य-हे भगवन् न तो हम तुमको-ऋषभादिक-नामके अक्षरोंमें, साक्षात्पणे देखते है। और नतो तेरेको-मूर्त्ति मात्रमें, साक्षात्पणे देखते है। और नतो तेरेको पूर्व अपर अवस्थाका शरीरमें भी, साक्षात्पणे देखते है। और नतो तेरा गुणग्रामकी स्तुतिओंमें भी, तेरेको साक्षात्पणे देखते है । तोभी हम तेरेको हमारी भावदृष्टि-सें- सर्व जगेंपर ही देख रहै है।

और हे भगवन्! हम अनादिकालकें अज्ञानरूपी अघोर निंद्रामें सुते है,.तोभी तूं अपना अपूर्व ज्ञानका-बोध देके, हमको जगावता है। इसी वास्ते महात्माने अपना उद्गारमें कहाहै कि-सुतांपिण जगवें, अर्थात् एसी अघोर निद्रा सेंभी, तूं हमको जगावता है। इतनाही मात्र नहीं परंतु जब हम तेरी भक्तिमें—लीन होजायगें, तब जो हमारी इंद्रियोंमें-इंद्रियपणेकी बुद्धि हो रही है, सोभी तेरी भक्तिके वससें-छुट जायगी, इसीही वास्ते महात्माने कहा है कि— इंद्रिय बुद्धि त्यजवें,जब ऐसें इंद्रियमेंसें इंद्रिय बुद्धि हमारी छुट जायगी, तब हमारी जो पराधीनता है सोभी-मिट जायगी। इसी वास्ते कहा हैकि—पराधीनता मिटगए ए, जब एसी पराधीन-ता मिटजायगी-तब जो हमको तेरा स्वरूपमें, और हमारा स्वरूपमें भेदभाव मालूम होता है, सोभी दूर हो जायगा। इसीवास्ते महा-त्माने कहा हैकि-भेदबुद्धि गई दूर,जब ऐसें-भेदबुद्धि, न रहेगी तबही हे भगवन्-तेरा साक्षात स्वरूपको हम नमस्कार करेगे। परंतु पूर्वमें दिखाइ हुंई अवस्थोमें, तेरेको हम साक्षात्पणे-नमस्का-

र, नहीं करसकतेहै । जब ऐसा अनुक्रमसें दरजेपर जावेंगे तब तेरेको हम साक्षात्पणे नमस्कार करनेके योग्य होजावेंगे । तब तो हम हमारा आत्मामें ही मग्नरूप होजायगे । इसी हीवास्ते महात्माने कहा है कि-चिदानंद भरपुर, जब हम एसें चडजावेंगे तबही हम हमारा आत्माके आनंदमें भरपुर मग्नरूप हो जायगे । तब हमको कोईभी प्रकारका दूसरा साधनकी जरुरात न रहेगी ॥ ३ ॥

अब हम इन महात्माके उद्गारोंका तात्पर्य कहते हे-जब हमको साक्षात्पणे-तीर्थंकरोंको, नमस्कार करनेकी इच्छा होगी, तब हम इस महात्माने जो क्रम दिखलाया है, उस क्रम पूर्वक तीर्थंकरोंकी सेवा करनेमें-तत्पर होंके, महात्माने दिखाई हुई हदको पुहचेंगे, तबही हमारा आत्माको-साक्षात्पणे तीर्थंकरोंका दर्शन, करा सकेंगे । परंतु पूर्वकी अवस्थामें तो-इस माहात्माके कथन मुजब,१नाम स्मरण,२ प्रतिमाका पूजन, और ३तीर्थंकरोंकी स्तुतिओंसें-गुणग्राम करकेही, हम हमारा आत्माको-यत्किंचित्के दरजेपर, चढा सकेंगे । परंतु पूर्वके शुभ निमित्तों मेंसें, एकभी निमित्तका त्याग करके-साक्षात्पणे तीर्थंकरोंका दर्शन, तीनकालमेंभी न करसकेंगे ? । क्योंकि जबभी ऋषभदेवादिक-नामोंके अक्षरोंमें, तीर्थंकरो नहीं है, तोभी हम उनको उच्चारण करके-वंदना, नमस्कार, करते हीहै । तो पिछे तीर्थंकरोंका विशेष बोधको कराने वाली तीर्थंकर भगवानकी-मूर्त्तिको, वंदना, नमस्कार, क्यों नहीं करना ? यह तो हमारी मूढताके शिवाय, इसमें कोईभी प्रकारकी दूसरी बात नहीं है.

॥ इत्यलंविस्तरेणं ॥

॥ श्री १मज्जैन धर्मोपदेष्टा माधव मुनि विरचित ॥

स्तवन तरंगिणी द्वितीय तरंग.

साधुमार्गी जैन उद्योतनी सभा, मानपाडा
आगराने ज्ञान लाभार्थ मुद्रित कराया ॥

अथ स्यान सुमति संवाद पद । राग रसियाकीमें ॥

अजब गजबकी बात कुगुरु मिल, कैसो वेश बनायोरी ॥ टेर ॥
मानो पेत शेत पट ओढन, जिन मुनिको फरमायोरी. अ० ॥ १ ॥
कल्पसूत्र उत्तराध्ययनमें, प्रगटपणे दरसायोरी. अ० ॥ २ ॥
तो क्यों पीत वसन केसरिया, कुगुरुने मन भायोरी. अ० ॥ ३ ॥
भिष्ट भये निर्मल चारितसे, तासे पीत सुहायोरी. अ० ॥ ४ ॥
नही वीर शासन वरती हम,यों इन प्रगट जतायोरी अ० ॥ ५ ॥
तो भी २मूढ मति नहीं समजे, ताको कहा उपायोरी. अ० ॥ ६ ॥
रजोहरणको दंड अभेहित, मुनि पटमांहि छुकायोरी. अ० ॥ ७ ॥
तो क्यों आकरणांत दंड अति, दीरघ करमें सह्योरी. अ० ॥ ८ ॥
त्रिविध दंड आतम दंडानो, ताते दंड रखायोरी. अ० ॥ ९ ॥
मुहणंतग मुखपै धारे विन,-अवश प्राणि वध थायोरी. अ० ॥१०॥
तो क्यों करमें करपाति धारी, हिंसा धरम चलायोरी. अ० ॥११॥

---

१ जैन धर्मका—मुख किधर है, इतने मात्रकी तो—खबर भी नहीं है, तो भी जैन धर्मके—उपदेष्टा बन बैठे है ? ॥

२ सम्यक्त्व शल्योद्धार, और यह हमारा ग्रंथसें भी थोडासा विचार करो ? तुमेरेमें मूढता कितनी व्याप्त हो गई है ? ॥

¹विपत कालमें वेश वदल इन,मांग मांग कर खायोरी. अ० ॥१२॥
पडी कुरीत कहो किम छुटे, पक्षपात प्रगटायोरी. अ० ॥१३॥
क्या अचरजकी बात अलीये,काल महातम छायोरी. अ० ॥१४॥
स्यान सुमति संवाद सुगुरु मुनि,मगन पसायें गायोरी. अ० ॥१५॥

॥ इति ॥

॥ पुनः ॥

तीन खंडको नायक ताको, रूप बनावें जाली है ।
देखो पंचम काल कलूकी, महिमां अजब निराली है ॥ टेर ॥
²पामर नीच अधम जन आगे, नाचैं दे दे ताली है. दे० ॥ २ ॥
पद्मा पतिको रूप धारकें, मागें फेरै थाली है. दे० ॥ ३ ॥
बने मात पितु जिनजीके, ये बात अचंभे वाली है. दे० ॥ ४ ॥
जंबूरुप बनाके नांचे, कैसी पडी प्रनाली है. दे० ॥ ५ ॥

इत्यादिक निंदाकी पोथी विक्रम संवत्. १९६५ में आगरे वालोंने छपाई है ॥

---

१ प्रथम देख आजीविका त्रुटनेसें विपत्तिमें आके-लोंकाशा बनीयेने, मांग मांगके खाया ? ॥ पिछे गुरुजीके साथ लडाइ हो जानेसें-विपत्तिमें आके, लवजी ढूंढकने-मांग मांगके खाना सरु किया ! तुम लोक भी गप्पां सप्पां मारके, उनोंका ही अनुकरण कर रहे हो ? दूसरोंको जूठा दूषण क्यौं देते हो ? ॥

२ तीर्थंकर भगवानके वैरी होके--पितर, भूत, यक्षादिकोंकी प्रतिमाको पूजाने वाले--नीच, अधम, कहे जावेंगे कि--तीर्थंकरोंके भक्त ? इसका थोडासा विचार करो ? ॥

पुनः पृष्ट. ३० में—लावणी बहर खडी ॥

[1]मणी मुकरको जो न पिछाने, वो कैसा जोंहरी प्रधान ।
जो शठ जड चेतन नहीं जाने, ताको किम कहियै मतिमान॥ टेर ॥
जडमें चेतन भाव विचारे, चेतन भाव धरें ।
प्रगट यही मिथ्यात्व मूढ वो, भीम भवोदधि केम तरें ।
मुक्त गये भगवंत तिन्होंका, फिर [2]आह्वानन मुख उचरे ।
करें विसर्जन पुन प्रभुजीका, यह अदूभुत अन्याय करें ।
दोऊ विध अपमान प्रभुका, करें कहो कैसें अज्ञान. जो शठ.॥ १ ॥
श्रुत इंद्री जाके नहीं ताको, नाद् वजाय सुनावें गान ।
चक्षु नहीं नाटक दिखलावें, हाथ नचाय तोड करतान ।
जाके घ्राण न ताको मूरख, पुष्प चढावें वे परमान ।
रसना जाके मुखमें नाहीं, ताको क्यों चाढें पकवान ।
फोगट भ्रम भक्तीमें हिंसा, करें वो कैसे हैं इन्सान. जो० ॥ २ ॥
जव गोधूम चना आदिक सव, धान्य सचित जिनराज भने ।
प्रगट लिखा है पाठ सूत्र, सामायिक मांहीं वियक्रमने ।
दग्ध अन्न अंकुर नहीं देवै, देखा है परतक्षपणे ।
तो भी शठ हठसे वतलावे, अचित कुहेतु लगा घणे ।
अभिनिवेश [3]उन्मत्त अज्ञको, आवे नहीं शुद्ध श्रद्धान. जो. ॥ ३ ॥

---

१ जिन पूजन छुडवायके, पितरादिक पूजाते है उनको, मणि काचकी खबर नहीं है कि हमको ? विचार करो ? ॥

२ प्रतिष्ठादिक कार्यमें आव्हान, और विसर्जन, इंद्रादिक देवताओंका किया जाता है। इस ढूंढकको खबर नहीं होनेसें, भगवानका लिखमारा है ? गुरु विना ज्ञान कहांसें होगा ? ॥

३ यह ढूंढक—हमको उन्मत्त, और अज्ञान—ठहराता है। परंतु पहिलेसें ख्याल करोकि, ढूंढनी पार्वतीजी—यक्षादिक, पितरादिक

शुद्ध श्रद्धान विना सब जप तप, क्रिया कलाप होय निस्सार ।
१विन समकित चउदह पूर्वके, धारी जांय नरक मंझार ।
हे समकित ही सार पाय, नरभव कीजे सत असत विचार ।
सुगुरु मगन सुपसाय पाय मति, माधव कहैं सुनों नरनार ।
तजके पक्ष लखो जड चेतन, व्यर्थ करो मत खेंचातान. जो. ॥४॥

॥ इति ॥

॥ प्रगट जैन पीतांबरी मूर्त्तिपूजकोका मिथ्यात्व ॥

ग्रंथ कर्ता.

गच्छाधिपति श्रीमत्परमपूज्य श्री १००८ श्री रघुनाथजी महाराजके संप्रदायके महामुनि श्री कुंदनमलजी, महाराज नाम धारक ढूंढक साधुने, कितनाक प्रयोजन विनाका--अगडं वगडं लिखके, छेवटमें एक स्तवन लिखा है.

देवांकी मूर्त्तियांकी--पूजा करानेको, तत्पर हुई है.। उस मूर्त्तियांको कौनसा चेतनपणा है? और वह मूर्त्तियांकी कौनसी इंद्रियां काम कर रहियां है? जो केवल अपना परम पूज्यकी, परम पवित्र मूर्त्तियांकी, अवज्ञा करके--अपना उन्मत्तपणा, और अपना अज्ञानपणा, जाहीर करते हो ?॥

१ जबसें तीर्थंकर देवकी मूर्त्तियांकी, और जैन सिद्धांतोंकी, अवज्ञा करके--यक्षादिक, पितरादिक देवताओंकी--मूर्त्तियांके भक्त बननेको, तत्पर हुये हो तबसें ही तुमेरा समकित तो, नष्ट ही होगया है। तुम समकित धारी बनते हो किस प्रकारसें ? ॥

॥ राग. भूंडीरे भूख अभागणी लालरे. एदेशी ॥

१मच्यो.हुलर इन लोकमें, खोटो हलाहल धांर लालरे ।
सांच नहीं रंच तेहमें,मिथ्यात्वी कियो पोकार लालरे । मच्यो ॥१॥
कुंदन मुनि, राजमुनि, निंदक जिन प्रतिमाका होय लालरे ।
तेपिण ठिकाणे आविया,लीजो पित्रिका जोय लालरे । मच्यो ॥२॥

---

१ यह स्तवन उत्पत्ति होनेका कारण यह है कि–नागपुर-पासें—हिंगनघाट गाममें, मंदिरकी प्रतिष्ठामें, दोनोपक्ष सामिलथें कंकु पत्रिकामें—संवेगी सुमतिसागरजीका, तथा मणिसागरजीका–नाम, दाखल कियांथा ॥

इस ढूंढकने–खटपट करके,अपना–नाम भी,दाखल करवाया ॥

तव जैन पत्रमें, इस ढूंढककी–स्तुति, कीई गईथी, ते वदल कपीला दासीका, अनुकरण करके, यह पुकार किया हैं ॥

और एक अप्रासंगिक व्यवहारिक विचारको समजे विना उसमें अपनी पंडिताई दिखाई है ? ऐसें विचार शून्योको हम वारंवार क्या जुवाप देवें ? जो उनको समज होगी तव तो यह हमारा एकही ग्रंथ बस है ? ॥

॥ इस ढूंढकने पृष्ट–१२ में लिखा है कि, मुनी या श्रावक प्रत्यक्ष मरणकी पर्वा न करके अन्यमतके धर्मका, देवका, गुरुका, व तीर्थका, शरण कदापि नहीं करेंगे, और नहीं श्रद्धेंगे ॥

इसमें कहनेका इतना ही है कि, ढूंढनीजी तो–वीर भगवानके, परम श्रावकोकी पाससें भी–पितर, दादेयां, भूतादिकोकी–मूर्त्ति, दररोज पूजानेको, तत्पर हुई है । हमारे ढूंढक भाईयांका ते मत किस प्रकारका समजना ? ॥

एहवा ठिकाणे आविया, दूजाने आणो चाय लालरे ।
एहवा मिथ्या लेख मोकल्या, देश देशांतरमांय लालरे । मच्यो॥३॥
तीन कर्ण तीन जोगसुं, भलो न सरदे मुनिरायरे ।
छकायारा आरंभथी, उत्तम गति नहीं थाय लालरे । मच्यो ॥४॥
चतुर विचारो चित्तमां, कीजो निर्णय एह लालरे ।
तत्त्वातत्त्व विचारथी, कुगुरुने दीजो छेह. लालरे । मच्यो ॥ ५ ॥
कुंदन नाहटारी ए विनती, सुणजो सारा लोक लालरे ।
दया पालो छकायनी, तो पामो वंछित थोक लालरे । मच्यो ॥६॥
साल पेंसठ ओगणीसकी. ज्येष्ट शुक्ल मजार लालरे ।
धर्मध्यान कर शोभतो,अमरावती शहर गुलजार लालरे ।मच्यो ॥७॥

॥ अथ जिन प्रतिमाके निंदक, ढूंढक शिक्षा बत्रीशी ॥

कक्का कर्म तणी गति देखो, ढूंढक नाम धराया है ।
जिनके नामसें रोटोखावे, तिनका नाम भूलाया है ॥
जिन मारगका नाम विसारी, साध मारग निपजाया है ।
सीखमान सद्गुरुकी ढूंढक, विरथा जनम गमाया है ॥१॥ ए टेक॥
खख्खा खोजकर जैनधर्मकी, मारग तुम नहीं पाया है ।
वासी विद्दलखाके तुमने, खरा धरम डुबाया है ॥
अंदरका मुख खुल्ला रखके, उपर पाटा खांच्या है । सीख० ॥२॥
गग्गा गिलचपणाकर गाढा, जैन धरम लजवाया है ।
सूत्र निशीथ उद्देशे चौथे, अशुची दंड गवाया है ॥
गपड सपड कर जूठ लगावे, सत्यसेती गभराया है। सीख० ॥३॥
घघ्घा घरकी खबर करो तुम, क्या घरमें बतलाया है ।

[1]बारगुणे अरिहंत विराजे, पाठ कहां दरसाया है ॥
मनको भाया मानलिया, मनकल्पितपंथ चलाया है । सीख० ॥४॥
चच्चा चोरी देवगुरुकी, करके सर्व चुराया है ।
भाष्य चूर्णि निर्युक्ति टीका, अर्थसें चित्त चोरायां है ॥
चितकल्पित जूठे अर्थोसें, सच्चा अर्थ चुराया है । सीख० ॥ ५ ॥
छच्छा छमछरीको चालीश, वीसचोमासें छांन्या है ।
[2]पक्खी बार लोगस्सका काउसग, पुछो किसमें गाया है ॥
मूल मात्र वत्ती सूत्रोंका, खोटा हठकी छाया है ॥ सी० ॥ ६ ॥
जज्जा जिनवर ठाणा अंगे, ठवणा सत्य ठराया है ।
प्रभु पडिमाको पथ्थर जाणे, जालम कैसा जाया है ॥
चार निखेपा जोग जनाया, जिन आगममें जोया है । सी० ॥७॥
झझ्झा जूठ वतावे केता, जेता जैनमें गाया है ।
तीर्थंकर गणधर पूरवधर, सवको जेव लगाया है ॥
मुखपर पाटा कानमें डोरा, दैत्यसारूप बनाया है । सी० ॥ ८ ॥
टट्टा टटोल देख टोंटोंके, क्या गणधर फरमाया है ।
रायपसेनी सत्तर भेदें, जिन प्रतिमा पूजाया है ॥
हितसुख मोक्ष तणा फल अर्थे, प्रगटपणे वतलाया है ॥ सी ०॥९॥

---

१ वत्रीश सूत्रोंके मूल पाठमें—अरिहंतके १२ गुण। और १८ दूषणका वर्णन नहीं है । तोपि छे हमारे ढूंढक भाईओ, कहांसें लाके पुकारते है, ते उनका मान्य ग्रंथ वतलावें ॥

२ पंजाव तरफ एक अजीव पंथी ढूंढीये है, जिसको सत्यार्थ. पृ. १६७ में ढूंढनीजीने में में करनेवाले लिखेथे, सो हमेश चारलोगंसकाही काउसगकरते है । और जींव पंथी—छ मरीको ४० । चोमासीको २० । पक्खीको १२ का करते है। परंतु वत्रीश सूत्रका मूल पाठमें यह विधि नहीं है। ऐसी बहुतही वातें नहीं है ॥

ठठ्ठा ठिक नजर नहीं ठावे, सूत्र उवांई ठराया है ।
अंबड श्रावकके अधिकारे, अर्थ ते प्रतिमा ठाया है ॥
चैत्य शब्दका अर्थ मरोडी, जूठे जूठ जताया है । सी० ॥ १० ॥
डड्डा डर नहीं डाले डिलमें, डामही डोळ चलाया है ।
आनंद श्रावक के अधिकारे, अरिहंत चैत्य दिखाया है ॥
गपड सपडका अर्थ करीने, जड भारती भडकाया है । सी० ॥ ११॥
ढढढा ढूंढक नाम धराया, पिण तें जूठा ढूंढ्या है ॥
मूढ दृढता माया ममता, गूढपणे गोपाया है ॥
जूठ कपट शठ नाटक करके, जग सारा भरमाया है । सी० ॥१२॥
[1]तत्ता तीर्थ भूलायेसारे, तालों सेवीं चुकाया है ।
अपने आप तीरथ बन बैठे, मूढ लोक भरमाया है ॥
माने वांदो माने पूजो, यह विपरीत सिखलाया है । सी० ॥१३॥
थथ्था थोडी मान वडाई, खातर क्यौं थडकाया है ।
थोथापोथा प्रगट कराके, परमारथ उलटाया है ॥
सूत्र अरथका भेद न जाने, पंडितराज कहाया है । सी० ॥ १४ ॥
[2]दद्दा दंडा दशवैकालिक, प्रश्न व्याकरण दाया है ।

---

(१)ढूंढकोने—शत्रुंजय, गिरनारादिक, तीर्थोंको भूलाके जिसको तीन तेरकीभी खबर नहीं है, उनके चरणांकी स्थापना करके, अथवा समाधि बनवा करके, पूजते है । जैसें पंजाब देशका—लूधीयानामें, मोतीराम पूज्यकी समाधि । जगरांवामें, तथा रायकोट में, रूपचंद ढूंढेयेके चरण, तथा समाधि । अंबालेमें, चमार जातिका लालचंद ढूंढियाकी समाधि ॥

हमारे ढूंढकभाइओ—तीर्थंकरोंकी निंदाकरके, अपने आप तीर्थरूप बन बैठे है ? ॥

(४) बहुतही ढूंढिये लाठीलेके फिरते है तो पिछे माधव

आचारांग निशीथादिमे, भगवई पाठदिखाया है ॥
हठ दृढ छोड देखे विन तुमको, पाठ निजर नहीं आयाहै।सी०१५॥
थध्था धर्म जैन नहीं तेरा, धोका पंथ धकाया है ।
अपने आप वनाजो ढूंढा, लवजी आदि धराया है ॥
बांधी मुखपर पट्टी सतरां, वीसमेंपारो[१] गाया है । सी० ॥ १६ ॥
नन्नानये कपडेको पसली, तीन रंग नंखाया है ।
[२] सूत्र निशीथमें देख पाठ तूं, क्यौं इतना गभराया है ॥
इसी सूत्रमें देखले बाबत,रजोहरण क्या गाया है । सी. ॥ १७ ॥
पप्पा पंचकल्याणक जिनवर, जिन आगममें पाया है ।
इंद्र सुरासुर मिलकर उत्सव, करके अतिहर्षाया है ॥
द्वीप नंदीश्वर भगवइ जंबू द्वीप पन्नती वताया है । सी० ॥ १८ ॥
फफ्फा फेर नहीं भगवतीमें, फांफा मार फिराया है ।
जंघा चारण विद्या चारण, मुनियों सीस निवाया है ॥
नंदीश्वरमें कहांसें आया, जो ज्ञानका ढेर वताया है । सी० ॥१९॥
वव्वा वडे विवेकी देवा, दश वैकालिक गाया है ।
शुद्ध मुनिको सीस निमावे, नर गिनती नहीं आया है ॥
तदपि ढूंढक ते देवनका, करना वोज वताया है । सी० ॥ २० ॥

ढूंढक क्यौं निंदता है ? ।-तुम कहोंगेकि बूढा रक्खे, तवतो सविस्तर प्रमाण दिखावो ? नहीं तो तुमेरा वकवाद मूढपणेका है ? ॥

(१) ढूंढनी पार्वतीजीने, अपनीज्ञानदीपिकामें लिखा है कि—सं. १७२० में, लवजीने मुहपत्तीको मुखपर लगाई, और ढूंढा नामभी पडा ? ॥

[२] निशीथ सूत्रमें—प्रमाण रहित रजोहरण [ओघा] रखनेवालोंको दंड लिखा है। हे भाई माधव ढूंढक ? तूं भी अपना रजोहरणका प्रमाण ढूंढ, किस वास्ते फोगट वकवाद करता है ? ॥

भभ्भा भरम पडा है भारी, तत्त्वज्ञान नहीं भाया है ।
हिंसा हिंसा रटकर मुखसें, आज्ञा धरम भूलाया है ॥
हिंसा दयाका भेद न जाने, भोलेंको भरमाया हैं । सी० ॥ २१ ॥
मम्मा मुनि श्रावक दो भेदे, धरम आगममें मान्या है ।
सम्यग् दृष्टि सुरगण संघ, चतुरविधे फरमाया है ॥
जिनके गुणगानेसें परभव, धरम सुलभ बतलाया है । सी० ॥२२॥
यय्या यह है पाठ ठाणांगे, औरभी यह फरमाया हैं ।
जो अवगुण बोलें सुरगणका, दुर्लभ बोधि कहाया है ॥
अचरीज ऐसें पाठ योगसें, जरा न मनमें आया है । सी०॥२३ ॥
रर्रा रोरो नहीं छुटेगा, राह विना रमाया है ।
उन्मारगको मारग समजा, यही रणमें रोलाया है ॥
प्रभुपूजाका त्याग कराके, रामाराज चलाया है । सी० ॥ २४ ॥
लल्ला लक्ष द्रव्यसें पूजा, [1]वीरप्रभु जन्म जाया है ।
कल्प सूत्रका लाभ न माने, अवज्ञाकरके लुराया है ॥
पिण तेतो प्रसिद्ध विलायत, लिख अंग्रेजो लुभाया हैं ।सी०॥२५॥
वव्वा विधिसें काउसग वरणा, [2]आवश्यक विवराया हैं ।
दक्षिण हाथ मुहपत्ति बोले, वामे ओघा बताया है ॥
लोकशास्त्र विरुद्धपणे ते, मुखपर पाठा बांध्या है । सी. ॥ २६ ॥

१–१४ पूर्व धरकी निर्युक्तिके पाठमें—यह काउसग कर-नेकी विधि दिखाइ है । इसको तुम प्रमाण नहीं करते हो, तो पीछे–मनःकल्पित मुखपर पाटा चढानेका ते कौन प्रमाण करेगा ? ॥ जो अपनी सिद्धि दिखानेको फिरते हो ? ॥

२ यशोविजयजीभी कहते है कि–सिद्धारथ राई जिन पूज्या, कल्पसूत्रमां देखो । इत्यादि उनोंकी स्तवनकी दशमी गा-थामें देखो ॥

॥ अथ ढूंढक शिक्षा लघुस्तवन ॥

मत निंदो ढूंढक जिन मूरति । मत० . ए टेक ॥
जिन मूरति निंदा करनेसें । नहीं लेखे होय तुम विरति । म० ॥१॥
कष्ट करो पिण ते सुकृतमें । मुको जलती तुम बाति । म० ॥ २ ॥
प्रगट पाठका लोप करनको । मत करो तुम काठी छाती । म०॥३॥
जिनके बदले वीर श्रावकको । पूजावो न भूतादिक मूरति म०॥४॥
वरकी खोट दिखाके द्रौपदीको। पूजावो न कामकी मूरति।म०॥५॥
सुरगण इंद नरींद पूजी । ते निंदो कहीने अविरति?। म० ॥ ६ ॥
मित्रकी मूरतिसें प्रेम जगावो । जिन मूरतिमें ही मूढमति ।म० ॥७॥
स्त्रीकी मूरतिसें काम जगावो । जिन मूरतिमें नहीं भक्तिमति।म० ॥८॥
घोडा लाठीका नरम वचनसें । घोडा कहीने हटावे जाति ।म० ॥९॥
पहाड पाषाण जिन मूरतिको केहतां।लाज न तुमको भ्रष्ट मति १०
जिनके नामसें रोटी खावो । तीनकी निंद करो पापमति ।म०॥११॥
भूतादिक पूजावोभावे । उहां न वतावो तुम हिंसा रति । म०१२॥
हिंसा दयाका भेद जाने विन । मत बनो तुम आतमघाति।म०।१३।
तीर्थंकरकी निंदा करतां । नष्ट होय निश्चेंहि विभूति । म० ॥ १४॥
मुनि श्रावकका भेद न समजो। भ्रष्ट करो गृहीकी विरति।म०॥१५॥
कही हित शिक्षा यह छोटी । नहीं ईर्षाकी करी है मति ।म०॥१६॥
अमर कहैं निंदा जिनवरकी । तीक्ष्ण धाराकी काति । म०॥ १७ ॥

॥ इति ढूंढक शिक्षा लघु स्तवनं समाप्तं ॥

॥ इति मुनिराजश्री अमरविजय कृता श्री जिनप्रतिमा मंडन स्तवन संग्रहावली समाप्ता ॥

॥ अब हम जे जे सज्जन पुरुषोंके नामकी यादि लिखते है उसमें कितनेक सहायता देने वाले है । और कितनेक गाहक तरीके है । और कितनेक वेचने वाली संस्थाके अधिपतिके भी नाम है सो नीचे मुजब ॥

(खानदेश) आमलनेरा ॥

१५ सा. भागचंद छगनदास ।
५ सा. डायाभाई चुनीलाल ।
५ सा. हीरजी घेलानी कंपनी ।
५ सा. विशनजी अर्जुन ।
१ सा. भागचंद चुनीलाल ।
१ सा. खेमचंद भाईचंद ।
१ सा. साकरचंद रंगीलदास ।
२ सा. हरसी देवराज । कछी

॥ वाधरपुर ॥

५ सा. मोहनचंद माणेकचंद ॥

॥ सीरसाला ॥

५ शेठ. तीलोकचंद रूपचंद ।
२ सा. रामचंद मोहन ॥
१ सा. नतुसा बनारसीदास ।
१ सा. दगडुसा उत्तमचंद ।
१ सा. किसोरदास छगनदास ।
१ सा. कल्याणचंद नथुभाइ

१ सा. पोपट नेमीदास ।
१ सा. नथुसा

॥ जलगाम मेरु ॥

५ सा. वाधरभाइ माणेकचंद ।

मैलना मेनेजर ॥

२ सा. नाथाभाइ वेचरदास ।
१ सा. हरिचंद सखाराम ।
१ डाकतर. देवजीभाई मूलजी ।

॥ पारोला ॥

१ सा. घेलाभाई शिवजी ।

॥ खानदेश, धूलीया ॥

५ सेठ. सखाराम दुलवदास ।
५ सा. रणसीभाइ भारमल ।
५१ सा. विशनजीलालजी हस्ते. देवसीभाई ॥ } रोकडा
५ सा. करनीराम गुलाबचंद ।
५ सा. श्रीमल मतापमलजी ।
५ सा. माणजीभाइ देवजी ।

४० सा. भगवानजी कानजी.
रोकडा.
२ सा. राजमल हस्तिमलजी
५ सा. भीमजी स्यामजी ।
हस्ते. उकाभाई. रोकडा ॥
१ सा. फोजमल मानमल ।
१ सा. पन्नालाल मारवाडी ।
१ सा. गोविंदजीभाई खीमजी।
१ सा. उभयाभाइ राघवजी ।
१ सा. अर्जुनभाई लध्धा ।
१ सा. शिवजीभाई लध्धा ।
१ सा. अंबाईदास स्यामदास ।
१ सा. वेलजी चतुर्भुज रोकडो।
१ सा. खीमजी रतनसी ।
२ सा. खेतसीभाई लद्धा ।
१ सा. प्रेमचंद हीरजीभाई

॥ पांचोरा ॥
२ सा. भीखचंद दोलतराम ।
२ सा. बालचंद गुलाबचंद ।

॥ चालीस गाम ॥
५ सा. धनजी गोवींदजी ।
२ सा. तेजपाल गोवींदजी ।

॥ दक्षिण पुना ॥
१०० सा. हाथीभाइ जवेर ॥
भेट देनेके वास्ते ॥
५० जवेरी मोतीचंद भगवान।
५० सा. छगनचंद वखतचंद ।
३० सा. शिवनाथ लुवाजी ।
२५ मोतीजी कृष्णाजी
५ खासगी
३० सा. चुनीलाल मूलचंद ।
२५ सा. वालचंद लाद्धाजी ।
२१ सा. वालुभाइ पानाचंद ।
१५ सा. जमणादास मोकम ।
२५ सा. मयाचंद गुलाबचंद :
चोरालंदीना
१५ सा. सोभाग्यचंद माणेकचंद।
११ सा. गगलभाई हाथीभाई ।
१० सा. मोतीचंद जेताजी ।
१० सा. चेनाजी खुमाजी ।
१० सा. पानाचंद दलछाराम ।
१० सा. पुंजाभाई खीमजी ।
१० सा. माणिलाल चुनीलाल ।
५ सा. जवारमल रतनचंद ।
५ सा. मोहनलाल खुशाल ।
५ सा. गणपत अमोलक ।
२१ सा. वीठल मानचंद ।

५ सा. भोगीलाल नगीनदास।
११ सा. डुंगरसी लखमीचंद ।
२ सा. भगवानजी वालाजी।
२ सा. मानजी नगाजी ।
२ सा. हाथीभाइ वेचर ।
२ सा. जसराज फूआजी ।
१ सा. लालुभाई नथुराम ।
१ सा. मोहनलाल सोभाग्चंद।
१ सा. मगनलाल लखमीचंद ।
१ सा. देवचंद हर्षचंद ।
२ सा. वेचरदास सीरचंद ।
२ सा. कंकुचंद रायचंद ।
२ सा. हीराचंद लीलाचंद ।
५ सा. डायाभाइ वीरचंद ।
हडफसरना
५ सा. हकमाजी चुनीलाल
५ सा. अमीचंद धनीलाल
मदरासवाला

॥ मुंवाइ ॥

२५ सा. फकीरचंद भाइचंद ।
७५ वाबू. चुनीलाल पन्नालाल
ह. चिरंजीवी रतनलाल
२५ सा. धर्मसी गोवींद ।
२१ सा. लीलाधर कुवरजीनी
कंपनी ।

५ सा. हीरजी जेठानी कंपनी।
५ सा. जेतसी खीमजी.
हस्ते. देवसीभाई ।
५ सा. भीमसी खीमसी ।
२ दोसी. वलभ जीवराज ।
२ जवेरी. भोगीलाल चुनीलाल
१ सा. सोभाग्यचंद कपूरचंद ।
१ सा. जीवराज नरसी भैसरी।
१ सा. नगीनचंद कपूरचंद ।
१ सा. उत्तमचंद मूलचंद ।
१ सा. नगीनचंद मनसुखभाई।
१ सा. खीमजीभाई हीरजी ।
१ मुहता. मूलचंद मारवाडी ।
१ सा. भाणजी नागजी ।

कलकत्ता.

२५ वाबू. पंजी लालजी वना
रसीदास. जौहरी मारफतें

॥ अमरावती ॥

५० सा. सोभागचंद फतेचंद ।
२५ सा. भीखुभाई फतेचंद ।

॥ तेल्हारा ॥

१०० सेठ. हर्षचंद गुलावचंद

ऑ० मॅ जि स्टेट ।
९१ ज्ञान खात
५ खासगीना

॥ अमदनगर ॥
१० सा. माणेकचंद मोतीचंद जवेरी ॥
२ सा. अभेचंद रायचंद ।
१ सा. मलुकचंद जेचंद ।

॥ ढंढेरा तलेगाम ॥
१० सा. वालचंद स्यामदास ।

॥ एवत ॥
१ सा. अमरचंद उजमसी ।

॥ जेजूरी ॥
५ सा. हंसराज खेंगारजी ।

॥ करमाला ॥
५ सा. चंद्रभानजी खीवराज ॥

॥ पंजाबदेश ॥
॥ जीरा ॥
७ लाला. नथुरामकी मारफते ॥

॥ सिकंद्राबाद ॥
३ लाला.ज्वाहारिलाल जैनी ॥

॥समाना. जि. पटीयाला ॥
२ सदाराम जैनी. आत्मा नंदसभाका सक्रेटरी ॥

॥ लुद्धीयाना ॥
४ बाबू. हुकमचंद जैनी ॥

॥ नीकोदर ॥
४ मास्तर.दोलतराम मारफत।
१ दोलतराम ।
१ कुलामल ।
१ प्रेमचंद ।
१ रलामल ।

॥ जंडीयाला ॥
१० भावडा. फग्गुमल वांगा मलकी मारफते ॥

॥ मलेर कोटला ॥
६ लाला. गेंडेराय भगवान-

दासकी मारफते ||

|| दील्ली ||

५ जौहरी. दुलेश्रसिंह टीकमचंद

|| सेहर. अंबाला ||

२ भावडा. गंगाराम बनारसी-
दास ।

|| अमृतसर ||

२ भावडा. महाराजमल
रामचंद ||

|| आगरा सेहर ||

५ उपाध्यायजी. वीरविजय-
जीकी लायब्रेरी ||

|| लाहोर ||

५० आत्मानंद जैन सभा ।
जसवंतराय जैनी ||

|| दील्ली सेहर ||

५० आत्मानंद जैन पुस्तक प्र-
चार मंडल ।

|| भावनगर ||

५० जैन धर्म प्रसारक सभा.
ह. कुवरजी आनंदजी ||

|| मुंबाइ. पायधूनी ||

५० मेघजी हीरजीनी कंपनी ।
जैन बुकसेलर ||

|| मालेगाम ||

१० सा. सखाराम मोतीचंद ।
२ सा. लालचंद केवल ।
१ सा. वालचंद हीराचंद

|| भोपाल जंक्षण ||

३ सा. अमीचंद तसीलदार

वर्द्धा नागपुरलेन ।

५ सा. किसनचंद हीरालाल।

|| पुलगाम ||

२ सा. पुनमचं जुहारमल

|| आंकोला ||

२ सा. पृथ्वी राज रतनलाल।
१ सा. रतनसी स्यामजी ।

॥ खामगाम ॥

२ सा. विशनजी ज्ञानचंदजी ।

॥ प्रतापगढ. मालवा ॥

२ शेठ. लखमीचंद धीया ॥

॥ गधक ॥

१ सा. मेघजी पुंजाभाइ ॥

॥ अजमेर ॥

१ सा. नथमल धनराज. कांसठीया ।

॥ जामनगर ॥

१ सा. कालीदास मुलजी पारेप।

॥ सवाइ जयपुर ॥

२ श्री. गुलाबचंद ढढा ॥

मु. वडाली ॥

१ सेठ. जादवजी हर्षचंद ।

॥ बारडोली जिल्ला. सुरत ॥

१ सा. जीवनजी देवाजी ।

॥ कलमसरा ॥

१ सा. हीरमल नथमलजी ।

गाम. ढंजा ॥

१ सा. भायचंद वखतचंद ।

१ सा. दलुभाइ माणचंद ।

१ सा. चुनीलाल छगनचंद ।

१ सा. हीरालाल वस्ताचंद ।

१ सा. छगनलाल रवचंद ।

१ जैन पाठशाला खाते ।

॥ कुरडवाडी ॥

१ सा. रायमल हीरजी ।

॥ फतेपुर ॥

१ सा. धनराज प्रतापमल ।

॥ मनमाड ॥

१ सा. माणिलाल उत्तमचंद ।

॥ संगमनेर ॥

१ सा. भवानदास सांकलचंद।

१ सा. त्रिभोवनदास खुशाल चंदजी ॥

॥ पालणपुर ॥ ४७ बुको ॥
५ जैन विद्योतेजक सभा ।
१ सेठ.चमनलाल मंगलजीभाई
१ कोठारी. चंदुलाळ सोभा-गचंद ।
१ पारी. अमूलकचंद खुबचंद।
१ पारी. रामचंद खुबचंद ।
१ पारि. रवचंद उमेदचंद ।
१ पा. नगीनदास ललूभाइ ।
१ पा. प्रेमचंद केवलचंद ।
१ पा. मोतीलाल पानाचंद ।
१ सा.भगवानदास छगनभाई।
१ मेता.भायचंद लवजीभाई।
१ भणसाली. दलछा जोईता-राम ।
१ गांधी. कस्तुरचंद मंछाचंद।
१ कोठारी. जोइता नथुमाइ ।
१ सा. मंछाचंद उत्तमचंद ।
१ सा. कवरसिंग उमेद ।
१ सा. पुनमचंद भूषणभाइ।
१ मेता. हाथीभाइ रतनचंद।
१ भणसाली.रवचंद रायचंद।
१ सा. वापुलाल चुनीलाल।
१ दोसी. नहालचंद खेमचंद।
१ पा. सुरजमल नहालचंद।
१ सा. मानचंद मगनलाल।
१ सा. गुलाबचंद मगनलाल।
१ गांधी. मणिलाल त्रिभोव-नदास ।
१ सा. त्रिकमलाल भभूतभाइ।
५ दोसी. मगनभाइ कंकलचं-द हस्ते जैनशाला खाते ।
१ सा. नाथाभाइ छगनलाल ।
१ सा. रतनचंद रामचंद ।
उपर लखेली बुको ३७ पारीष मणिलाल खुशालचंद सभाना सक्रेटरीनी मारफते॥

---

१० नीचे लखेली दश बुको कोठारी. धरमचंद वेल-जीनी मारफते
१ पा. सरूपचंद पानाचंद ।
१ पा. भोगीलाल चतुरदास।
१ दो. पानाचंद केवलचंद ।
१ दो. लखमीचंद केवलचंद ।
१ वो. मगन ठाकरसीभाइ ।
१ वो. रवचंद मूलचंद ।
१ को. शांतीलाल धर्मचंद ।
१ सेठ. जीतमल नरसिंगदास।
१ मेता. हेमजी केशवजी ।
१ वो. हेमजी मुलचंद ।

॥ सेहर. डभोई ॥ १५ बुको ॥

२ सा. चुनीलाल कस्तुरचंद।

२ सा. नेमचंद तलकचंद ।

२ सा. करमचंद मोतीचंद ।

१ सा. मगनलाल मोहनलाल।

१ सा. गुलाबचंद हरिलाल । ढोलारीया

१ सा. हरगोविंद वेणीदास ।

१ सा. अमीचंद वेणीदास ।

१ सा. नाथाभाई वीरचंद ।

१ सा. छोटालाल वीरचंद ।

१ सा. मगनलाल जीवचंद ।

१ सा. पीतांबर बापुभाई ।

१ सा. फुलचंद दोलत ।

॥ कोपरगाम ॥

५ सा. रूपचंद रामचंद ।

॥ करजत ॥

२ सा. देवचंद जेठीराम ।

॥ राहोरी ॥

१ सा. माणेकचंद राजमल ।

१ सा. इंदुमल राजमल ।

॥ पुना ॥

५ सा. चिमनलाल डुंगरशी.

१ सा. अमरचंद हजारीमल.

॥ द्वितीय भाग शुद्धि पत्रिका ॥

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
सिद्धपेर्मी—	सिद्धविर्मेर्मी-	४-	२१
अयात्—	अर्थात्-	११-	१२
यत्किंचित्-	यत्किंचित्-	१३-	१३
अत्-	अत-	१३-	१८
कार्यकी—	कार्यकी—	२०-	८
तीर्यकरका-	तीर्थकरका-	२१-	८
निंद्रवदोंके—	निंह्नवोंके-	२९-	१
पयोजन-	प्रयोजन-	२९-	३
परन्तु-	परन्तु-	३३-	१४
पट्टी—	पट्टी—	३७-	९
छिक्षता—	छिक्षती-	४५—	१५
सनात—	सनातन—	४९—	२३
नस्कार-	नमस्कार-	४९-	१९
स्त्रीकी—	स्त्रीकी-	५३-	९
स्त्रीकी-	स्त्रीकी-	५३-	९
मार्त्तिसे-	मूर्त्तिसें—	”	२४
मूर्त्तिपूनाको-	मूर्त्तिपूजाको-	५४-	९
मूर्तिसें-	मूर्त्तिसें—	”	२२
ढूंढनीने-	ढूंढनीजीने-	५६-	१५
नित्य—	नित्य—	५६-	२
पिपरीत-	विपरीत—	६०-	९
अज्ञास्वती-	अशाश्वती-	”	१९
प्रति	प्रतिमा	”	१९

पुष्ट-	पृष्ठ-	६५-	२
शत्यार्थ-	सत्यार्थ—	६९-	८
सिचन—	सिंचन—	७०-	५
वदामास—	वदमास-	७३-	९
उत्पन्न—	उत्पन्न—	७४-	१०
कल्याकी-	कल्याणकी-	७५—	१९
सत्यार्य-	सत्यार्थ—	,,	२१
निक्षेपपका-	निक्षेपका-	७६-	६
स्थापपना-	स्थापना—	७७—	१०
सुमंधमय-	सुगंधमय-	,,	१२
इइमें—	इसमें—	७८-	२०
दलिगीरी-	दीलगीरी-	७८—	२३
करनसें—	करनेसें-	८०—	४
विचारे-	विचारे—	८१-	९
शुद्ध—	शुद्ध—	८१—	१९
द्रौपदाजिकि—	द्रौपदीजीके—	८८-	२२
अने-	अनेक-	९६-	१८

अथ स्तवनावली.

अशुद्ध	शुद्ध.	पृ.	ओ.
चुनीलाजी	चुनीलालजी	९-	७

॥ मुनिराज अमरविजय कृत ग्रंथोंकी यादि ॥

१ धर्मना दरवाजाने जोवानी दिशा ।

शास्त्री अक्षरोंमे–कि. रू. ०—८—० आना

२ दंडक हृदय नेत्रांजन–कि. रू. १—४

३ तत्त्वार्थ महासूत्र, अर्थ रत्नमाळा भाषा टीका सहित, अध्याय ४ का प्रथम भाग, थोडे दिनोंमें बहार पडेगा ॥

॥ मीलनेका पत्ता ॥

१ भावनगर–जैनधर्म प्रसारक सभा ॥

२ दिल्ली–आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचारक मंडळ
डे. नवघरेमें ॥

३ लाहौर–आत्मानंद जैन सभा ॥

४ मुंबाइ–मेघजी हीरजीकी कंपनी डे. पायधोनी ॥